साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

संपादक
प्रो० कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

सदस्यता फार्म

'साहित्य यात्रा' विशिष्ट सदस्यता	:	1100/-
एक वर्ष (4 अंक)	:	400/- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	1200/- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	1100/-
आजीवन सदस्यता	:	11000/-
विदेश के लिए (3 अंक)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रूपये अतिरिक्त जोड़ दें।)
उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम :-	पद :-
पता :-	
दूरभाष 1 :	दूरभाष 2 :
शहर :	पिन न० :-
देश :	ईमेल -
संकाय / विभाग / विद्यालय:	

यहाँ से काटिए

भुगतान की जानकारी

नकद/बैंक रकम: रु०..... द्वारा.....

डी0डी0/प्रत्यक्ष हस्तांतरण/चेक/बैंक का नाम :.....

डी0डी/चेक/स्थानान्तरण संख्या :..... दिनांक :.....

दिनांक:		हस्ताक्षर (या पूरा नाम लिखें)	

ऑनलाइन हस्तांतरण विवरण :- साहित्य यात्रा, पंजाब नेशनल बैंक, एस.के. पुरी शाखा, पटना-1, खाता क्रमांक- 623000100016263, IFSC- PUNB0623600

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

वर्ष-6 अंक-23 जुलाई-सितम्बर, 2020

परामर्शी

डॉ॰ सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ॰ नरेन्द्र कोहली

डॉ॰ प्रेम जनमेजय

डॉ॰ हरीश नवल

डॉ॰ संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

उप-संपादक

प्रो॰ (डॉ॰) प्रतिभा सहाय

डॉ॰ सत्यप्रिय पाण्डेय

सहायक संपादक

डॉ॰ रवीन्द्र पाठक

अमित कुमार मिश्र

आवरण चित्र

सौजन्य : मंगलमूर्त्ति

साज-सज्जा

निशिकान्त / मनोज कुमार

संपादक

प्रो॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पूर्व अनुमोदित

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 09835063713/09304302308
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹ 45

प्राप्ति स्थान :

पटना-
आलोक कुमार सिंह, मैग्जीन हाउस, शालीमार स्टूडियो के पास,
सहदेव महतो मार्ग, बोरिंग रोड, पटना-800001

दिल्ली -
1. आर.के. मैग्जीन सेन्टर, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट,
दिल्ली, वि.वि., दिल्ली-11007
2. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : डॉ॰ कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07
सरल सुभाउ छुआ छल नाहीं

संस्मरण
शिवपूजन सहाय : सादगी का सौंदर्य 11
डॉ. रामदरश मिश्र

आलेख
शिवपूजन सहाय के जन्मदिन के अवसर पर 14
भारत यायावर

निबंध
उत्तम पुरुष की विरासत 21
भृगुनंदन त्रिपाठी

आलेख
आचार्य शिवपूजन सहाय के बहुआयामी व्यक्तित्व 27
शैलेन्द्र कुमार चौधरी

साक्षात्कार
आचार्य शिवपूजन सहाय के पुत्र प्रोफेसर मंगलमूर्त्ति से साहित्य यात्रा के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र की बातचीत 30

आलेख
सार्वभौम प्रतिभा के शुभ्ररूप : आचार्य शिवपूजन सहाय 56
डॉ. रामसिंहासन सिंह

पद्मश्री बिहार विभूति आचार्य शिवपूजन सहाय 60
डॉ. प्रतिभा सहाय

महान शब्द-शिल्पी और भावितात्मा साहित्यर्षि थे आचार्य शिवपूजन सहाय 66
डॉ. अनिल सुलभ

आचार्य शिवपूजन सहाय के मानस में तुलसी-काव्य 71
डॉ. आशा

हिन्दी के अग्रपांक्तेय निबंधकार : आचार्य शिवपूजन सहाय 77
डॉ. सुनील कुमार पाठक

शिवपूजन सहाय की ऐतिहासिक कहानियाँ 86
गणेश चंद्र राही

आचार्य शिवपूजन सहाय और उनका लोक साहित्यानुराग 94
डॉ. सत्यप्रिय पाण्डेय

हिन्दी नवजागरण के पुराधा : शिवपूजन सहाय 99
राजेन्द्र परदेसी

साहित्यिक पत्रकारिता के सिरमौर पद्मभूषण आचार्य शिवपूजन सहाय 103
डॉ. ध्रुव कुमार

सामाजिक सरोकारों के अग्रणी साहित्यकार : शिवपूजन सहाय 107
डॉ. (श्रीमती) काकोली गोराई

शोध आलेख

शिवपूजन सहाय : नवजागरण के अग्रदूत 111
डॉ. अंजु कुमारी

आलेख

शिवपूजन सहाय की कहानियों में नारी 114
डॉ. रवीन्द्र पाठक

आचार्य शिवपूजन सहाय और उनका हिन्दी प्रेम 121
प्रदीप कुमार शर्मा

आंचलिक उपन्यास के जनक आचार्य शिवपूजन सहाय 125
सुनीता रानी राठौर

आचार्य शिवपूजन सहाय के निबंधो में पत्रकारिता का स्वरूप 127
अमित कुमार मिश्रा

''बहुआयामी कलमकार आचार्य शिवपूजन सहाय'' 132
डॉ. मंजुला

शिवपूजन सहाय 136
भवानी शंकर पटेल

आचार्य शिवपूजन सहाय : भाषा और साहित्य संबंधी चिंतन 138
सीमा कुमारी

शिवपूजन सहाय : साहित्य और पत्रकारिता के सेतु 143
दीपक कुमार

शिवपूजन सहाय का साहित्य : परंपरा की नींव पर प्रगतिशीलता की इमारत 146
धनन्जय

शिवपूजन सहाय की दृष्टि में बिहार में राष्ट्रभाषा का विकास और साहित्यिक प्रगति 151
कृष्णा अनुराग

कविता

पिता 156
मंगलमूर्त्ति

आलेख

स्मृति के आईने में शिवपूजन सहाय 158
राधिकारमण प्रसाद सिंह, जवाहर लाल चतुर्वेदी, रामचन्द्र वर्मा,
छविनाथ पाण्डेय, जानकी वल्लभ शास्त्री

पत्र

आचार्य शिवजी का विवाह-पूर्व भावी पत्नी को लिखा पत्र 166

सम्पादकीय

सरल सुभाउ छुआ छल नाहीं

सादगी, सरलता और विनम्रता की प्रतिमूर्ति साहित्य शिरोमणि आचार्य शिवपूजन सहाय की साहित्य साधना से सहज ही अभिभूत रहा हूँ। आचार्य जी हिन्दी के एकांत साधक थे। शिव जी का समस्त रचना संसार जीवन अनुभूतियों की मार्मिक व्यंजना से अनुप्राणित है। आत्मश्लाघा से दूर शिव जी कलम के सच्चे साधक थे। विषय की विविधता, भाषा की प्रांजलता, अभिव्यक्ति की सहज, सीधी सच्ची शैली और विचारों की स्पष्टता ने उनकी लेखनी को कालजयी बनाया। वे नवजागरण की चेतना के वाहक थे। इसीलिए तो हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा ''आचार्य शिवपूजन सहाय विनय और शील के मूर्तिमान रूप थे। साहित्य सेवा उनका स्वभाव था। कालिदास ने जिसे 'कांचन-पद्म-धर्मिता' कहा है वह पूर्ण रूप से उनमें मिलती थी-दृढ़, उज्ज्वल और कोमल।''

शिवपूजन सहाय पर **'साहित्य यात्रा'** का एक स्मृति अंक प्रकाशित करने की कामना दीर्घकाल से मन में स्वरूप ग्रहण कर रही थी। विशेषांक का स्वरूप कैसा हो? सामग्री कैसे एकत्रित हो? अनेक प्रश्न थे। वैसे तो शिवपूजन सहाय पर पूर्व में पत्र-पत्रिकाओं के कई सार्थक विशेषांक प्रकाशित हुए हैं। किंतु मेरा उद्देश्य था कि वर्तमान पीढ़ी के हिंदी के अध्येता, शोधार्थी आचार्य शिव जी सहाय की रचनाओं से अवगत हों तथा उनकी सादगी, सहजता, सरल जीवन शैली, विनम्रता, श्रमसाध्य रचनाधर्मिता, उनकी भाषा की प्रांजलता तथा विशिष्ट रचना शिल्प से परिचित हों, प्रेरणा ग्रहण करें।

मन में यह सब चल ही रहा था कि इसी बीच एक दिन आचार्य जी के कनिष्ठ पुत्र स्वनामधन्य मंगल मूर्ति जी का फोन आया। उन्होंने 'साहित्य यात्रा' के अंकों की प्रशंसा की। कुशल संपादन के लिए धन्यवाद दे रहे थे। इसी क्रम में उन्होंने अपने पिता आचार्य शिवपूजन सहाय जी के साहित्य कर्म, उनकी पत्रकारिता दृष्टि की चर्चा करते हुए कहा कि 'आप अच्छा संपादन कर रहे हैं। किन्तु मेरे मन में अपनी योजना को लेकर दूसरी ही बात चल रही थी। मैं उनसे बात करते हुए द्वन्द्व में था कि मंगल मूर्त्ति जी से आचार्य जी पर विशेषांक प्रकाशित करने संबंधी अपनी योजना के लिए अभी कहूँ या ना कहूँ। किन्तु बातचीत के क्रम में सहज ही मैंने अपनी भावना से उन्हें अवगत कराते हुए विशेषांक के लिए सहयोग करने की बात कही। मंगलमूर्त्ति जी ने उत्साह पूर्वक पूर्ण सहयोग करने का आश्वासन दिया। 9 अगस्त को शिव जी की जयंती है, मन में विचार आया कि इसी बीच यह विशेषांक प्रकाशित हो। तत्काल मैंने 'साहित्य यात्रा' के फेसबुक पेज, वेबसाईट, वाट्सएप्प समूह पर रचना आमंत्रित करने का निवेदन तो कर ही दिया, रचनाकारों से फोन से भी संपर्क कर महत्वपूर्ण आलेख देने का निवेदन किया। रचनाकारों की सहयोगात्मक प्रतिक्रिया देखकर मन अभिभूत हो गया। मैं मानता हूँ कि यह आचार्य जी का विशाल व्यक्तित्व ही है कि मुझे इतना

सहयोग मिला।

शिवपूजन सहाय का साहित्य संसार जीवन के उच्च विचारों, राष्ट्रीय चेतना, तीक्ष्ण व्यंग्य दृष्टि, सहज मानवीय संवेदना से युक्त है। डा. परमानंद श्रीवास्तव ने कहा है 'वे सच्चे अर्थों में जनता के लेखक हैं, जनता की जीवनी-शक्ति को चरितार्थ करने वाले लेखक हैं।' लेखन में प्रचलित मुहावरों के सन्तुलित उपयोग द्वारा उन्होंने रचना में लोकरुचि को अभिव्यंजित किया है। शिवजी एक कुशल शब्द शिल्पी थे। विषय के अनुरूप उनकी भाषा ढ़ल जाती थी। साहित्यिक, सांस्कृतिक लेखों की भाषा में एक प्रकार का गीतितत्व दिखता है। एक उदाहरण देखिए- ''दिग-दिगंत में ऋतुकंतबसंत की अनंत छवि छा गई। मानमर्दिनी, मनोविनोदिनी, प्राणोन्मादिनी ऋतु आ गई। दिशाएँ दीप्तिमती हो गईं। चतुर्दिक नयन मन रंजनी छा गई। कोयल कुहक-कुहक कर कमनीय कलकंठ से मधु बरसाने लगी। सरसों की सुहावनी सरसता से वसुंधरा सरसाने लगी। मधुक की मधुर सुगंध तबीयत तरसाने लगी।''

आज जो हिन्दी का वैश्विक स्वरूप है वह आचार्य जी जैसे हिन्दी के एकांत साधक के श्रम का ही प्रतिफल है। हिन्दी की गौरवपूर्ण छवि को संवारने, निखारने में जिन हिन्दी सेवियों का योगदान है उनमें आचार्य शिवपूजन सहाय का नाम सम्मान पूर्वक लिया जाता है। आचार्य जी ने एक ओर हिन्दी साहित्य, हिन्दी पत्रकारिता की श्री वृद्धि की वहीं उन्होंने हिन्दी भाषा को भी समृद्ध किया।

शिव जी का सम्पूर्ण साहित्य आम आदमी के जीवन से जुड़ा है। उनका चिंतन फलक बहुत विस्तृत तथा बहुआयामी है। एक ओर 'देहाती दुनिया' जैसे उपन्यास का प्रणयन कर आचार्य जी ने हिन्दी में आंचलिक कथा साहित्य की नींव रखी, वहीं दूसरी ओर उन्होंने 'मुंडमाल' जैसी कहानियाँ लिखकर भारतीय समाज के जातीय गौरव को वैश्विक स्वरूप दिया। आचार्य शिवपूजन सहाय जी का संपूर्ण साहित्य भाषा की अनुपम अभिव्यंजना से अलंकृत है, जो यह व्यंजित करता है कि भाषा में भावों की अभिव्यक्ति किस कुशलता से की जा सकती है। कहानी, उपन्यास के अतिरिक्त विविध विषयों पर लिखे उनके निबंधों में विषयगत विविधता उनकी समग्र दृष्टि का परिचायक है।

डॉ. रामदरश मिश्र ने अपने संस्मरण में जिस सहजता से आचार्य जी की सादगी, विनम्रता, विद्वता और रचना धर्मिता का उल्लेख किया है वह सहज ही प्रभावित करता है। वे लिखते हैं कि 'प्रथम दृष्टि में ही ऐसा लगा कि उनके तन में और दृष्टि में गांव की छवि मूर्त है।' आचार्य जी की रचना में सम्प्रेषण की अद्‌भुत क्षमता है। जहाँ अनुभूति की सूक्ष्मता है, वहीं संवेदना की तरलता है, विचारों की प्रखरता है, विश्लेषण में गम्भीरता है तो हास-विनोद भी है। भाषा प्रवाहमयी तो है ही उसमें मुहावरे और लोकोक्तियों का पुट उसे और जीवंत बना देता है।

पत्र-पत्रिकाओं के संपादन करते हुए उन्होंने संपादकीय कला की एक मिसाल प्रस्तुत किया।

आचार्य शिवपूजन सहाय हिन्दी पत्रकारिता के पितामह कहे जाते हैं। उनकी उज्ज्वल प्रतिभा संपादकीय अग्रलेखों और विविध विषयक साहित्यपरक निबंधों में दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने अपने समय के अनेक प्रसिद्ध पत्रिकाओं का कुशल संपादन किया जिसमें मारवाड़ी-सुधार, मतवाला, जागरण, हिमालय, साहित्य, जैसी और भी कई पत्रिकाएँ शामिल हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में शिवपूजन सहाय 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी' की परंपरा को आगे बढ़ाते हैं। वे पत्रिकाओं में लिखे अपने संपादकीय के माध्यम से हिन्दी के परिष्कार और साहित्य के स्वरूप निर्माण के लिए सदैव संघर्ष करते रहे। विषय चाहे राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्थापित किए जाने का हो या फिर हिन्दी विरोधियों को डट कर जवाब देने का। हर मोर्चे पर अडिग होकर डटे रहे। उनके अनेक निबंध पत्रकारिता के दायित्व और उसके स्वरूप को लेकर लिखे गए हैं। पत्रकारिता के कार्य को वे बहुत ही जिम्मेदारी का कार्य मानते थे। उन्होंने अपने समकालीन दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, हर तरह की पत्र-पत्रिकाओं का विश्लेषण करते हुए उसके गुण-दोषों को बेबाक होकर प्रकट किया। भारत यायावर ने अपने लेख में लिखा है कि 'शिवपूजन सहाय कथाकार थे, व्यंग्यकार थे, भाषाशास्त्री थे, भाषा परिमार्जक थे, आलोचक थे लेकिन सबसे बढ़कर वे संपादक थे।' हिन्दी साहित्य और हिन्दी पत्रकारिता को आचार्य शिवपूजन सहाय की देन इतनी व्यापक है कि वह हिन्दी पत्रकारिता के लिए एक मानक स्थापित करती है। शिवपूजन सहाय ने अपने संपादकीय और निबंधों के माध्यम से पत्रकारिता के लिए जो मापदंड स्थापित किए वे आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। शिवपूजन सहाय ने अपने जीवन के बहुमूल्य क्षणों को साहित्य साधना में समर्पित किया। 'बिहार का बिहार' लिखकर उन्होंने बिहार प्रान्त का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाधर्मिता के अनेक पहलू हैं जिनपर नए सिरे से विवेचन विश्लेषण होना आवश्यक है। राष्ट्रभाषा संबंधी उनके विचार वर्तमान समय में और भी प्रासंगिक हो गए हैं।

प्रख्यात साहित्यिक व्यक्तित्व के प्रति भी पाठकों के मन में एक सहज जिज्ञासा का भाव रहता है। उनके रचना-कर्म से पाठक जितने परिचित होते हैं, उतने ही वे उनके व्यक्तिगत जीवन और रचना धर्मिता के प्रति जिज्ञासु हो जाते हैं। इसी विचार से प्रेरित होकर मैंने आचार्य जी के कनिष्ठ पुत्र मंगलमूर्त्ति जी से लंबी बातचीत की। मेरा अभिप्राय यह था कि पुत्र होने के नाते वे आचार्य जी की जीवन शैली, पारिवारिक परिवेश, सृजन कर्म की प्रक्रिया, उनका जीवन संघर्ष आदि के संबंध में विशिष्ट जानकारी दे सकेंगे। मंगल मूर्ति जी ने सहजता से मेरे प्रश्नों का बहुत ही विस्तारपूर्वक उत्तर दिया। फलतः बातचीत कुछ विस्तृत तो अवश्य हुई किंतु इसमें आचार्य शिवपूजन सहाय के जीवन और रचनाधर्मिता से संबंधित कई छुए-अनछुए पहलू सामने आए हैं। मुझे विश्वास है कि यह पाठकों को संतोष प्रदान करेगा।

इस अंक में शिव जी द्वारा अपनी भावी पत्नी बच्चन देवी जी को लिखा गया पत्र उन्हीं की लेखनी में प्रकाशित किया गया है। इस पत्र में शिवजी का मर्यादा बोध, दायित्व निर्वहन एवं संयमित भाव संप्रेषण का जो पुट है वह अद्वितीय है। पत्र की एक पंक्ति उद्धृत करता हूँ। दाम्पत्य जीवन के वास्तविक सुख के भाव को यह पंक्ति व्यंजित करती है। 'जिस घर में सच्ची गृहदेवी नहीं हैं, उसमें धन-दौलत के रहते हुए भी कुछ सुख नहीं है। परन्तु जहाँ गृहदेवी हैं, वहाँ दरिद्रता

भी लक्ष्मी बन जाती है।'

मैं उन विशिष्ट रचनाकारों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने आचार्य शिवपूजन सहाय पर केंद्रित 'साहित्य यात्रा' के इस अंक में अपना रचनात्मक सहयोग दिया है। कई शोधार्थियों के शोधपूर्ण एवं तथ्यात्मक आलेख भी इस अंक में संकलित हैं जिनमें उन्होंने आचार्य शिवपूजन सहाय की रचनाधर्मिता पर प्रकाश डाला है।

मित्रे! कोरोना महामारी और बंदी (लॉकडाउन) के कारण अपनी कोई भी योजना कहाँ कारगर हो पाती है? कहते हैं समस्या अकेले नहीं आती इस बंदी के बीच विगत 30 अगस्त को मेरे पितृव्य भवनाथ मिश्र जी का हृदयाघात से देहावसान हो गया। वे 94 वर्ष के थे। व्याकरण के विद्वान थे। संस्त, अंग्रेजी और गणित के विशिष्ट ज्ञाता थे। उनका सुझाव 'सहित्य यात्रा' के लिए महत्वपूर्ण होता था। वे अक्सर विभिन्न संस्मरण सुनाया करते थे। शिवजी से जुड़ा एक संस्मरण भी सुनाया करते थे जिसे यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ। जब शिवजी पुस्तक भंडार में थे उसी समय मेरे पितामह पंडित कपिलेश्वर मिश्र भी शांतिनिकेतन से लौटने के पश्चात पुस्तक भंडार में ही थे। एक बार जब किसी आवश्यक कार्य से मेरे पितामह को अपरिहार्य कारणों से लेहेरिया सराय से कहीं बाहर जाना पड़ा तो समस्या हुई कि मेरे पिता और चाचा कहाँ रहेंगे? कहाँ खाएँगे? शिव जी ने छूटते ही कहा पण्डित जी कुँवर, कन्हाई (भवनाथ मिश्र एवं गणनाथ मिश्र के पुकार का नाम) मेरे घर में ही रहेंगे। इसमें इतने सोचने की क्या बात है? इस प्रकार दोनों भाई शिव जी के घर में कुछ दिन रहे। चाचा कहते थे कि जब उन्हें ज्ञात हुआ कि 'दादा' (चाचा अपने पिता पंडित कपिलेश्वर मिश्र को 'दादा' संबोधित करते थे) वापस दरभंगा आ रहे हैं तो उन्हें खुशी नहीं हुई। क्योंकि शिव जी के यहाँ इतना विशिष्ट और स्वादिष्ट भोजन इन्हें मिलता था कि दोनों भाई तृप्त थे। सोच रहे थे कि कुछ दिन और इसी घर में बीते। ज्ञात हो कि वचन देवी जी एक कुशल गृहिणी थीं और पाक कला में निपुण थी।

यह एक संयोग ही है कि साहित्य यात्रा के शिवपूजन सहाय स्मृति अंक में ही भवनाथ मिश्र जी की श्रद्धांजलि प्रकाशित हो रही है।

कुल मिलाकर यह कि पत्रिका के प्रकाशन में विभिन्न अड़चनों के कारण कुछ विलंब तो अवश्य हुआ किन्तु कहते हैं 'देर आए दुरुस्त आए'। पत्रिका आपके हाथ में है यदि सुधी पाठकों को साहित्य यात्रा का यह अंक संतोष दे सकेगा तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगा।

'साहित्य यात्रा' के इस अंक के माध्यम से मैं हिन्दी के तपस्वी, मनस्वी साहित्यकार के कीर्ति-काया को मानस की इन पंक्तियों के साथ नमन करता हूँ-

राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुआ छल नाहीं॥

कलानाथ मिश्र

शिवपूजन सहाय : सादगी का सौंदर्य

डॉ. रामदरश मिश्र

1954 में जब मैला आंचल प्रकाशित हुआ। तब आंचलिक उपन्यास की धूम मच गई। मैला आंचल के बाद जो उपन्यास लिखे गए वे भी चर्चा में छा गए लेकिन लोगों को धीरे-धीरे याद आया कि शिवपूजन सहाय जी ने सन 1926 में ही 'देहाती दुनिया' नाम का उपन्यास लिखा था जिसमें तत्कालीन गाँव अपनी पूरी अस्मिता से उभरा था। इसमें सरल ग्रामीण जीवन का सुबोध और प्रभावशाली चित्रण किया गया है। स्वयं लेखक के शब्दों में- 'मैं ऐसे ठेठ देहात का रहने वाला हूँ। जहाँ इस युग की नई सभ्यता का बहुत ही धुंधला प्रकाश पहुँचा है। वहाँ केवल दो ही चीजें प्रत्यक्ष देखने में आती हैं- अज्ञानता का घोर अंधकार और दरिद्रता का तांडव नृत्य। वहाँ पर जो कुछ मैंने देखा सुना है उसे यथा शक्ति ज्यों का त्यों अंकित कर दिया।'

मैं सन् 1941-42 में बरहज में था। वहाँ मैं विशारद और साहित्य रत्न की पढ़ाई के लिए गया था। रह-रहकर अपने शिक्षकों से शिवपूजन सहाय का नाम सुनता था। उनकी बड़ाई सुनता था। तब मेरे मन में रह-रहकर उनसे मिलने की इच्छा होती थी। बरहज में एक साहित्यिक संस्था थी जो प्रत्येक वर्ष एक कवि सम्मेलन आयोजित करती थी और उस समय किसी विद्वान का भाषण भी होता था। यह सुनकर अच्छा लगा कि इस वर्ष बनारस के कवि तो आमंत्रित हैं ही, विद्वान वक्ता के रूप में शिवपूजन सहाय आ रहे हैं। जिस दिन सहाय जी आए उस दिन औरों के साथ मैं भी स्टेशन पर चला गया था। कंपार्टमेंट से एक आदमी उतरा। लगा उसके तन में और दृष्टि में गाँव की छवि मूर्त है। उनकी सादगी ने बहुत प्रभावित किया। मालूम पड़ा कि यही शिवपूजन सहाय जी हैं। उन्होंने कहा कि रात भर सोया नहीं हूँ क्योंकि अपना भाषण रास्ते में ही लिखता रहा। जाहिर है कि उनके भाषण के भाव और भाषा ने उपस्थित जनों को अत्यंत प्रभावित किया। मैं भी अपनी तत्कालीन शक्ति भर उनके कथ्य और कथन को अपने भीतर महसूस किया। बीएचयू के प्रारंभिक दिनों की संभवत: पहले ही वर्ष की साहित्यिक चहल-पहल का चरम उत्कर्ष दिखाई पड़ा। निराला की स्वर्ण जयंती में जिसके आयोजक पं. नंद दुलारे वाजपेई थे। यह आयोजन निराला जी से मिलने का तो था ही साथ-साथ अनेकानेक उन साहित्यकारों को भी

देखने का था जिन्हें हम पढ़ते-सुनते आ रहे थे। सुभद्राकुमारी चौहान, लक्ष्मीनारायण मिश्र, दिनकर, शिवपूजन सहाय आदि। शिवपूजन सहाय की सरलता तो विख्यात थी, उस का साक्षात्कार भी किया। मुख्य द्वार पर उन्हें रोक लिया गया। मुख्य द्वार पर तैनात स्वयं सेवक उन्हें पहचानते नहीं थे न ही उनका नाम सुना था। उन्होंने अपना नाम बताया तो भी स्वयं सेवकों ने उन्हें अंदर नहीं जाने दिया। इसके बाद वर्षों उनसे भेंट नहीं हुई। मैं बनारस में था और वे पटना में। वे सिद्ध विद्वान थे और मैं अभी काफी कुछ सीख रहा था। लेकिन कई साल बाद उनसे मिलने का सुयोग प्राप्त हो ही गया। मैं रिसर्च कर रहा था। बिहार और पटना के अनेक छात्र मेरे सहपाठी रहे। उनकी याद आती रही। मैं कवि था और पटना के कई मेरे सहपाठी भी कवि थे। इसके नाते भी हम लोग एक-दूसरे को चिठियाँ लिखते थे जिनमें एक दूसरे की कविताओं पर विचार होता था। मेरा ख्याल है शायद सन् 1953 का साल था। आरा में एक कवि सम्मेलन आयोजित था। बनारस से हम कई मित्र कविता पढ़ने वहाँ गए थे। जब दूसरे दिन वहाँ से विदा होने लगे तब मेरे मन में आया कि पटना के इतना नजदीक आ गया हूँ तो क्यों न पटना चल पड़ूँ। तो मैं अकेले पटना पहुँच गया। पहुँच तो गया

बीएचयू के प्रारंभिक दिनों की संभवतः पहले ही वर्ष की साहित्यिक चहल-पहल का चरम उत्कर्ष दिखाई पड़ा। निराला की स्वर्ण जयंती में जिसके आयोजक पं. नंद दुलारे वाजपेई थे। यह आयोजन निराला जी से मिलने का तो था ही साथ-साथ अनेकानेक उन साहित्यकारों को भी देखने का था जिन्हें हम पढ़ते-सुनते आ रहे थे। सुभद्राकुमारी चौहान, लक्ष्मीनारायण मिश्र, दिनकर, शिवपूजन सहाय आदि। शिवपूजन सहाय की सरलता तो विख्यात थी, उस का साक्षात्कार भी किया।

लेकिन किसी के मकान का ठौर-ठिकाना नहीं जानता था। किसी छोटे से होटल में ठहर गया। सुबह एक रेस्त्रां में नाश्ता करने लगा तो वहाँ के लोगों से मैंने बात चलाई कि अमुक कवि को जानते हो ते आश्चर्य हुआ कि लोग अनेक कवियों को जानते थे। किसी ने रामनरेश पाठक के घर का पता बता दिया, जो पास ही था। पाठक जी अच्छे गीतकार थे। मैं पाठक जी का पता लेकर ढूँढते-ढूँढते उनके घर जा पहुँचा। पाठक जी प्रसन्न भाव से मिले। पर जब उन्हें पता चला कि मैं होटल में ठहरा हूँ तो उन्होंने अपने को धिक्कारते हुए कहा कि आप हम लोगों के रहते हुए होटल में ठहरे हैं। वे मेरे साथ होटल आए और मेरा सामान उठाकर अपने घर ले आए। उनके माध्यम से और कई लोग आ गए और मैंने पाठक जी से कहा कि मेरी इच्छा यहाँ के विद्वानों से मिलने की है। तो सबसे पहले हम नलिन विलोचन शर्मा के यहाँ गए। लंबी काया का यह व्यक्ति बहुत प्यार और विनम्र भाव से मिला। उसके बाद हम शिवपूजन सहाय जी के यहाँ गए। वे हाथ जोड़े हुए विनम्र भाव से बाहर निकले। बरहज वाली उनकी छवि मुझे अकस्मात याद आ गई। बरहज में तो बातचीत का अवसर नहीं मिला था लेकिन यहाँ उनसे संवाद का बहुत प्रिय अवसर प्राप्त हो गया। ऐसा विनम्र विद्वान

मैंने शायद ही देखा हो। वे अपने संवाद और व्यवहार से हमें कृतार्थ कर रहे थे किंतु लगता था कि वे मुझसे कृतार्थ हो रहे हैं। इसके बाद तो फिर उनके दर्शन का लाभ नहीं मिला। बस उनकी कृतियों के माध्यम से ही उन्हें अपने भीतर अनुभव करता रहा। डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने 'हिंदी-गद्य का विकास' में सहाय जी पर विस्तार से लिखा है जिसे पढ़कर उनके गद्य-साहित्य के सौंदर्य को समझा जा सकता है। वास्तव में द्विवेदी काल के बाद हिंदी गद्य को जिन लोगों ने गरिमा प्रदान की उनमें शिवपूजन सहाय का नाम विशिष्ट है। अब मैं शिवपूजन सहाय के लेखन के एक दूसरे आयाम की ओर आ रहा हूँ। 1954 में जब मैला आंचल प्रकाशित हुआ। तब आंचलिक उपन्यास की धूम मच गई। मैला आंचल के बाद जो उपन्यास लिखे गए वे भी चर्चा में छा गए लेकिन लोगों को धीरे-धीरे याद आया कि शिवपूजन सहाय जी ने सन 1926 में ही 'देहाती दुनिया' नाम का उपन्यास लिखा था जिसमें तत्कालीन गाँव अपनी पूरी अस्मिता से उभरा था। इसमें सरल ग्रामीण जीवन का सुबोध और प्रभावशाली चित्रण किया गया है। स्वयं लेखक के शब्दों में- 'मैं ऐसे ठेठ देहात का रहने वाला हूँ। जहाँ इस युग की नई सभ्यता का बहुत ही धुंधला प्रकाश पहुँचा है। वहाँ केवल दो ही चीजें प्रत्यक्ष देखने में आती हैं- अज्ञानता का घोर अंधकार और दरिद्रता का तांडव नृत्य। वहाँ पर जो कुछ मैंने देखा सुना है उसे यथा शक्ति ज्यों का त्यों अंकित कर दिया।'

जब मैं इस उपन्यास को पढ़ रहा था तो एक प्रसंग और उसमें एक वाक्य ऐसा आया कि मैं हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया। और सोचा कि इतने शालीन और गंभीर व्यक्ति के भीतर भी ऐसे-ऐसे वाक्य छिपे हुए हैं। वह संदर्भ यह था कि बच्चे बूढ़े को चिढ़ा रहे थे-

बुढ़वा बेईमान। मांगे करैली का चोखा।

बाबू शिवपूजन सहाय का गद्य वैविधयपूर्ण किंतु संयमित है। उसमें जीवन को समग्रता में देखने तथा औचित्य के आधार पर निर्णय लेने की प्रवृति प्रधान है। शिवपूजन सहाय के निबंध साहित्य भाषा, सामाजिक धार्मिक मूल्य, सामयिक राजनीति आदि विषयों पर सुरुचिपूर्ण साहित्य शैली में लिखे गए हैं। शिवपूजन सहाय का एकमात्र उपन्यास देहाती दुनिया (1926) है। शिवपूजन सहाय- मेरे सात जन्म (3 खंड़ों में) लिखी है। श्री सहाय द्वारा लिखित संस्मरणों आदि के संकलन का महत् कार्य उनके पुत्र बालेन्दुशेखर मंगलमूर्ति ने किया है। संस्मरण- वे दिन वे लोग (1946), शिवपूजन सहाय ग्रंथावली। सहाय जी नियमित डायरी लिखते थे। मुझे खेद है कि मैं ऐसे व्यक्तित्व के बहुत निकट संपर्क में दूर तक नहीं रह सका।

डॉ. रामदरश मिश्र, आर–38, वाणी विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

शिवपूजन सहाय के जन्मदिन के अवसर पर

भारत यायावर

शिवपूजन सहाय के सम्पादन में निकलने वाली पहली पत्रिका 'मारवाड़ी सुधार' थी। इसके प्रकाशक थे मारवाड़ी सुधार समिति के अध्यक्ष नवरंग लाल तुलसान। इसे मुद्रण करवाने सहाय जी कलकत्ता गए और उन्हें एक और पत्रिका 'आदर्श' के संपादन का दायित्व भी मिल गया। ये दोनों पत्रिकाएँ वे महादेव प्रसाद सेठ के बालकृष्ण प्रेस में मुद्रित करवाते थे। 'आदर्श' पत्रिका में ही निराला की प्रसिद्ध कविता 'जूही की कली' उन्होंने प्रकाशित की थी। 'मारवाड़ी सुधार' का पहला अंक अप्रैल, 1921 में निकला।

शिवपूजन सहाय सधे और सुधी लेखक थे। खांटी देशज परम्परा के संवाहक। हिन्दी साहित्य में उनकी पीढ़ी के साथ ही बाद के लोग भी उन्हें 'आचार्य' कहते थे। अपनी डायरी में उन्होंने इस 'आचार्य' की उपाधि पर विस्मय प्रकट किया है, ठीक उसी प्रकार जैसे महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया था। शिवपूजन सहाय को हिन्दी साहित्य में अजातशत्रु भी कहा जाता है। उनका निर्मल चरित्र सहसा ही सबको आकर्षित करता था। वे हिन्दी साहित्य के अप्रतिम साधक थे, युग निर्माता थे। बकौल नामवर सिंह, हिन्दी साहित्य में आचार्य शिवपूजन सहाय की छवि वही है, जो भारतीय राजनीति में लाल बहादुर शास्त्री की। प्रभामंडल से रहित। अति साधारण। जैसे गँवई गाँव का सामान्य किसान। धर्मभीरू। विनयशीलता की साक्षात् मूर्ति। तपे-तपाए कुंदन-सा खरा। क्षीण तन, पीन मन।

शिवपूजन सहाय कथाकार थे, व्यंग्यकार थे, भाषाशास्त्री थे, भाषा परिमार्जक थे, आलोचक थे लेकिन सबसे बढ़कर वे संपादक थे। 1921 ई. से 'मारवाड़ी सुधार' से प्रारंभ उनका संपादक रूप उनकी जीवन यात्रा के अंतिम पड़ाव तक रहा। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन करते हुए उनका तेजस्वी लेखक निरंतर निखरता गया। 'मारवाड़ी सुधार' से लेकर 'साहित्य' पत्रिका का संपादन करने तक उन्होंने अनेक विषयों पर धारदार लेखन किया है। उनकी पत्रकारिता ही उनकी अनथक साहित्य साधना की पहचान है। आज जब मंगलमूर्ति के संपादन में शिवपूजन

सहाय का समग्र साहित्य दस खण्डों में प्रकाशित हो चुका है, उनके संपादकीय लेखों, टिप्पणियों का अवलोकन कर अब उसका मूल्यांकन करना सहज हो गया है।

शिवपूजन सहाय के सम्पादन में निकलने वाली पहली पत्रिका 'मारवाड़ी सुधार' थी। इसके प्रकाशक थे मारवाड़ी सुधार समिति के अध्यक्ष नवरंग लाल तुलसान। इसे मुद्रण करवाने सहाय जी कलकत्ता गए और उन्हें एक और पत्रिका 'आदर्श' के संपादन का दायित्व भी मिल गया। ये दोनों पत्रिकाएँ वे महादेव प्रसाद सेठ के बालकृष्ण प्रेस में मुद्रित करवाते थे। 'आदर्श' पत्रिका में ही निराला की प्रसिद्ध कविता 'जूही की कली' उन्होंने प्रकाशित की थी। 'मारवाड़ी सुधार' का पहला अंक अप्रैल, 1921 में निकला, जिसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि मारवाड़ी-समाज की कुरीतियों को दूर करके उस समाज का वास्तविक परिष्कार करना ही है। 1923 ई. में हिन्दी के कई साहित्यकारों का निधन हो गया। अप्रैल, 1923 के सम्पादकीय का शीर्षक है- 'हिन्दी का घोर दुर्भाग्य!' इसमें वे लिखते हैं- 'इस साल हिन्दी के कई सराहनीय सपूत स्वर्गवासी हो गये। पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के वियोग से हिन्दी-प्रेमियों के कलेजे पर जो चोखी चोट पहुँची थी उसका घाव अभी हरा ही था, जरा भरा भी नहीं था, तब तक फिर दोबारा वज्रपात हो गया। पं. रामेश्वर भट और पं. बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' हिन्दी-संसार से सदा के लिए विदा हो गये। साहित्य-भण्डार के ये दोनों जगमगाते हुए जवाहिर कितने अनमोल थे, यह कूता नहीं जा सकता।' मई, 1923 में उन्होंने कई छोटी-छोटी सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखीं, जिनमें एक है- 'आदर्श' की भ्रूण-हत्या! इस टिप्पणी की शुरुआत वे आत्मगत वक्तव्य से करते हैं- 'मेरे हाथ में दो पत्र हैं। एक तो यह और दूसरा 'आदर्श'। दोनों ही के प्रकाशक मारवाड़ी हैं। यह 'सुधार' तो मारवाड़ियों की एक सार्वजनिक संस्था का मुख-पत्र है, पर 'आदर्श' का सम्पादन मेरे काँपते हुए हाथों में जबरदस्ती सौंपा गया, उस समय ऐसी-ऐसी लम्बी आशाएँ मेरे सामने उपस्थित की गयीं कि साहित्य-सेवा के नाम पर, स्वार्थसिद्धि का बीड़ा, मैंने झट उठा लिया। भावी आशाओं पर विश्वास करके मुझे आग्रह और अनुरोध अंगीकार करना पड़ा। किन्तु नतीजा बुरा हुआ। पाँच अंक निकल कर 'आदर्श' बन्द हो गया।' उसी समय 'समन्वय' नामक पत्रिका भी निकलती थी, जिसमें सम्पादन सहयोग निराला जी करते थे। सहाय जी भी समय निकालकर इस मासिक पत्रिका के प्रकाशन में सहयोग करते थे। उन्होंने दूसरी टिप्पणी लिखी- सहयोगी 'समन्वय' की अपूर्वता। इसमें वे लिखते हैं- 'श्रीरामकृष्ण संघ जैसी संस्था, बंगाल के सिवा, भारत के किसी प्रान्त में नहीं है। ..... संघ की एक शाखा कलकत्ता में अद्वैताश्रम नाम से प्रसिद्ध है। इसी आश्रम से 'समन्वय' नामक मासिक-पत्र निकलता है। हिन्दी में वह अपने ढंग और विषय का एक ही उत्तम पत्र है। इसके सम्पादक हैं- स्वामी माधवानन्द जी महाराज। आप बंगाली हैं और अंग्रेजी के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। किन्तु, जिस योग्यता से आप 'समन्वय' का सम्पादन कर रहे हैं, वह हिन्दी वालों के लिए शुभ होने पर भी कुछ आश्चर्यजनक है।' तीसरी टिप्पणी मार्च, 1923 में हुए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कानपुर पर है। इस समारोह की अनेक विशेषताओं को उन्होंने गिनाया, जिसमें प्रमुख है- सम्मेलन के स्वागतमंच पर श्रद्धेय द्विवेदी (आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, सरस्वती-सम्पादक) की मंजुल मूर्ति। सम्मेलन के प्राणाधार और कर्णधार बाबू पुरुषोतमदास जी टंडन का सभापतित्व। दो महत्त्वपूर्ण

प्रस्तावों की स्वीकृति- एक तो हिन्दी के विराट संग्रहालय की स्थापना और दूसरा ब्रजभाषा कोष की आवश्यकता की पूर्ति। बड़ी मेहनत और खोज से लिखा हुआ टण्डन जी का भाषण। द्विवेदी जी का महत्त्वपूर्ण भाषण तो इतना सरल है कि, आज तक ऐसा दर्पणोज्ज्वल भाषण सम्मेलन के मंत्र से किसी ने नहीं दिया।

'मारवाड़ी सुधार' और 'आदर्श' के साथ-साथ उन्हीं दिनों 'उपन्यास तरंग' नामक मासिक पत्रिका का संपादन भी सहायजी ने किया। ये पत्रिकाएँ कई कारणों से अचानक बन्द हो गईं। और वे बेकार हो गए। फिर 'मतवाला' का प्रकाशन शुरू हुआ। उन्होंने लिखा है- 'मारवाड़ी सुधार' बन्द होने पर बालकृष्ण प्रेस के मालिक महादेवप्रसाद सेठ ने मुझसे अपने प्रेस में ही रहने का अनुरोध किया। उनका और मुंशी नवजादिक लाल जी श्रीवास्तव का आग्रह हुआ कि हास्यरस का एक सुन्दर साप्ताहिक पत्र निकाला जाय। यह प्रेरणा बंगला के एक हास्यरसात्मक साप्ताहिक 'अवतार' से मिली।' 'मतवाला' साप्ताहिक रूप में निकालने का निर्णय हुआ। इसमें अग्रलेख अर्थात् सम्पादकीय शिवपूजन सहाय लिखा करते थे तथा 'मतवाला' के हर अंक में मुखपृष्ठ पर निराला की कविता छपा करती थी। शिवपूजन सहाय तथा नवजादिक लाल श्रीवास्तव 'मतवाले की बहक' एवं 'चलती चक्की' नामक स्तम्भ लिखा करते थे। निराला जी गर्जन सिंह वर्मा नाम से 'चाबुक' नामक स्तम्भ में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों की समालोचना लिखा करते थे। पूरे अंक का संपादन और प्रूफ संशोधन शिवपूजन सहाय किया करते थे, किन्तु संपादक के रूप में महादेव प्रसाद सेठ का नाम जाता था। मुखपृष्ठ पर निराला का लिखा यह दोहा हर अंक में छपा करता था--

अमिय गरल, शशिसीकर-रविकर, राग-विराग भरा प्याला

पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह मतवाला।

'मतवाला' का प्रवेशांक 26 अगस्त, 1923 ई. को निकला। इसका सम्पादकीय अग्रलेख का शीर्षक है- 'आत्म-परिचय'। इसके प्रारंभ में उन्होंने शंकर की एक अभिनव कथा प्रस्तुत कर 'मतवाला' पत्र के उद्देश्य एवं स्वरूप को इन शब्दों में रूपायित किया- इसमें सच्ची और स्वाभाविक सूचना रहेगी। इसके द्वारा मैं यथेष्ट रीति से इस देश की आन्तरिक दशा बतलाऊँगा। लेकिन बतलाने का ढंग निराला होगा। जो मेरी ही तरह स्वतंत्र 'मत' वाला होगा वही उस ढंग का समझने वाला होगा।

'मतवाला' के दूसरे अंक 1 सितम्बर, 1923 में कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर 'जाके घर में नौलख गाय सो क्या छाँछ पराई खाय?' नामक सम्पादकीय में वे कृष्ण का आवाहन इन शब्दों में करते हैं- 'बहुत मेवा-मिश्री चख चुके हो, अब आकर सूखा चना चबाना पड़ेगा। जिस भारत की मिट्टी को मुँह में लेकर तुमने तीनों लोक का दृश्य दिखाया था वही भारत अब नाकों चने चबा रहा है- उसे उबारने आओगे तो तुम्हें भी लोहे का चना चबाना पड़ेगा। पर तो भी आना ही होगा। जल्दी आओ, एक बार भी तो जन्माष्टमी को सार्थक कर जाओ। तुम्हारे आने योग्य समय हो गया है। भारत के भाग्याकाश में काले-काले बादल गरज रहे हैं। अश्रु धाराएँ बरस रही हैं। अज्ञान का अंधकार छा

रहा है। भाव और भाषा रूपी वसुदेव-देवकी हृदय कारागार में बंद हैं। जिह्वा-द्वार पर कानून का संतरी खड़ा है।' पराधीनता बोध की कितनी गहरी पीड़ा से निकली हैं ये पंक्तियाँ! मर्मभेदी आवेगमयी भाषा में कितनी गहरी संवेदना है।

'मतवाला' के प्रवेशांक में शिवपूजन सहाय का स्तम्भ 'मतवाले की बहक' नहीं छप पाया था। इसका प्रारम्भ दूसरे अंक में हुआ। व्यंग्य-विनोद से भरी इन लघुकाय टिप्पणियों में उनकी आलोचनात्मक दृष्टि का भी पता चलता है। नौकरशाही और कानून के सन्दर्भ की यह टिप्पणी देखें- कुछ लोगों का कहना है कि नौकरशाही ने बहुत से असहयोगियों पर काल्पनिक दोष लगाकर उन्हें जेल में ठेल दिया। उन्हें मालूम होना चाहिए कि काल्पनिक अपराध पर तो महाराज नन्दकुमार को फाँसी तक दे दी गई थी, असहयोगियों को यदि जेल ही हुआ तो कौन-सी बड़ी बात हुई? यह तो नौकरशाही का सनातन धर्म है।

मदनमोहन मालवीय उस समय छुआछूत मिटाने के लिए आन्दोलन कर रहे थे। उनपर यह टिप्पणी देखें- शायद वृद्धावस्था के कारण श्रद्धेय मालवीय जी की बुद्धि सठिया गई है। इसी से उन्होंने एक ही कुएँ में सब जाति के मनुष्यों को पानी भरने का प्रस्ताव पास होने दिया है। शिव! शिव! इस अन्धेर का भी कहीं ठिकाना है? अब धोबी, डोम, चमार, मेहतर और ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि एक ही कूप से जल भरने लगेंगे तो हमारे पुराने ख्याल के कूप-मंडूक कहाँ रहेंगे?

उस समय श्यामसुन्दर दास नागरी प्रचारिणी सभा के सर्वेसर्वा थे। उनपर किया गया व्यंग्य देखिए- बाबू श्यामसुन्दर दास बी.ए. कोषकार हैं। फिर क्या कहना! जो कुछ कहें- जो कुछ पास कर दें, वही कोष में सुरक्षित हो जायगा। खाता न बही, जो आप कहें सो सही। नागरी प्रचारिणी सभा की वार्षिक रिपोर्ट में आपका 'माधुरी और सरस्वती की होड़ा-होड़ी' का उल्लेख देख 'पियक्कड़' घोड़ा-घोड़ी की तरह हिनहिना पड़े।

कुछ चुटीली बातें और देखिए- (1) अमेरिका में एक 93 साल का बूढ़ा आदमी है। उसके 50 लड़के, 150 पोते तथ 27 पड़पोते हैं। राजा सगर की सन्तान तो नहीं हैं। (2) इंगलैंड में एक बुढ़िया के 93 साल की उमर में तिबारा दाँत निकल रहे हैं! न जाने अब किसको चबाएगी! (3) यमराज की बहन यमुना के किनारे काँग्रेस की छमासी (श्राद्धक्रिया) विधिपूर्वक समाप्त हो गई। बड़े-बड़े महापात्र जुटे थे। खूब चकाचक लड्डू उड़े। रसगुल्ले उड़े। गुलछर्रे उड़े। बेचारी बुढ़िया का श्राद्ध था न ? (4) सुनते हैं, कलकत्ते के कुछ मेहतर भी अखबार पढ़ते हैं। इसलिए अब ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि उच्चवर्ण वालों को अखबार पढ़ना छोड़ देना चाहिए। क्योंकि मेहतर का काम उच्चवर्ण वालों को नहीं करना चाहिए। (5) दिल्ली में एकता का अभिनय करते हुए स्वराज्य पार्टी ने सत्याग्रह का समर्थन किया और असहयोग दल ने कौन्सिल प्रवेश का। 'कुछ झुक के वह सीने लगी, कुछ झुक के मैं सीने लगा।' (6) हिन्दू लोग मस्जिदों के सामने ढोल बजा रहे हैं और मुसलमान लोग मंदिरों की मूर्तियाँ तोड़ रहे हैं। इसी तरह परस्पर मिल-जुलकर मस्जिदों और मंदिरों का सर्वनाश कर डालना चाहिए, क्योंकि इन्हीं दोनों ने मिल-जुलकर देश का सर्वनाश किया है।

'मतवाला' में लिखे शिवपूजन सहाय के लेखों और टिप्पणियों में एक नवीन तरह की रचनात्मक भाषा है। भाषा में सादगी के साथ प्रवाह है। व्यंग्य है। मस्तमौलापन है। छल-छद्म को पहचानने की अचूक दृष्टि है। 1923 ई. में असहयोग आंदोलन समाप्त हो चुका था, पर उसके समापन का कारण सिर्फ चौराचौरी कांड ही नहीं था। काँग्रेस पार्टी में खाऊ-उड़ाऊ लोग भरे पड़े थे। उत्सव मनाने के लिए सभा-समारोह होता था। शिवपूजन सहाय ने 22 सितम्बर, 1923 के 'मतवाला' में 'औघड़ों ने थूककर चाटा!' नामक अग्रलेख का प्रारम्भ इन शब्दों में किया है- 'भारत की बुढ़िया राजधानी में एक पंडाल बनाया गया। खद्दरधारियों का मेला हुआ। भों-भों करने वाली मोटरें दौड़ीं। तालियाँ पिटीं। जयजयकार हुई। मोटे-मोटे गजरे पहनाये गये। गरमागरम चाय के प्याले उड़े। ..... पब्लिक के पैसे की आतिशबाजी उड़ी। चंदे की रकम ने 'माले मुफ्त दिले बेरहम' का सबक सीखा। देश के हजारों रुपयों पर- और, साथ ही, जनता की आशाओं पर, पानी फिर गया। दरिद्र भारत का द्रव्य पानी की तरह बहाकर पानी पर नींव डाली गयी। मीठा पानी, खारा पानी और गरम पानी की बोतलें ढाल-ढालकर- पानी पी-पीकर- असहयोग की असफलता को कोसा गया। काँग्रेस बेचारी पानी-पानी हो गयी। वाह!' इस लेख में तीव्र आलोचनात्मक और व्यंग्यात्मक स्वर है। देश में चलने वाले राष्ट्रीय आंदोलन के कर्णधारों और उनके चेले-चपाटों के खेल को समझने वाले इस मतवाले संपादक की तीक्ष्ण दृष्टि और प्रखरता उनके ओजस्वी व्यक्तित्व का परिचायक है। आगे वे लिखते हैं- 'अधोरपन्थियों के चेले कहा करते हैं कि लालाजी और मालवीय जी जैसे राजनीतिक, देशबन्धु और नेहरूजी जैसे स्वार्थत्यागी तथा अलीबन्धु जैसे निर्भीक वीर, संसार में दुर्लभ हैं। भगवान करे दुर्लभ ही रहें। अभागे भारत को तो सुलभ भी हुए, तो अन्त में उसी की टाँग पकड़कर उसे ही घसीटने लगे। घसीटते-घसीटते फिर उसी 'दरवाजे' पर ले जाकर उसकी लाश रख आये जहाँ से उसको अधमरा उठाकर 'कांग्रेस-अस्पताल' में लाये थे।' यह थी सत्याग्रह आंदोलन की असफलता का कारण, क्योंकि इसके वाहक ही इसके संहारक थे। सहाय जी प्रार्थना करते हैं कि हे भगवान! इन राजनीतिज्ञों और स्वार्थत्यागियों के जीते जी इस देश की जनता को कभी सत्याग्रह करने योग्य मत बनाना। नहीं तो जनता को तैयार देखकर ये धुरंधर वीर आफत मचा देंगे।

दूसरी ओर भारत में अंग्रेजी राज इतना दमनकारी था कि असहयोग करने के कारण उसने गांधी को जेल में कैद कर रखा था। इसके बावजूद अनेक भारतीय लोग अंग्रेजी राज की ओर आशा भरी नजरों से देखते थे। सहाय जी लिखते हैं- 'हिन्दुस्तान एक अजीब देश है। इसकी खोपड़ी ही विचित्र है। यह चाहे लाख हताशा हो, अपमानित हो, पीड़ित हो, पर अपनी बुरी लत नहीं छोड़ता है। अनेक बार यह अँगरेजी राज्य की न्याय-वाटिका के कड़वे फल चख चुका, पर अभी तक यह उत्सुकता से किसी-न-किसी तरह के फल की प्रतीक्षा करता ही रहता है। ....जिसने महात्मा गांधी जैसे विश्वप्रेमी को कैद कर रक्खा है उससे फिर किसी तरह की आशा रखना निन्दनीय मूर्खता नहीं तो और क्या है? जिसने भारत की अब तक की सारी आकांक्षाओं को निर्दयतापूर्वक पद-दलित किया है उससे न्याय पाने की आशा रखना चूतियापंथी नहीं तो और क्या है?' फिर वे भारतवासियों को यह संदेश देते हैं कि दूसरों का आसरा बिलकुल छोड़ दें, किसी और का सहारा पाकर उठ खड़ा

होने का भरोसा न करें। क्योंकि- मुक्ति बाहरी साधनों से नहीं मिलती। भीतरी साधनों के सदुपयोग से ही मुक्ति मिलती है। अन्तरात्मा पापी है तो पत्थर की मूर्ति के आगे हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने से मुक्ति नहीं मिल सकती।

'मतवाला' में शिवपूजन सहाय की जिस रचनात्मक और आवेगमयी भाषा के दर्शन होते हैं, वह बाद की पत्रकारिता के लेखन में नहीं दिखाई पड़ते। इस भाषा में आलोचनात्मक दृष्टि है, व्यंग्य है, कटाक्ष है, भावावेश है, तत्त्वान्वेषी विवेक है, अपने समय और समाज की हलचलों को बारीकी से देखने और समझने की समझ है, वह अद्‌भुत है, बेमिसाल है। 'एकहिं बार आस सब पूजी!' नायक अग्रलेख में वे 'देश' को भारत के ग्रामीण जनता का पर्यायवाची समझते हैं- ''देश' से आप क्या समझे? 'देश' मोटर पर नहीं चढ़ता, ताली नहीं पीटता, पत्र-सम्पादन नहीं करता, लेक्चर नहीं झाड़ता, प्रस्ताव पास नहीं करता, तर्कशास्त्रियों को गड़बड़झाला नहीं समझता- उसको तो स्वत्व का भी ज्ञान नहीं.....। वह तो गन्दे शहरों से दूर लहलहाते खेतों के बीच में निवास करता है। जहाँ वह रहता है वहाँ तक मोटर नहीं पहुँचती, अखबार नहीं पहुँचते, बिजली नहीं पहुँचती, राजनीति की गन्ध तक नहीं पहुँचती। पहुँचती है सिर्फ उस परमाराध्य कर्मयोगी की आत्मा की दिव्यज्योति, पहुँचता है वायुमण्डल में उड़ता हुआ सिर्फ गांधीबाबा का सन्देश। न जाने उस प्रातः स्मरणीय नाम में कौन-सा जादू है।'

सहाय जी काँग्रेस के अधिवेशनों, काँग्रेसी नेताओं का आभिजात्य और धन-पद की लिप्सा को भली-भाँति जानते-समझते थे। वे खण्ड-खण्ड पाखंड को पहचानते थे। उनकी आस्था सिर्फ गांधी जी में थी। काँग्रेस के अधिवेशन होते रहते थे। उसमें जय-जयकार करने वाले नेताओं के चमचे, भड़कीले जुलूस, अखबारनवीसों की गला फाड़ चिल्लाहट, मंच पर फुदकने वाले नेता- उनको नहीं सुहाते थे। फिर एक ही दल में दल-पर-दल। इस दलबन्दी से देश का और पतन होगा, वे जानते थे। सहाय जी मानते थे कि भारत जैसे पराधीन देश में, जो मनुष्यों और जातियों तथा भाषाओं और धर्मों का अजीब चिड़ियाखाना है, दलबन्दी का परिणाम कभी अच्छा हो नहीं सकता।

दूसरी ओर धर्म-धुरंधरों से भरे पड़े इस देश का भला कैसे हो सकता है? 'जीना हो तो मरना सीखो!' नामक लेख की शुरुआत दिलचस्प शब्दावली में इस प्रकार करते हैं- 'आज सितासित-संगम पर बड़ी चहल-पहल है। दल के दल दुमदार जुटे हुए हैं। यज्ञ की भी तैयारी है। बड़े-बड़े अगड़धत्त अखाड़ाधीश, महाराजा-बहादुर, पग्गड़धारी शास्त्री जटा-फटाका-धारी मालपूआ-चब्बू और लच्छेदार भाषण देने वाले सन्यासी एकत्र हैं।' हिन्दू-मुस्लिम एकता का नारा असहयोग आन्दोलन के दौरान भी दिया गया था। जितना ही दोनों सम्प्रदायों को मिलाने की चेष्टा हुई, उतना ही उसके विरोध में जगह-जगह दंगे हुए। शिवपूजन बाबू ने 'मतवाला' में 'दाढ़ी और चोटी का मेल!' शीर्षक टिप्पणी में व्यंग्यात्मक लहजे में इस मसले को उठाया है। वे कहते हैं- 'देश के बड़े-बड़े बुद्धिमानों, शुभचिन्तकों और नेताओं ने एक स्वर से कह दिया है कि जब तक दाढ़ी और चोटी में गठबंधन न होगा, शेख साहब और शर्माजी घी-शक्कर की तरह घुल-मिलकर एक न हो जायेंगे तब तक भारत का कल्याण न होगा और न पराधीनता से इसका पिण्ड छूटेगा।'

'मतवाला' के प्रकाशन के एक वर्ष पूरा होने पर उसका अग्रलेख शिवपूजन सहाय ने लिखा, जिसमें देश के राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक परिदृश्य का अवलोकन करते हुए, इसकी लोकप्रियता का श्रेय स्वयं अपने को, निराला एवं नवजादिक लाल श्रीवास्तव को दिया। 'आत्मकथा' शीर्षक इस अग्रलेख में सबसे पहले देश की दयनीय राजनीतिक दशा का विवरण इस प्रकार किया गया है- 'राजनीतिक परिस्थिति में उथल-पुथल मचा हुआ है। यह निराशा और दुविधा की बीहड़ घाटियों में भटक रही है। दलबन्दियाँ सिर उठा रही हैं। सहयोग-शक्ति की कमर टूट गई है। आत्म-विश्वास कलेजा थामकर बैठ गया है। धैर्य की नाड़ी छूट गई है। साहस के पैर उखड़ चुके हैं। उत्साह बंगले झाँक रहा है। चरखा सिर धुन रहा है। खद्दर का दम घुट रहा है। 'अहिंसा' की कातर दृष्टि शून्य आकाश से जीवन की भिक्षा माँग रही है। 'दासता' की आँखों में चरबी छा गई है। नौकरशाही की पाँचों उँगलियाँ घी में हैं। दाढ़ी और चुटिया में गाँठ पड़ गई है। एकता रँडापा झेल रही है। दाढ़ीवालों के पेट में दुगुनी लम्बी दाढ़ी है और चोटीवालों के पीछे चोटी से भी लम्बी दुम!'

यह थी एक मत-वाला पत्रकार की भेदक दृष्टि। व्यंग्य और वक्रोक्ति से भरी हुई। एक अनूठी और विलक्षण रचनात्मक भाषा। नवजागरण की चेतना से युक्त। छल-छद्म को पहचानती हुई। 'मतवाला' में एक तरफ निराला की प्रतिभा का विस्फोट दिखाई पड़ता है, उग्र की कहानियों में विद्रूप के प्रति वितृष्णा, तो हिन्दी भूषण, विनम्रता की प्रतिमूर्ति शिवपूजन सहाय का तेजस्वी रूप। 'मतवाला' में एक तरफ निराला थे, तो दूसरी तरफ शिवपूजन सहाय स्वयं ही मतवाला थे। नशे में धुत्त नहीं, न सनक, न गुस्सा- परन्तु संतुलित और सजग दृष्टि वाला, अपना एक अलग 'मत' रखने वाला मतवाला।

शिवपूजन सहाय ने 'मतवाला' के बाद माधुरी (लखनऊ), गंगा (सुलतानगंज), बालक (लहेरियासराय), जागरण (काशी), हिमालय (पटना) तथा साहित्य (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटना) आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया और विपुल लेखन किया, परन्तु 'मतवाला' की पत्रकारिता में जो तीखा स्वर है, उनका ओजस्वी स्वरूप है, वह सबसे महत्त्वपूर्ण है। उनका सादगीपसंद व्यक्तित्व, वाद-विवाद या बहस से परे रहना, उनकी मासूमियत के भीतर एक धधकती ज्वाला थी, यह 'मतवाला' में व्यक्त उनके विचारों से मिलता है। 'मारवाड़ी सुधार' का संपादन उनका प्रारंभ था और 'मतवाला' उनका उठान था, जहाँ उनकी प्रतिभा का तेज प्रकट हुआ। मतवाला-मंडल का यह लेखक अपने मस्तमौलापन के लिए अलग पहचान रखता है। अपने 'मत' पर अडिग रहने वाला साहित्य का यह अनन्य साधक, हिन्दी भाषा और साहित्य का निर्माता और उन्नायक, प्रखर पत्राकारिता का प्रेरणास्तम्भ है।

भारत यायावर, यशवंत नगर, हजारीबाग–825301, (झारखण्ड)
मो० : 6204130608

उत्तम पुरुष की विरासत

(शिवपूजन सहाय के निबंध)

भृगुनंदन त्रिपाठी

शिवपूजन सहाय के लेखन की शुरूआत द्विवेदी युग में हुई थी, पर वे स्वच्छन्दतावादी लेखक थे। 'तूती-मैना जैसी कहानी जिसकी रचना 1911-12 ई. में हुई थी, इस मान्यता को मार्मिक रीति से सम्पुष्ट करती है। यह छोटी सी रचना अपने कथ्य, रूप, लय, संवेदना आदि सभी दृष्टियों से स्वच्छन्दतावादी रचना है। और तो और अपनी आकृति-प्रकृति को देखते हुए यह गद्य में बिलकुल छायावादी प्रगीतों जैसी रचना है, जो आगे लिखे गये, किन्तु मैथिली शरण गुप्त' 'झंकार' के प्रगीतों में और जयशंकर प्रसाद अपनी आरंभिक कहानियों में ऐसी रचनाएँ कर रहे थे।

शिवपूजन रचनावली के दो भिन्न संस्करणों के रूप आज हमारे सामने हैं। पहला संस्करण राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से बहुत पहले प्रकाशित हुआ था। दूसरा वृहत् संस्करण लेखक की जन्मशती के बाद उनके कनिष्ठ पुत्र और हिन्दी लेखक मंगलमूर्ति द्वारा सम्पादित परिवर्धित रूप में सामने आया है। आज भी रचनावली के ये दोनों संस्करण दोनों रूप प्रासंगिक और संरक्षणीय है। कतिपय कारणों से परिषद् द्वारा प्रकाशित रूप का संरक्षण आज भी जरूरी है। इन कारणों पर विचार करने का यहाँ अवकाश नहीं है, इसके लिए स्वतंत्र आलेख आवश्यक होगा। प्रस्तुत आलेख का संकल्पित विषय तो लेखक का निबंध साहित्य ही है। इतना स्मरणीय है कि शिवपूजन सहाय अत्यंत सजग लेखक थे और विचारशील सतर्क सम्पादक भी। दोनों की स्तरों पर उन्होंने ऐतिहासिक प्रतिमान कायम किए। परिपक्व प्रज्ञा और परिणत मनीषा का ऐसा लेखक, जो विदग्धशील और संयतभाषी हो, निपुण शैलीकार हो, जो अभिव्यक्ति और सम्प्रेषण के स्तरों पर अपनी वल्गा खींचने और ढील देने में प्रतिपद धीर और कुशल हो, उसकी आँखों के सामने रूपाकार ग्रहण करनेवाली रचनावली निरा संग्रह नहीं हो सकती। खास तौर पर तब जब इतना कुछ जो दूसरे संस्करण में शामिल किया जा सका, बाकी, बिखरा और असंकलित रह गया हो।

शिवपूजन सहाय अपने समय के एक श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रकार और लेखक थे।

उनकी सर्वतोमुखी विशेषता यह थी कि उनके भीतर एक सर्जक कलाकार और एक खुली आँख-कान का सारग्राही ग्रंथरसिक बहुज्ञ पंडित निगूढ़ थे। कुछ इस तरह कि शब्द-वाक्य और शैली-सर्वत्र, बूटे-बूटे में उनकी खुशबू, उनका उजास महसूस होता है, पर खोजने पर भी उनका संधान नहीं मिलता। इसीलिए कहा-निगूढ़। सामने हमेशा रही-उनकी साहित्यिक पत्रकारिता, उनका लेखन, जो ज्यादातर अग्रलेखों-सम्पादकीयों, टिप्पणियों, संस्मरणों आदि के रूपों में है, जिनमें कहीं व्यंगय-परिहास विनोद कहीं नैतिक प्रबोधन अथवा कहीं सम्मान - श्रद्धा - प्रशंसा - कीर्तन आदि की संयत रंगत है। सर्वत्र अक्रित्रिम लालिल का ताजगीबख्श लेप और रूचिकर चाशनी चढ़ी हुई। वे दिखाते कुछ भी नहीं, पर बहुत कुछ दिख जाता है, छिपाने कुछ भी नहीं, पर बहुत कुछ छिप जाता है। गद्य शैली का यह विधान और वितान संस्कृत और अंग्रेजी के श्रेण्य गद्यकारों की याद दिलाता है। शिवपूजन सहाय का 'आइ-क्यू', उनका 'सामान्य ज्ञान' गहन और विस्तृत है। उनके साहित्य में 'विशेष ज्ञान' जैसा तो कुछ है नहीं। विशेष ज्ञान से तो वे सतर्क कतराते हुए बचते चलते हैं। उनके साहित्य में सबकुछ समान कुलगोत्र का सामान्य ही है। सन्दर्भों में पौराणिक-ऐतिहासिक एवं प्राचीन और मध्यकालीन साहित्यिक तथा भाषा में संस्कृत और तत्सम उनके साहित्य में एक आभिजात्य के स्रोत दिखाई पड़ते है, पर भोजपुरी और ठेठ 'देखभाषा' के मुहावरे और कहावतों का ठाट और रचाव-वसाव उस आभिजात्य को अपने भीतर सहजता-सुकरता से घुला-पचाकर एकसार कर देता है। इस हिकमत की झलक पुराने लेखकों में प्रकृत स्फुरणा के कारण चन्द्रधर शर्मा गुलेरी में, समस्त विचार गांभीर्य के बावजूद रामचन्द्र शुक्ल और फिर अग्रतर पीढ़ी के हजारी प्रसाद द्विवेदी में दिखाई पड़ती है। शिवपूजन सहाय की साधना प्रच्छन्नत: सन्दर्भो की और प्रकट रूप से शब्द, वाक्य, शैली और रूपान्वेषण की साधना है। सन्दर्भो से मेरा आशय सामाजिक जीवन और प्राचीन नवीन साहित्य के सन्दर्भों से है, जो लेखक द्वारा अंगीकृत या आत्मीकृत होकर स्मृति और परम्परा से उसके साहित्य की स्वाभाविक एकतारता सिद्ध करते है। शब्दों से इस पत्रकार लेखक का परिचय और प्रगाढ़ आत्मीयता सिद्ध कवियों सरीखी है। मुहाबरों मे चिलकता अर्थ और चोख-चुभती कथन भंगी गोया प्रतीक्षा में हो और लेखक द्वारा छुई और उठाई जाने के लिए बेताब है। कहावतों में कठुआता-पथराता अनुभव लेखक के दरसपरस से मानो पिघलने और खदबदाने लगता हो। वह अगरा-धाधाकर ऐसे आ चिपकता है जैसे लेखक का अपना ही विच्छिनन-विस्मृत अनुभव-अंश हो।

शिवपूजन सहाय के लेखन की शुरूआत द्विवेदी युग में हुई थी, पर वे स्वच्छन्दतावादी लेखक थे। 'तूती-मैना जैसी कहानी जिसकी रचना 1911-12 ई. में हुई थी, इस मान्यता को मार्मिक रीति से सम्पुष्ट करती है। यह छोटी सी रचना अपने कथ्य, रूप, लय, संवेदना आदि सभी दृष्टियों से स्वच्छन्दतावादी रचना है। और तो और अपनी आकृति-प्रकृति को देखते हुए यह गद्य में बिलकुल छायावादी प्रगीतों जैसी रचना है, जो आगे लिखे गये, किन्तु मैथिली शरण गुप्त' 'झंकार' के प्रगीतों में और जयशंकर प्रसाद अपनी आरंभिक कहानियों में ऐसी रचनाएँ कर रहे थे। आगे दूसरे दशक में कर्नल टॉड के राजस्थान के इतिहास की उपजीव्यता में लिखी विषपान-मुण्डमाल-सतीत्व की उज्जवल प्रभा जैसी कहानियाँ रोमांस के उस नमूने का कथा गद्य

में व्यक्त रूप हैं जैसी अनेक कविताएँ प्रसाद और निराला ने लिखी-पेशोला की प्रतिध्वनि, महाराणा का महत्व, महाराज शिवाजी का पत्र आदि। जैसे स्वच्छन्दतावाद से अलग हटकर अप्सरा, अलका जैसे उपन्यास नहीं समझे जा सकते, उसी तरह ब्रजनंदन सहाय ब्रजवल्लभ जैसे उपन्यासकार, रायकृष्णदास, विनोद जैसे कहानीकार नहीं समझे जा सकते। कहना न होगा कि शिवपूजन सहाय का लेखन भी अच्छी तरह बिलकुल नहीं समझा जा सकेगा। सिर्फ कथा कहानी ही नहीं, निबंध लेख टिप्पणियाँ और तत्सामयिक साहित्यिक पत्रकारिता के बहुरूप-बहुवर्णी गद्य की रचना भी शिवपूजन सहाय ऐसी ही कर रहे थे। बानगी के तौर पर सन 18 की 'आर्यमहिला' में प्रकाशित कथाभासी निबंध 'मैं अंधी हूँ' देखें। इस रचना में विवाह और प्रियतम के दर्शन सुख के बाद अपनी आँखे गँवा चुकी युवती की अंधी होने की व्यथा-कथा अपनी राम कहनी की तर्ज पर कही गई है। ''यदि जन्मांध होती तो चर्भ चक्षुओं में चकाचौंध डालनेवाला यह चंचला-चपल जगत् का चाकचिक्य मेरे हृदय की मृदुल-मंजुल कामनाओं को मुग्ध नहीं करने वाला। किन्तु नहीं,

उनकी सर्वतोमुखी विशेषता यह थी कि उनके भीतर एक सर्जक कलाकार और एक खुली आँख-कान का सारग्राही ग्रंथरसिक बहुज्ञ पंडित निगूढ़ थे। कुछ इस तरह कि शब्द-वाक्य और शैली-सर्वत्र, बूटे-बूटे में उनकी खुशबू, उनका उजास महसूस होता है, पर खोजने पर भी उनका संधान नहीं मिलता। इसीलिए कहा-निगूढ़। सामने हमेशा रही-उनकी साहित्यिक पत्रकारिता, उनका लेखन, जो ज्यादातर अग्रलेखों-सम्पादकीयों, टिप्पणियों, संस्मरणों आदि के रूपों में है, जिनमें कहीं व्यंगय-परिहास विनोद कहीं नैतिक प्रबोधन अथवा कहीं सम्मान - श्रद्धा - प्रशंसा - कीर्तन आदि की संयत रंगत है।

भगवान ने तो मुझे कोकिल-कुल-कूजित सुगंध-पुष्प-पूजित बसंत वैभव की, सावन-भादो के उमड़-घुमड़ कर घहराने वाले मेघ के अंक में बिजली की, नववर्षा के वारि-बिन्दुओं की मुक्तावली से शोभित सुनील गगन में विविध रंगों से रंजित इन्द्र-धनुष की और मंजरी-मंडित रसालकुंज के पासवाली विमल-सलिला सरसी के सुनील स्वच्छ वक्ष: स्थल पर विकच-कमल माला की सरल शोभा का चारू चित्र दिखलाकर, प्राणपोषक हृदयेश्वर के मंदस्मित-विकसित मुखमण्डल के दिव्य सौन्दर्य के दर्शन से इन्हें सफल (सजल) कर लेने के बाद, सदा के लिए अंधी बना दिया।'' अलंकृत तत्सम शब्दबंध ही नहीं, भावोच्छ्वास-शिल्पित लम्बा वर्णन-प्ररोह भी और एक ही वाक्य में-यह स्वच्छन्छदतावाद का विन्यास है। एक उदाहरण और भी- ''हा! हन्त!! मेरे जीवनसर्वस्व जब मुझे गले लगाते हैं तब बार-बार बिलख-बिलखकर अब यही कह उठते हैं-'' मेरी इस कंचन की कल्पलतिका से माणि के दोनों फूलों को किस निर्दय ने तोड़ लिया? मेरे मानस-सरोवर में खिले रहने वाले कमल के रसिया भ्रमर युगल को कौन उड़ा ले गया? मेरे कोमल

कलेजे पर चुभनेवाले चोखे तीरों को निकालकर-बिना मरहमपट्टी किये ही-कौन निठुर ले गया? किस निगोड़े ने इन लाड़ले मृग शावकों को वध कर दिया? रसकुण्ड की इन मछलियों को किसने महाजाल में फँसाया? इस सुषमा-सागर को किसने रत्नविहीन किया। मुक्ता-कोष का संचन करनेवाले इन कमलों को तोड़कर किसने मुझ हंस का सर्वस्व-हरण कर लिया?'' उनकी ये कल्पनापूर्ण जल्पनाएँ, यह हृदय विदारक विलाप-कलाप, ये मर्मतलस्पर्शिनी उक्तियाँ सुन-सुनकर मैं मन रोती कलपती हूँ किस्मत पर कुढ़ती हूँ, सर्वार्थ शून्य जीवन पर झखती हूँ।'' उल्लेखकारी विरामचिहों के बीच अंतर्संवादी ये दो पात्र हैं बिम्ब-प्रतिबिम्ब। पर इस नाटकीय गद्य विन्यास में भाषा-शैली एक है, दो नहीं। वरना यह रचना नाटक का एक रूप होती अपने गुणधर्मों के कारण, कला के तकाजे पर कथाभासी निबंध नहीं होती। ऊपर के उद्धरणों के उत्प्रेक्षणों का यह वैकल्पिक नट विन्यास स्वच्छन्दतावाद के साथ ही स्वच्छन्द निबंध-गद्य की कला का भी निदर्शक है। तत्सम परिनिष्ठ पदो के बीच 'कोमल कलेजा, चुभते चोखे तीर' के साथ 'मरहम पट्टी' निगोड़े भी। हृदय विदारक विलाप-कलाप' और 'मर्मतलस्पर्शिनी उक्तियों के साथ बराबर वनज की क्रियाएँ रोती कलपती, किस्मत पर कुढ़ती, झखनी। यह झखनी किसर पर? 'सर्वार्थशून्य जीवन' पर। 'सर्वार्थशून्य' की सार्थकता का मर्म है मैं अंधी हूँ। देश की आजादी के साल अपने चुने हुए ग्यारह निबंधो का संकलन- 'दो घड़ी'-प्रकाशित करते हुए लेखक ने इसमें यह रचना-मैं अंधी हूँ'-भी शामिल की थी। सम्पादन और लेखन के सहारे आजीविका के लिए लगातार एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकते हुए काल्पनिक नामों की एक माला अपने गले में डाले शिवपूजन सहाय की यही एक रचना इन ग्यारह रचनाओं में उनके अपने नाम से प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक को लेखक ने हास्यरसात्मक रचनाओं का संग्रह बताया था और कहा था कि इनका ''लक्ष्य मनोरंजन मात्र ही है.....यदि पाठक प्रसन्न हुए तो ऐसी कितनी ही चीजों का उद्धार हो जायेगा।'' इस पुस्तक के आमुख- 'बस, आधी घड़ी' में लेखक ने ऐसी रचनाओं की ओर अपनी प्रवृत्ति का इतिहास बनाया है कि कलकतिया 'मतवाला' के जन्मकाल से ही वे ऐसी हास्यरसात्मक रचनाएँ करते आ रहे हैं।'' जब-जब मन में उमंग उठी, सूझ-सूझ के अनुसार, कुछ न कुछ गुमनाम लिखता रहा। सच तो यह कि इन रचनाओं में केवल मन की तरंग ही तरंग है, कौशल का चमत्कार कहीं लेशमात्र भी नहीं।'' यह सच है, पर उमंग, सूझ-बूझ और मन की तरंग की ही अभिव्यक्ति के दौरान निबंध का जन्म हुआ था। प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, गुलेरी जैसे अनेक उदाहरण और साक्ष्य हमारे सामने हैं। और हम नहीं मानते कि ये 'हास्यरसात्मक रचनाएँ हैं। ये व्यक्तिव्यंजक या ललित निबंधो को कोटि की रम्य रचनाएँ हैं। निश्चय ही ऐसी रचनाएँ लेखक के पास परिमाण में और भी हैं जो रचनावली में प्राप्य हैं। रचनावली में कथा से इतर गद्य के अनेक रूप सुलभ हैं। संस्मर के और छोटी टिप्पणियों को अलग कर दें तो कितने ही सम्पादकीय, लेख आदि दिखाई पड़ते हैं जिन्हें विषय-वस्तु, शैली और रचना रूप की दृष्टि से निबंध के रूप और प्रकार वैविध्य में सिमटते पाते हैं। बहरहाल, 'दो घड़ी' नामक छोटी सी पुस्तक कहानी संग्रह 'विभूति', उपन्यास देहाती दुनिया' की ही तरह स्वतंत्र सत्ता रखती है। 'बिम्ब-प्रतिबिम्ब' वे दिन वे लोग जैसी पुस्तकें भी इसी कड़ी में रखी जा सकती हैं। 'दो घड़ी' मैं

रानी हूँ के तर्ज पर आगे लिखी हुई रचनाएँ- 'मेरी राम कहानी' मैं हजाम हूँ, मैं धोबी हूँ, मैं रानी हूँ भी शामिल हैं। उत्तम पुरूष में लिखी हुई इन रचनाओं की मोटे तौर पर थोड़े-बहुत अंतर के साथ शैली एक है, पर विषय-वस्तु, रचना-प्रयोजन और लक्ष्य या संदेश भिन्न है, तथा निश्चय ही महत्त्वपूर्ण भी। 'मेरी रामकहानी' जहाँ महँगाई, अन्न की किल्लत, खाते-कमाते शहरी मध्यवर्ग द्वारा गाँव देहात में खेती बाड़ी की अपेक्षा तिरस्कार को लेकर लिखी गई रचना है, जिसमें अर्थतंत्र, कृषि-व्यवस्था, गाँव से शहर की ओर पलायन जैसी आग उगनेवाली समस्याओं की टटोल हैं, वहीं 'मैं हजाम हूँ' मैं धोबी हूँ जैसी रचनओं की सामाजिक समानता-सद्भाव को लेकर अर्थव्यंजनाएँ गहन और विस्तृत हैं। 'मैं रानी हूँ' जैसी रचना में सामंती समाज व्यवस्था के छायामय परिप्रेक्ष्य में नये युग सन्दर्भों में पति-पत्नी के पारिवारिक संबंध के अक्स उभरते हैं। इस पुस्तक में एक निबंध है- 'श्री मिश्रबंधुओं का विनोद-वैचित्रय जो शीर्षक और अंतर्वसतु से आलोचना-समीक्षा का एक व्यंग्य-कटाक्षमूलक रूप लगता है, पर इससे कहीं अधिक एक साहित्यिक ललित निबंध है। गया से निकली पत्रिका 'उषा' के होलिकांक में प्रकाशित इस निबंध में 'मिश्रबंधु विनोद' के शब्द-प्रयोग, वाक्य येाजना, आलोचनात्मक निष्पत्तियों और भाषाशैली को लेकर साहित्यिक विनोद की ही शैली में होली की रंगीन ठिठोलियोंवाली शैली में टिप्पणियाँ तो की ही गई हैं, पर आलोचना के नाम पर सिर्फ आईना दिखाया गया है जिसमें तथ्य स्वयं बोलते हैं। कुछ इस तरह कि मिश्रबंधुओं की स्थापनाएँ, निष्कर्ष और उनका आलोचनात्मक विवके स्वयमेव प्रश्नों की परिधि में घिर जाते हैं। आगे चलकर जैसी लेख-श्रृंखला रामविलास शर्मा ने लिखी 'फिराक को उत्तर', उसका पूर्वरूप प्रतीत होती है यह रचना।

वाक्य कथ्य की धारक इकाई है। जैसे हर युग-समय का अपना विशिष्ट कथ्य होता है, वैसे ही प्रकृति और बनावट में विशिष्ट अपना वाक्य भी। जैसे चीजों का एक ही नाम होता है, वैसे ही कथ्य की प्रामाणिक अधिधारणा के लिए एक ही सटीक, साकांक्ष और सावयव वाक्य भी। पदों के संबंध-परस्पर से रूपाकार ग्रहण करता वाक्य मानवीय-सामाजिक संबंधों को प्रतिबिम्बित करते हैं। शिवपूजन सहाय ने अपनी वाणी या भाषा में अपने युग समय के इस वाक्य का साधनात्मक योग के साथ अन्वेषण करते हुए उसे रचना में प्रतिष्ठित किया। इस औचित्यपूर्ण उपयुक्त वाक्य की प्रतिष्ठा से उनके साहित्य में प्रामाणिकता और अर्थसमृद्धि के साथ दुर्लभ संवाद के गुण उत्पन्न हो गये हैं। उनके सामान्य साहित्य में एक प्रक्रियाजनित रचनात्मक आभिजात्य घुल गया है, जिससे एक ऐसी रंगत, एक ऐसा आस्वाद चला आया है जो उनके युग-समय के पत्रकारों-लेखकों के बीच उन्हें विशेष रूप से उल्लेखनीय बनता है।

शिवपूजन सहाय ने कहानियाँ लिखी उपन्यास लिखा, संस्मरण, श्रद्धांजलियाँ, लेख, टिप्पणियाँ, निबंध, डायरी आदि अनेक विधाओं और रचना रूपों में साहित्यिक और ऐतिहासिक महत्व की कृतियाँ दीं। इन कृतियों पर गौर करें तो एक बात जो उभर कर सामने आती है वह है उनका बुनियादी रूपान्वेषण। उनकी कहानियाँ मूलत: कथानक की-प्लॉट की खोज को रेखांकित करती हैं। यह 'प्लाट' में मिल पाया। वह एक उत्कृष्ट कलात्मक कहानी है, पर उत्तमपुरूष वाचक,

जो लेखक स्वयं है, उसे कहानी नहीं, सिर्फ 'प्लाट' कहना है। कहना न होगा कि यह 'प्लाट' एक प्रामाणिक प्रतिदर्श है। अपने युग समय का प्रतिदर्श, एक रूप, एक ढाँचा जिसमें कथाकार और उसके युग-समय के रचनात्मक द्वन्द्वसे उपजा कथ्य मूर्त्त हो पाता है। उपन्यास 'देहाती दुनिया' जिसे हिन्दी का पहला आँचलिक उपन्यास कहा जाता है, वह भी, ठेठ देशराज परंपरा में औपन्यासिक रूपान्वेषण का ही प्रतिफल है। एक ओर उपन्यास का पश्चिमी ढाँचा और दूसरी ओर युग-समय के औपन्यासिक अनुभव कथ्य को देसज भूमि और परिवेश में मूर्त करने की रचनात्मक जद्धोजहद में उभरता 'देहाती दुनिया का वह ढाँचा। निश्चय ही हिन्दी उपन्यास की निर्मित होती हुई परंपरा में वह एक चमकता संकेत है। ठीक यही मैं बाकी विधाओं, रचनारूपों के बारे में भी कहना चाहता हूँ। निबंध के लिए भी। उनके निबंधो में भी ढाँचे और रूप के लिए आकृति और स्वरूप के लिए लेखक का एक अविरत आत्मसंघर्ष देखा जा सकता है। चाहे 'साहित्य' शीर्षक निबंध हो या मैं हजाम हूँ'' मैं धोबी हूँ' जैसे निबंध अथवा अन्य कोटियों-प्रकारों के निबंध-सबमें रूपान्वेषण की चेतना सजग और क्रियाशील दिखाई पड़ती है। इस रूपान्वेषण में सिद्धि या उपलब्धि, जो प्रतिमान या मानक आदर्श बन सके, महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह सुलभ भी नहीं है। महत्त्वपूर्ण है वह प्रक्रिया, वह अविरत, अश्रान्त और बेचैन प्रक्रिया। इस प्रक्रिया में ढाँचा और स्थिर और ठोस नहीं है, गतिमय और प्रघूर्णित है। यही कारण है कि कभी-कभी एक ही विधा और एक ही रूप में दूसरी विधा और दूसरे रचनारूप न केवल झाँकते हैं, बल्कि उनके अँखुवे फूटते, कनछियाँ निकलती दीख पड़ती हैं। विधा में अंतर्विधा, रूप में अंत:रूप। इस लेखक का रचना-संसार साहित्य का अंतरंग और रचना के नेपथ्य का साहित्य दिखाई पड़ता है, जहाँ विधाओं और रचना-रूपों की अंतरक्रियाएँ हैं। इस रचना-संसार में न केवल बनती हुई रसोई की तरह ढलती हुई रचना का अंतरंग दृश्य है, बल्कि बनते निर्मित होते हुए लेखक का अंतरंग भी। इतना ही नहीं, लेखक और रचना के साथ ही उनके मध्य यानी भाषा का अंतरंग भी खुला दिखाई पड़ता है। लेखक उसे पर्दे में रखने की कोई कोशिश नहीं करता।

शिवपूजन सहाय वस्तुत: साहित्य के उत्तमपुरूष हैं। पर इसके लिए उन्हें अपनी वैयक्तिक निजता को, अपने आपे को, विस्थापित करना पड़ा है। पर यह एक बड़े कुनबे को अस्थिर और अनिश्चित आजीविका के बीच ढोने वाले एक व्यक्ति की आत्मगोपित अंतर्व्यथा का एक स्वतंत्र अध्याय है।

भृगुनंदन त्रिपाठी

आचार्य शिवपूजन सहाय के बहुआयामी व्यक्तित्व

शैलेन्द्र कुमार चौधरी

किसी ने ठीक ही लिखा है कि इस कहानी में दो मुख्य तत्व हैं-देश प्रेम की कसौटी पर मनुष्य का व्यक्तिगत कर्त्तव्य और दूसरा पुरुष का नारी के प्रति सम्मोहन प्रेम। वस्तुतः ये दो ऐसे उपकरण हैं जो कलानिरपेक्ष और शाश्वत हैं। इन दोनों तत्वों को एक साथ मिलाकर आचार्य शिवपूजन सहाय ने हाड़ारानी के जीवन में चार चाँद लगा दिया। कहना न होगा कि यहाँ लेखक की व्यक्तिगत मनः स्थिति, उनका दृष्टिकोण और आदर्श भी अभिव्यक्त हैं।

सार्वभौमिक व्यक्तित्व के धनी आचार्य शिवपूजन सहाय का आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। उनकी लिखी हुई पुस्तकें विभिन्न विषयों से सम्बद्ध हैं। तथा उनकी विधाएँ भी अलग-अलग है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक पुरस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया। सच कहा जाए तो आ0 महावीर प्रसाद द्विवेदी के बाद आचार्य शिवपूजन सहाय के समान प्रतिभाशाली सम्पादक विरले ही देखने को मिलते हैं। ऐसा इसलिए कि वे अपने कार्य के प्रति सजग एवं सदैव सावधान रहने वाले व्यक्ति थे। यही कारण है कि क्या कहानी, क्या उपन्यास हर जगह उन्होंने अद्‌भुत सफलता प्राप्त की है। कहने के तो वे केवल मैट्रिक पास थे किन्तु सतत स्वाध्याय एवं अनवरत साहित्य-साधना से वे बड़े बड़ो की छुट्टी कर देते थे। वे मानते थे कि साहित्य समाज का दर्पण है। किसी भी राष्ट्र या सभ्यता की जानकारी साहित्य से ही प्राप्त होती है। समाज साहित्य को प्रभावित करता है और साहित्य समाज पर प्रभाव डालता है। विचारों ने साहित्य को जन्म दिया तथा साहित्य ने मानव की विचारधारा को गतिशीलता प्रदान की उसे सभ्य बनाने का काम किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि साहित्य जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब है। साहित्य लोक जीवन का भी अभिन्न अंग है। किसी भी काल के साहित्य से उस समय की परिस्थितियाँ एवं जनमानस की अन्य

गतिविधियों का पता चलता है।

आचार्य शिवपूजन सहाय की रचनाओं में ये सारी चीजें विद्यमान हैं। लोक जीवन और लोक संस्कृति के प्रसंग इनकी रचनाओं में सहज ही देखे जा सकते हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में समाज में फैली कुरीतियों, विसंगतियों, विकृतियों, अभावों, असमानताओं आदि के बारे में भर पूर लिखा है। समाज में रहकर इन्होंने जो कुछ देखा अनुभव किया उसे हू-बहू अपनी रचनाओं में रख दिया। यही कारण है कि साहित्यकार को अतीत का गौरव गायक, वर्तमान का सूक्ष्म द्रष्टा और भविष्य का कुशल सारथी भी कहा जाता है। उनकी रचनाओं पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि उनका व्यक्तित्व और उनके कला की व्यापकता अद्‌भुत थी। ये सामान्य घटनाओं के बीच से अर्थवान और मार्मिक प्रसंगो को चुनकर कलात्मक ढंग से अपनी कहानियों को आलम्बन बनाते थे। ऐसी कहानियों से मनोरंजन तो होता ही था चेतना को स्फूर्ति और प्रेरणा भी मिलती है। उनकी ऐतिहासिक कहानियों का तो कहना ही क्यां? इसमें न केवल राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी

साहित्य की दूसरी विधा निबंध के क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया हैं। निबंधकार के रूप में इन्होंने एक ओर आचार्य शुक्ल जी की स्वस्थ परंपरा का निर्वाह किया तो दूसरी ओर महावीर प्र० द्विवेदी का तरह भाषा शुद्धि का भी कार्य किया। भावात्मक, विचारात्मक, व्यंग्यात्मक, आलोचनात्मक आदि निबंधो का कहना ही क्या? उदाहरण के लिए मैं हज्जाम हूँ, मै धोबी हूँ आदि को देखा जा सकता है। हस्तपूर्ण निबंधो का इससे सुन्दर उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है।

दीखती है अपितु त्याग और बलिदान की भावना भी नारी चरित्र की विशेषताएँ प्रकट करती है। 'मुण्डमाल' एक ऐसी ही कहानी है जिसमें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर हाड़ारानी और चूड़ावत के त्यागमय जीवन की गाथा निहित है।

किसी ने ठीक ही लिखा है कि इस कहानी में दो मुख्य तत्व हैं-देश प्रेम की कसौटी पर मनुष्य का व्यक्तिगत कर्त्तव्य और दूसरा पुरूष का नारी के प्रति सम्मोहन प्रेम। वस्तुतः ये दो ऐसे उपकरण हैं जो कलानिरपेक्ष और शाश्वत हैं। इन दोनों तत्वों को एक साथ मिलाकर आचार्य शिवपूजन सहाय ने हाड़ारानी के जीवन में चार चाँद लगा दिया। कहना न होगा कि यहाँ लेखक की व्यक्तिगत मन स्थिति उनका दृष्टिकोण और आदर्श भी इसमें अभिव्यक्त हैं। इस तरह हम देखते है कि कहानी कला की दृष्टि से यह सर्वोत्तम कहानी प्रतीत होती है साथ ही लेखक की विचारधारा भी प्रतिष्ठित हुई है। इनकी दूसरी कहानी 'कहानी का लाट' एक समाजिक कहानी है। इसमें न तो घटना की विविधता है और न ही चरित्र चित्रण की प्रधानता ही। यह तो एक भाव प्रधान कहानी है जहॉ रीति रिवाजों अभावो, विषमताओं आदि का मार्मिक चित्रन देखने को मिलता है। ''अमीरी की

कब्र पर पनपी हुई गरीबी की घास'' का जहरीलापन यथार्थेवादी रूप का परिचय देता है।

अगर हम इनके उपन्यास ''देहाती दुनिया'' की चर्चा करें तो नि:संकोच कह सकते हैं कि यह हिन्दी साहित्य का प्रथम आंचलिक उपन्यास है। आंचलिकता एवं ग्रामीण यथार्थवाद का शिलान्यास हिन्दी साहित्य में यही से प्रारंभ होता है।

डॉ० कुमार विमल ने लिखा है कि ''इनकी शैली पर तो आंचलिकता का इतना प्रभाव है कि वह कहीं-कहीं भोजपुर की धूसर धरती में लोट-पोट कर खेले ''धूरि भरे तन'' नाल बाल-गोपाल जैसी लगती है। मइया, लिलार, चुम्मा, महतारी, बरखा, अमनियाँ इत्यादि अनेक ऐसे भोजपुरी शब्द स्वाभाविक रूप में इनकी पुस्तक में प्रयुक्त हुए हैं, जिनसे अनायास ही इनकी भाषा को जनपदिक, लावण्य मिल गया है। इनकी मान्यता है कि ग्रामीण यथार्थवाद को चित्रित करने वाले आंचलिक उपन्यासों की जो धारा चल रही थी उसकी परंपरा बहुत पहले ''देहाती दुनिया'' से प्रारंभ हो चुकी थी।''

साहित्य की दूसरी विद्या निबंध के क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया हैं। निबंधकार के रूप में इन्होंने एक ओर आचार्य शुक्ल जी की स्वस्थ परंपरा का निर्वाह किया तो दूसरी ओर महावीर प्र0 द्विवेदी का तरह भाषा शुद्धि का भी कार्य किया। भावात्मक, विचारात्मक, व्यंग्यात्मक, आलोचनात्मक आदि निबंधो का कहना ही क्या? उदाहरण के लिए मैं हज्जाम हूँ, मै धोबी हूँ आदि को देखा जा सकता है। हस्यपूर्ण निबंधो का इससे सुन्दर उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। गाँव से जुड़े होने के कारण इनकी रचनाओं में बिहार के गाँवों की मिट्टी की सोंधी गंध है तो दूसरी ओर वहाँ के लोगों में इसी ताजगी, सरलता, सहजता और भावुकता की खुशबू भी।

साहित्यकार के अलावे ये सही मायने में एक संत थे। इनका लक्ष्य सब कुछ सबके लिए है न कि, सब कुछ अपने लिए है। शिवपूजन सहाय एक कर्मठ व्यक्ति थे। वे कठिन श्रम और लगन से काम करने में विश्वास करते थे। ये नीति नियम, परंपरा आदि को प्रमुखता तो देते ही थे साथ ही साथ धर्म, संस्कार, आत्मा, परमात्मा, मोक्ष आदि पर भी विचार करते थे। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में इनका जीवन मूल्य अपने उत्कर्ष पर है। वैसे लोग जो कामयाब हैं पर जो हमेशा सदमार्ग पर चलते रहे, ऐसे विरले होते हैं। मैं तो मानता हूँ कि सचमुच शिवपूजन सहाय को पढ़ना बिहार के यथार्थ को जानना है।

प्रो. शैलेन्द्र कुमार चौधरी, महेश नगर, रोड नं.–20, पो. : केसरी नगर, पटना–24
मो. : 9334127942

आचार्य शिवपूजन सहाय के पुत्र प्रोफेसर मंगलमूर्त्ति से साहित्य यात्रा के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र की बातचीत

कलानाथ - आदरणीय मंगलमूर्ति जी! जैसा कि आप को ज्ञात है कि 'साहित्य यात्रा' का यह अंक विशेष रूप से साहित्य मनीषी आचार्य शिवपूजन सहाय की स्मृति में निकाला जा रहा है। आप उनके कनिष्ठ सुपुत्र हैं। हम आपसे जानना चाहते हैं कि अपने पिता की सबसे पहली स्मृति जो आप को याद हो क्या पाठकों को बताएँगे?

मंगलमूर्त्ति - मैं जब 3-4 साल का भी नहीं था, तभी मेरी माता श्रीमती बच्चन देवी का देहांत हो गया था। मेरे पिता ने, जब वे बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् में पटना आ गए थे तो 'वयोवृद्ध साहित्यकार' की अपनी पुरस्कार राशि हिंदी साहित्य सम्मलेन को देकर 'श्रीमती बच्चनदेवी साहित्य गोष्ठी' की स्थापना की थी, जिसका उदघाटन राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन जी ने 1954 में सम्मलेन भवन में ही किया था। वह साहित्यिक संगोष्ठी मेरे पिता के नहीं रहने के बाद भी वर्षों तक चली थी, और अब वह मेरे पिता की स्मृति में स्थापित 'आचार्य शिवपूजन सहाय स्मारक न्यास' द्वारा परिचालित हो रही है। हमने न्यास का एक ब्लॉग भी स्थापित किया है जिस पर अब सारी गतिविधियाँ प्रकाशित होती हैं। 'श्रीमती बच्चनदेवी साहित्य गोष्ठी सम्मान न्यास की ओर से एक समारोह में प्रसिद्ध साहित्यकार पद्मश्री श्रीमती उषाकिरण जी को 2017 में लखनऊ में दिया गया था।

शैशव में ही मातृविहीन होने के कारण मैं बचपन से ही पिता के अंग लगा रहा। उन्हीं की गोद में सोता और जागता था। बचपन का वह समय तो मेरे शरीर और मन का अविभाज्य हिस्सा है। उसकी तो एक क्या हजारों यादें दुहराने की हैं, पर कुछ की सांकेतिक चर्चा करना चाहूंगा। इधर मैंने अपने नए प्रकाशित कविता संग्रह 'मन एक वन' में 'पिता' शीर्षक अपनी कविता में उसी बाल-समय के बिम्बों को उभारने की कोशिश की है।

मेरे बचपन की यादें छपरा से जुडी हैं जहाँ 1939 से 1950 तक मेरे पिता राजेन्द्र कॉलेज में पं. जनार्दन प्रसाद 'द्विज' और प्रिंसिपल मनोरंजन के साथ हिंदी के प्रोफेसर रहे। हमलोगों का किराये का मकान वहां रतनपुरा मोहल्ले में धर्मनाथ जी के मंदिर के पास ही था, जहाँ प्रति संध्या मेरे पिता मुझको अपने साथ ले कर जाते थे। हमारे घर पर बड़े-बड़े साहित्यकार अक्सर आया करते थे- बनारसीदास चतुर्वेदी, निराला, राहुलजी, माखनलाल चतुर्वेदी, बच्चन जी, जानकीवल्लभ शास्त्री, डा. नगेन्द्र आदि मिलने या कॉलेज के समारोहों में आया करते थे, क्योंकि मेरे पिता तब तक हिंदी साहित्य जगत के सर्वाधिक सम्मानित व्यक्तियों में गिने जाते थे। बाबूजी की डायरी में इन दिनों की चर्चा पढने पर अब वे सारे चित्र मेरे स्मृति-पटल पर स्पष्ट अंकित लगते हैं। मेरा यह सौभाग्य है कि मेरे बचपन की पूरी कहानी मेरे पिता की डायरी में दर्ज रह गयी है।

निरालाजी के एक प्रसंग की बहुत संक्षिप्त चर्चा उनकी डायरी में है जिसके विषय में इधर दिवंगता मेरी बहन सरोज दीदी ने मुझको बहुत मनोरंजक ढंग से बताया था- और बताते हुए वे हँसते-हँसते दुहरी हुई जाती थीं। बात 16 मार्च, 1942 की है। निराला जी अहले सुबह स्टेशन से उतर कर हमारे यहाँ पहुंचे। मैंने इन्हीं आँखों से वह प्रेम-मिलन देखा। मैं तो बराबर बाबूजी से लगा ही रहता था। निराला जी ने मिलते ही मुझको प्यार किया और उठाकर अपने चौड़े कन्धों पर बिठा लिया, और बाबूजी से बातें करने लगे। मैंने गिरने के डर से उनके गर्दन तक झूलते लम्बे रेशमी बालों को जोर से मुठ्ठियों में भींच लिया। फिर उनको शौच जाना था। आँगन के बरामदे में नल के पास एक लोटे में भरा पानी रक्खा था। उन्होंने लोटा लिया और पाखाने में दाखिल हो गए। थोड़ी ही देर बाद अन्दर से ही पुकारा-शिवजी, अरे इस लोटे में क्या था! बाबूजी वहीं बरामदे में ही खड़े थे। पता चला हमारे नौकर भागवत ने लोटे में रात में फूलने के लिए चने रक्खे थे और भूल से वही भरा लोटा लेकर निरालाजी दाखिल-दफ्तर हो गए थे। सरोज दीदी इस घटना का बयान करते-करते हँसते हुए लोट गयी थीं।

बचपन के संस्मरणों का एक पहला टुकड़ा मैंने लिखा है जो पटना की 'दोआबा' पत्रिका में छपा था। उसकी दूसरी कड़ी मेरे 'विभूतिमूर्ति' ब्लॉग पर प्रकाशित है। मैं उस श्रृंखला को अपने पिता की जीवन-स्मृति के रूप में लिख रहा हूँ, क्योंकि उनकी जीवनी का फलक इतना विशाल है कि उसको लिखने के लिए 10 वर्षों का समय चाहिए जो मेरे लिए अब कठिन है। लेकिन एक स्मरण-श्रृंखला में अपनी तरह से मैं एक प्रयास जरूर करना चाहता हूँ। वैसे 'शिवपूजन सहाय साहित्य समग्र' के दस खण्डों में और उनपर प्रस्तावित एक 'स्मरण-ग्रन्थ' में उनकी एक प्रच्छन्न जीवनी तो पढ़ी ही जा सकती है, जिसमें वह सारा साहित्यिक संसार चित्रित है जिसे दिवंगत साहित्यकार और मेरे पिता के साहित्यिक सहयोगी श्रीश्री रंजन सूरिदेव ने 'शिवपूजन युग' का नाम दिया है।

कलानाथ - आपकी माताजी श्रीमती बच्चन देवी आचार्यजी की तीसरी धर्मपत्नी थीं। उनकी दो पत्नियों का पहले देहांत हो चुका था। अपनी माता के विषय में आपने गोष्ठी स्थापना की चर्चा की। बिहार हिंदी साहित्य सम्मलेन के पटना अधिवेशन के सभापति-संबोधन में आदरणीय आचार्यजी ने उनका मार्मिक स्मरण किया है। उनके देहांत

के बाद आचार्य जी का जीवन कितना प्रभावित हुआ, इस पर कुछ प्रकाश डालें।

मंगलमूर्त्ति – मेरे पिता का पहला विवाह 1907 में हुआ था जब वे 14 साल के थे। लेकिन दो ही महीने बाद–अभी द्विरागमन भी नहीं हुआ था कि पत्नी का प्लेग में देहांत हो गया। मेरे पितामह का देहांत 1906 में ही हो चुका था। दूसरा विवाह 1908 में हुआ। वे अभी आरा में स्कूल में पढ़ ही रहे थे। बाद में 1913 में मैट्रिक पास करने के बाद जब वे वहीं टाउन स्कूल में शिक्षक हो गए तब उन्होंने पत्नी और रुग्णा माता को कुछ दिन अपने साथ आरा में रखा। लेकिन बाद में माता का देहांत भी गाँव पर ही 1916 में हो गया, और फिर पत्नी गाँव पर ही बराबर रहीं। जब 1921 में कलकत्ता

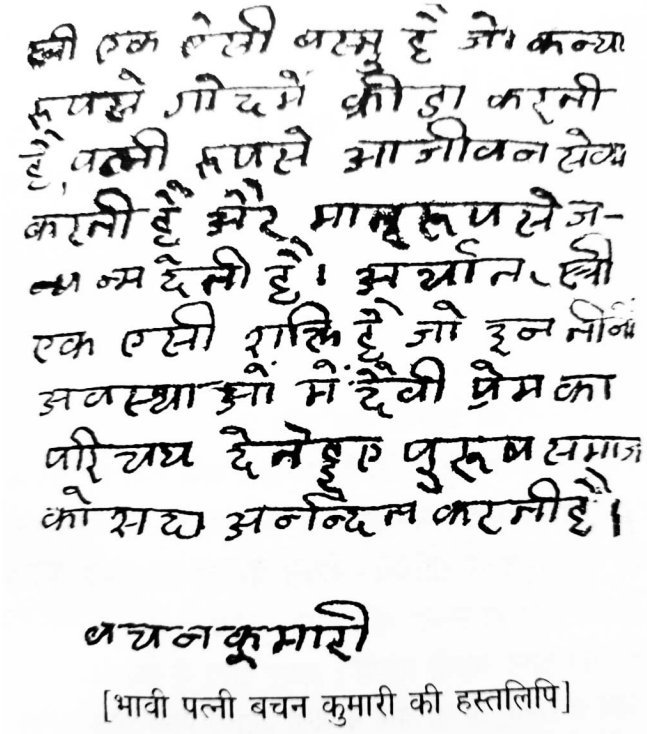

[भावी पत्नी बचन कुमारी की हस्तलिपि]

गए और फिर 'मतवाला' का सम्पादन करने लगे तब बाद में इस दूसरी पत्नी को कलकत्ता ले गए। इस पत्नी से एक पुत्री 'वसंती' हुई जिसका शीतला से कलकत्ते में ही 1963 में देहांत हो गया। पत्नी भी यक्ष्मा की रोगी हो गईं और कुछ दिन शिवजी के साथ काशी में उपचार के लिए रहीं, लेकिन उनका भी 1926 में गाँव में ही देहांत हो गया। ध्यान दें, आरा में उन्होंने स्कूल की सरकारी नौकरी से 1920 के असहयोग आन्दोलन में त्यागपत्र दे दिया था और उसके बाद से वे राष्ट्रिय पत्रकारिता से जुड़ गए जिसमें कभी किसी निश्चित मासिक वेतन की व्यवस्था नहीं रही। कलकत्ता से काशी आने के बाद तो आजीविका की यह समस्या और भी गंभीर हो गयी, जब छिटफुट लेखन और सम्पादन के बल पर ही उनका जीवन–यापन होता रहा। और इसी अनिश्चित आजीविका की स्थिति में मित्रों के बहुत दबाव बनाने पर वे तीसरे विवाह के लिए राजी हुए। यह तीसरा विवाह मई,

1928 में हुआ।

इस बरात में जो छपरा के पास मसरख स्टेशन से 7-8 मील दूर एक गाँव विलासपुर गयी थी- काशी की पूरी साहित्यिक मंडली शामिल थी- बेनीपुरी, विनोदशंकर व्यास, नटवर जी, 'द्विज' जी, सुधांशु जी, आदि कई युवक साहित्यकार उसमें उपस्थित थे। 'समग्र' के 10 वें खंड के पारिवारिक पत्रों में इस विवाह की बार-बार चर्चा हुई है। विवाह के बाद यह तीसरी पत्नी-बच्चन देवी- मेरे पिता के साथ काशी में कालभैरव इलाके में, नागरी प्रचारिणी सभा के पास, रहने लगीं। प्रेमचंद जी का सरस्वती प्रेस भी वहीं पास में ही था। यही मेरे पिता के जीवन का सबसे सुखमय समय था, यद्यपि आजीविका की कोई स्थायी व्यवस्था न होने से आर्थिक अभाव तो रहा ही। मेरी माता अत्यंत कुशल गृहिणी और आदर्श पत्नी थीं। मेरे बड़े भाई आनंदमूर्ति, और मेरी दो बहनों का जन्म काशी के इसी 8-10 वर्षों के प्रवास में हुआ था। इसी अवधि में एक साल मेरे पिता सुल्तानगंज में 'गंगा' के सम्पादन के सिलसिले में भी रहे, और अंततः 1935 के लगभग सपरिवार 'पुस्तक भंडार' में 'बालक' सम्पादक के पद पर लहेरियासराय (दरभंगा) चले गए, जहाँ मेरा जन्म हुआ। लहेरिया सराय में ही मेरी माता का स्वास्थ्य गिरने लगा था, और उनका इलाज चल रहा था। इसी समय मेरे पिता की नियुक्ति छपरा कॉलेज में हो गयी, जिससे मेरी माता को सबसे अधिक प्रसन्नता हुई। मैं तब माँ की गोद का ही शिशु था। लेकिन छपरा जाने के बाद, माँ के अस्वस्थ होने पर भी, गाँव में पारिवारिक द्वेष के कारण, माँ को घर सम्हालने के नाम पर बाबूजी को उन्हें गाँव में रखना पड़ा, जहाँ इलाज के अभाव में नवम्बर, 1940 में मेरी माँ का निधन हो गया। मुझको अपनी बीमार माँ की गाँव के अपने घर में खाट पर लेते हुए मुझको दूध पिलाने की कुहासे जैसी स्मृति है।

माँ के निधन के मात्र ढाई महीने बाद फरवरी, 1941 को बिहार हिंदी साहित्य सम्मलेन के 17 वें पटना अधिवेशन के सभापति-पद से दिए अपने भाषण में मेरे पिता की पत्नी-वियोग की यह दारुण व्यथा-कथा श्रोताओं के लिए कितनी हृदय-द्रावक रही होगी इसकी सहज कल्पना की जा सकती है। मैं उसके कुछ शब्द यहाँ उद्धृत करना चाहूँगा। मेरे पिता ने शोकाकुल स्वर में कहा था- 'साहित्य से सम्बद्ध हृदय स्वभावतः सुकुमार होता है। वह अपनी परम प्रिय वस्तु के बिछड़ने से यदि व्यथित हो तो इसमें कोई विस्मय या अस्वाभाविकता नहीं। मुझे अपनी जीवन-संगिनी के वियुक्त होने का जो दुःख है वह तो है ही, सबसे बड़ा दुःख इस बात का है कि इस सम्मलेन का सभापतित्त्व स्वीकार करने के लिए उस देवी ने आज से पहले जब-जब आग्रह किया, मैं बराबर असमर्थता प्रकट करता गया। किन्तु आज जब उन्हे मेरा संग छोड़े हुए कुल ढाई महीने हुए, मैं निष्ठुर उसी स्थान पर खड़ा हूँ जहाँ मुझे देखने के लिए उनके ललाम लोचन लालायित ही रह कर लोकंतरित हो गए। ...गृहणीत्व, पत्नीत्त्व और मातृत्त्व का विशद विकास होने से वे स्वयं ही साहित्य की मनोज्ञ मूर्ति बन गयी थीं। उसी मूर्ति के सहसा विलीन होने से हृदय में रह-रह कर हाहाकार उठा करता है।'

वें पटना अधिवेशन के सभापति-पद से दिए अपने भाषण में मेरे पिता की पत्नी-वियोग की यह दारुण व्यथा-कथा श्रोताओं के लिए कितनी हृदय-द्रावक रही होगी इसकी सहज कल्पना

की जा सकती है। मैं उसके कुछ शब्द यहाँ उद्धृत करना चाहूँगा। मेरे पिता ने शोकाकुल स्वर में कहा था- 'साहित्य से सम्बद्ध हृदय स्वभावत: सुकुमार होता है। वह अपनी परम प्रिय वस्तु के बिछड़ने से यदि व्यथित हो तो इसमें कोई विस्मय या अस्वाभाविकता नहीं। मुझे अपनी जीवन-संगिनी के वियुक्त होने का जो दु:ख है वह तो है ही, सबसे बड़ा दु:ख इस बात का है कि इस सम्मलेन का सभापतित्त्व स्वीकार करने के लिए उस देवी ने आज से पहले जब-जब आग्रह किया, मैं बराबर असमर्थता प्रकट करता गया। किन्तु आज जब उन्हे मेरा संग छोड़े हुए कुल ढाई महीने हुए, मैं निष्ठुर उसी स्थान पर खड़ा हूँ जहाँ मुझे देखने के लिए उनके ललाम लोचन लालायित ही रह कर लोकंतरित हो गए। ...गृहणीत्व, पत्नीत्त्व और मातृत्त्व का विशद विकास होने से वे स्वयं ही साहित्य की मनोज्ञ मूर्ति बन गयी थीं। उसी मूर्ति के सहसा विलीन होने से हृदय में रह-रह कर हाहाकार उठा करता है।'

कॉलेज की नयी प्राध्यापकी की नौकरी, साहित्यिक कार्यकलाप की अधिकता, चार दुधमुंहे बच्चों का पालन-पोषण-भार, गृहणी के अभाव में जीवन की अस्तव्यस्तता मेरे बचपन की स्मृतियाँ उसी से जुडी हैं। बाबूजी की डायरी से मेरे बारे में एक छोटे-से उद्धरण से आपको उस कारुणिक स्थिति का थोडा आभास होगा। वे लिखते हैं- 'गत वर्ष पत्नी की बीमारी के समय मंगलमूर्ति प्राय: गाया करता था- 'जिसके घर में माँ नहीं है, बाबा करे न प्यार।' इसी गाने को वह अब भी कभी-कभी गाता है। ईश्वर की कैसी प्रेरणा है। यह गाना सटीक बैठा। माता उसकी जाती रहीं।' जब भी मैं इन पंक्तियों को पढता हूँ, मेरी आँखें भर-भर आती हैं। इसके बाद के मेरे और मेरे पिता के जीवन के स्थायी अवसाद की आप सहज कल्पना कर सकते हैं।

कलानाथ - एक श्रेष्ठ साहित्यकार के रूप में तो आचार्य शिवपूजन सहाय की छवि विख्यात है। उस समय के लगभग सभी शीर्षस्थ साहित्यकारों ने उनपर उनकी रचनाधर्मिता पर टिप्पणी की है किन्तु एक पिता के रूप में आप उन्हें कैसे देखते हैं?

मंगलमूर्त्ति - मेरा यह शरीर और मेरी चेतना-मेरा तो पूरा अस्तित्त्व ही मेरे पिता की देन है। मेरी माता ने उसको अपने गर्भ में रख कर ढाला और मुझे यह जीवन प्रदान किया। लेकिन मेरे इस पार्थिव अस्तित्त्व में मेरे माता-पिता दोनों सदा वर्त्तमान हैं, इसका बोध मुझको सदा बना रहता है। मैं अपने पिता से कितना अभिन्न रहा यह अब बहुत कम लोग जानेंगे। साहित्य को अपने जीवन में प्रतिपल जीने वाला व्यक्ति ही मेरी दृष्टि में सच्चा साहित्यकार होता है, और केवल अपने पिता के लिखे विपुल-राशि साहित्य को ही मैंने शब्द-शब्द बार-बार नहीं पढ़ा है, उनके जीवन के अंतिम 25 वर्षों में लगभग प्रतिक्षण उनके साथ वही जीवन जिया भी है। मेरे लिए शिवपूजन सहाय का जीवन और उनका साहित्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और यदि सच कहूं तो, जीवन और साहित्य का ऐसा एकमेकत्त्व मुझे और कहीं देखने या अनुभव करने का अवसर नहीं मिला है। और अपने पिता के जीवन और साहित्य को उसके अंतिम 25 वर्षों में निरंतर आँखों के सामने रखने के कारण मुझे बराबर लगता रहा है कि उनका जीवन उनके साहित्य से बहुत विराट रहा, हालांकि अपने सूक्ष्म रूप में - उनका समग्र साहित्य पढ़ने पर - उनके उस विराट जीवन-स्वरुप का दर्शन

भी अवश्य संभव है, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरी दृष्टि में साहित्य वही है जिसमें साहित्यकार का सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व परिदर्शित हो। मैंने जितना हिंदी साहित्य पढ़ा है- शिवपूजन सहाय मुझको इसके सर्वश्रेष्ठ प्रतिमान लगते हैं। और इसका पूरा-पूरा आकलन पारंपरिक समालोचना से शायद संभव नहीं है। यह एक भिन्न प्रकार का साहित्यिक सौर मंडल है जिसमें परिभ्रमण के विधान भी अलग हैं। इस तरह के साहित्य को पढ़ने और उसकी मूल्यवत्ता को समझने के लिए एक भिन्न प्रकार की पुनरीक्षण-प्रणाली चाहिए।

अपने एक अत्यंत सारगर्भित जयंती भाषण में डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव ने शिवपूजन सहाय के सन्दर्भ में ही कहा था- 'कुछ लेखक ऐसे होते हैं जो अपने समय में तो महत्त्वपूर्ण होते ही हैं, समय जैसे-जैसे आगे जाता है, वैसे उनके महत्त्व के नए रूपों की खोज शुरू होती है। उनका नए सिरे से आविष्कार किया जाता है, नए सिरे से उनको पढ़ा जाता है। आचार्य शिवपूजन सहाय एक ऐसे लेखक थे जो साहित्य को एक मूल्य की तरह जी रहे थे अपने जीवन में। कला के मानदंड बनाने वालों को चुनौती है कि वे उनके प्रकाश में, अपने कला के मानदंडों की नए सिरे से छानबीन करें; नए टूल्स, नए औजार, नए माध्यम चुनें जिनके आधार पर उनकी व्याख्या की जाएगी। शिवपूजन सहाय सच्चे अर्थों में जनता के लेखक हैं, जनता की जीवनी शक्ति को चरितार्थ करने वाले लेखक हैं।'

शिवपूजन सहाय के साहित्यिक व्यक्तित्त्व की यह अद्‌भुत व्याख्या है। वे मेरे पिता थे, और जैसा मैंने कहा वे मुझमें मेरे अंत तक उपस्थित हैं, लेकिन मेरे अपने जीवन का जो यह 'स्व' है, उसमें मैं - जैसे किसी कलात्मक स्थापत्य को थोड़ा दूर हट कर देखते हैं - ठीक उसी तरह, उनको जब अपनी निरपेक्ष दृष्टि से, उनके सम्पूर्ण साहित्यिक वांग्मय से गुजरते हुए, देखता हूँ तो मुझको वही तस्वीर दिखाई देती है जो परमानन्द जी के वक्तव्य में झलकती है।

कलानाथ - 'देहाती दुनिया' हिंदी साहित्य के लोकप्रिय उपन्यासों में शामिल है। एक जगह आचार्य जी ने लिखा है ''मैं ठेठ देहात का रहनेवाला हूँ, जहाँ नयी रोशनी की सभ्यता का उजाला नहीं पहुँचा है। अँधेरे में पड़े हुए गाँव बहुत से हैं, जहाँ न अच्छी सड़क है, न स्कूल है, न पुस्तकालय है, न अस्पताल है।'' इस उपन्यास की कथावस्तु शिवपूजन सहाय जी ने अपने गाँव के आसपास से लिया है आप उनके कनिष्ठ पुत्र हैं। अपने परिवार से जुड़े पिता के सानिध्य में बीते उन दिनों की कुछ स्मृतियाँ जो आपको याद हो हमें विस्तार से बताएँ।

मंगलमूर्त्ति - यह तो यादों की एक बहुत लम्बी सरिता है, जो सदा मेरी स्मृति में बहती रहती है। लगभग 25 साल लम्बे इस जीवन-नाट्य के तीन प्रमुख अंक हैं। छपरा में बीते 10 साल, पटना में बीते 13 साल और इनके बीच में कॉलेज आदि की छुट्टियों में बीते गाँव के वे दिन। मैं यहाँ अभी गाँव में बीते बाबूजी के साथ के दिनों की कुछ बातें खास तौर पर साझा करना चाहूंगा। लेकिन पहले छपरा का समय, जो मेरे बचपन का समय है- उसका बस एक चित्र। यह 1946-47 की बात है। राजेन्द्र कॉलेज के बगल में ही मेरा स्कूल था राजेन्द्र कॉलेजिएट। मैं बाबूजी के साथ, उनके

छाते के नीचे पैदल, खेतों की बीच की पगडंडियों पर चलता रोज आता-जाता था। मेरी स्कूल की छुट्टी होने पर मैं बाबूजी के पास कॉलेज में चला जाता था। अक्सर वे लेक्चर-हॉल में पढ़ाते होते थे। उस जमाने में बाहर बरामदे में पैर की रस्सी से पंखा खीचने वाला चपरासी बैठा होता था। मैं उसी के पास दरवाजे के बिलकुल सटे खड़ा हो जाता था। भूख लगी होती थी। बाबूजी बोलते हुए मुझको देख लेते थे। उनके चेहरे पर एक मुस्कान आ जाती थी। वे यथाशीघ्र लेक्चर समाप्त करके बाहर आ जाते थे और मुझको अपने साथ लेकर लौटते थे। कभी कभी मुझको स्टाफ रूम में भी इंतजार करना पड़ता था, जहाँ 'द्विज' जी, मुरलीधर श्रीवास्तव, वीरेन्द्र श्रीवास्तव आदि मुझको बहुत प्यार करते। सब लड़के भी मुझसे प्यार जताते। उन दिनों की बहुत सी यादें हैं जिनको मैं लिखना चाहता हूँ।

पटना में बीते 13 वर्ष मेरे विश्वविद्यालय शिक्षा के दिन थे। बाबूजी बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् में सचिव पद पर आ गए थे। यह एक अलग और लम्बा अध्याय है जिसकी विस्तार से चर्चा बाबूजी की डायरी में तो है ही, बहुत सी बातें मेरी स्मृति में भी हैं जो डायरी में नहीं दर्ज हैं। यह समय था जब मैं बाबूजी के अनेक समानधर्मा साहित्यकारों के संपर्क में आया जिनमें बेनीपुरी जी, राजा राधिकारमण, दिनकरजी, नलिनजी, सुधांशुजी सहित पटना और पूरे बिहार ही नहीं, देश-विदेश के अनेक साहित्यकारों के संपर्क में आने का मुझको विशेष रूप से अवसर मिला। बाबूजी के साथ हमलोग साहित्य सम्मेलन भवन में रहते थे, और वहां रोज साहित्यिकों (अज्ञेय, भगवती चरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री), कलाकारों (शंभू महाराज, पृथ्वीराज, आदि) का आना - जाना होता रहता था। वह कला और साहित्य की दृष्टि से एक अत्यंत सघन एवं महत्त्वपूर्ण समय था, और मेरा यह परम सौभाग्य था कि यह सब कुछ मेरी आँखों के सामने घटित हो रहा था जिसका रोजनामचा भी बाबूजी रोज लिखा करते थे। लेकिन उसके विषय में कहीं और विस्तार से ही लिखना संभव होगा।

बाबूजी 10 वर्ष की उम्र में गाँव छोड़ कर पढने के लिए आरा चले आये थे- जिसके बाद उनका बस गाँव आना-जाना ही रहा। आरा में 1921 तक शिक्षक के रूप में रहने के बाद वे कलकत्ता, लखनऊ, काशी, सुल्तानगंज, लहेरिया सराय, छपरा और अंततः पटना में रहे - जिस दौरान वे कभी 15 दिन-महीने भर ही गाँव पर रहते। लेकिन उनका हृदय तो गाँव में ही बसता था- यह मुझे तब लगता था जब वे छपरा से कॉलेज की छुट्टियों में साल में 2-3 बार गाँव जरूर जाते। तब मेरी दोनों बहनें - सरोजिनी और बिनोदिनी - हमारे गाँव वाले घर पर ही रहती थीं। गाँव का खेती-बारी वाला घर सम्भालने के प्रसंग में ही मेरी रुग्णा माता का वहीं देहांत हुआ था। परिवार में भाई के दबाव में घर और खेती-बारी को संभालने के नाम पर दोनों बहनों को भी वहीं घर की कैद में रहना पड़ा - उनकी कोई पढाई नहीं हुई। लेकिन वह एक दूसरा ही प्रसंग है।

मैं छपरा में बाबूजी के साथ रहता था और छुट्टियों में उनके साथ गाँव जाता था। यह वही गाँव था - 'देहाती दुनिया' का 'रामसहर' - 'जहाँ लड़कों का संग, तहाँ बाजे मृदंग' वाला। मेरे पूर्वजों का गाँव उनवांस, ठोरा नदी के किनारे एक सुन्दर तीन शिव-मंदिरों वाला गाँव, जहाँ

18वीं सदी के अंत में मेरे आदि पूर्वज उत्तर प्रदेश के शेरपुर (गाजीपुर) से ससुराल की संपत्ति सम्हालने आकर बस गए थे। यहीं बाबूजी ने अपना वागीश्वरी पुस्तकालय और राजकुमारी वाचनालय - मेरे दादा-दादी के नाम पर 1921 में ही स्थापित किया था जिसमें मैंने देखा था 5-7 आलमारियाँ थीं और लगभग 5000 से अधिक पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएं थीं। अब यह सारी सामग्री नेहरु मेमोरियल लाइब्रेरी, दिल्ली और गाँधी संग्रहालय, पटना में सुरक्षित रखी गयी है।

बाबूजी जब गाँव जाते उनका सारा समय या तो इसी पुस्तकालय में बीतता अथवा गाँव के लोगों के बीच घिरे हुए उनके साथ बातचीत में बीतता। मेरा अधिक समय भी पुस्तकालय में ही पुस्तकों के बीच बीतता या फिर गाँव के अपने गँवई मित्रो के साथ खेल-कूद में बीतता। बाबूजी के साथ ही लगभग रोज नदी पर स्नान और वहीं रास्ते में लौटते हुए उस शिव-मंदिर में शिवजी की पूजा, यह नियमित कार्यक्रम था। यह वही शिव-मंदिर था जहाँ 'जगेसर' बाबूजी को उनके बचपन में शिवजी का फूलों से श्रृंगार करना सिखाता था, जिसकी चर्चा उन्होंने 'मेरा बचपन' में की है। शाम में रोज हमलोगों के दालान में - जो एक तरह से पूरे गाँव का दालान ही था - जहाँ ढोल-झाल के साथ रामायण गाया जाता और फिर बाबूजी की अर्थ-व्याख्या होती थी। 'कल्याण' के अंक शुरू से बाबूजी के पास आते और उनमें छपे हुए सुन्दर चित्रों को देख कर मैं उनकी अनुकृतियां बनाता था जो आज भी हमारे संग्रह में हैं। बाबूजी मुझको - जैसा मेरे दादा बाबूजी के साथ उनके बचपन में करते थे - रोज एक श्लोक, दोहा या चौपाई याद करके सुनाने पर दो पैसे इनाम दिया करते थे। आज मेरा गाँव बहुत बदल गया है, और वह पुराना पुश्तैनी मकान भी नहीं है, पर हम बाबूजी के नाम पर 1993 में स्थापित न्यास की ओर से वहां उसी मकान की जगह पर उनका एक स्मारक बनवाने में लगे हैं। इधर मैं बाबूजी की 57वीं पुण्यतिथि पर गाँव के एक समारोह में गया था तो देखा मुख्यमंत्री नीतीश कुमार जी ने मेरे गाँव के पुराने पोखरे के चारों ओर एक आधुनिक पार्क बनवाकर उसमें बाबूजी की एक प्रस्तर प्रतिमा का उदघाटन किया है। गाँव की सड़क बहुत ठीक हो गयी है, बिजली घर-घर में पहुँच गयी है, बाजार सभी तरह की दूकानों से सज गया है। पर शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनिया' का वह 'राम सहर' आपको अब वहां नहीं मिलेगा। परमानंदजी ने बाबूजी को 'जनता का लेखक' कहा है जिसके लेखन में 'एक जीवन्तता, एक ठेठपन, एक सहज ग्रामीण भारतीयता की घनिष्ठ छवि' दिखाई देती है। लेकिन अब वह 'सहज ग्रामीण भारतीयता की घनिष्ठ छवि' आपको 'देहाती दुनिया' में ही दिखाई देगी।

कलानाथ - आचार्य शिवपूजन सहाय एक सफल गद्य-लेखक और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के बाद हिंदी के एक श्रेष्ठ सम्पादक के के रूप में विख्यात हैं। अपनी कहानियों और अपने एकमात्र आंचलिक उपन्यास 'देहाती दुनिया' में आचार्य जी एक अत्यंत कुशल भाषा-शिल्पी के रूप में सुख्यात हैं। उनके कथा-लेखन और उनकी कथा-भाषा पर थोड़ा प्रकाश डालें।

मंगलमूर्त्ति - आप हिंदी की साहित्यिक समालोचना के समकालीन परिदृश्य से पूरी तरह परिचित हैं। गद्य-लेखन, सम्पादन, कथा-लेखन, कथा-भाषा, कथा-शिल्प हिंदी समालोचना के मानक शब्द हैं। मेरा इन पर कुछ भी कहना अनाधिकारिक ही माना जायेगा। फिर भी मैं अपनी बात पहले

संपादन-कर्म से शुरू करूंगा, और दृढ़तापूर्वक अपनी बात कहूँगा, जो अटपटी लग सकती है। संपादन-कर्म में शिवपूजन सहाय का नाम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के बाद अद्वितीय नाम है। दोनों के संपादन काल में लगभग दो दशकों का अंतराल है। द्विवेदी जी का पिछली सदी के पहले लगभग तीन दशकों का संपादन-काल है और शिव जी का भी उसके ठीक बाद के तीन दशकों का सम्पादन-काल है। कुछ तथ्यों को देख लें - द्विवेदी जी का सम्पादन मुख्यत: 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन तक सीमित है, यद्यपि एक विशेष अर्थ में वह संपादन शिवजी के संपादन-कर्म से बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है - परिमाण की दृष्टि से नहीं, बल्कि हिंदी-गद्य के निर्माण की दृष्टि से। स्वयं शिवजी के द्विवेदीजी पर लिखे संस्मरणों में इसकी विस्तार से चर्चा है, जिसे दुबारा ठीक से पढने की जरुरत है। लेकिन मेरी समझ में, परिमाण और दिशा-निर्देश की दृष्टि से शिवजी का संपादन-कर्म कई गुना अधिक है। उन्होंने परिमाण की दृष्टि से द्विवेदीजी की तुलना में बीसों गुना अधिक रचनाओं और सैकड़ों पुस्तकों का संपादन किया - और उनका संपादन कैसा था यह 'मतवाला' से लगायत - 'समन्वय', 'आदर्श, 'मौजी' आदि छोटी पत्रिकाओं को छोड़ भी दें तो - 'माधुरी', 'जागरण', 'गंगा', 'हिमालय' और अंत में 'साहित्य' तक की श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाओं के सम्पादन-कर्म को देख कर समझा जा सकता है। द्विवेदीजी का सम्पादन यदि आधारशिला-स्थापना का संपादन था तो शिवजी का संपादन ऊपरी मंजिलों के निर्माण का संपादन था जिसका महत्त्व इसीलिए और अधिक माना जाना चाहिए। द्विवेदीजी के बाद शिवजी के संपादन-कर्म को मैंने अद्वितीय इसलिए कहा कि बाद के 4-5 दशकों में शिवजी के संपादन-कर्म से तुलनीय भी और कोई नाम शायद नहीं लिया जा सकता। आज के लेखक और संपादक शिवजी के सम्पादन की सूक्ष्मता और गहनता का कोई अनुमान नहीं कर सकते, क्योंकि इस संश्लिष्ट प्रक्रिया की कोई स्पष्ट जानकारी उनको है ही नहीं। मैंने स्वयं अपने पिता के इस अत्यंत संवेदनशील और तकनीकी पद्धति का सूक्ष्मता से अध्ययन किया है, क्योंकि हमारे संग्रहालय में 'जागरण' की शिवजी द्वारा संपादित सारी पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं, और उनमें संपादन की यह बारीक कारीगरी देखी जा सकती है। इनमें से बहुत सी संशोधित पांडुलिपियों की प्रतिकृतियाँ मैंने 'समग्र' में प्रकाशित भी कर दी हैं, जिन्हें लोग देख कर जान सकें की यह प्रक्रिया कितनी संश्लिष्ट होती है। यहाँ विनम्रतापूर्वक मैं आदरणीय नामवरजी की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना चाहूँगा जिनमें उन्होंने दिल्ली में 'समग्र' का लोकार्पण करते समय 2011 में उसके सम्पादन की विशेष अभ्यर्थना की थी। उनके शब्द थे - 'इधर हिंदी में बहुत सी ग्रंथावलियां निकली हैं, और संतोषप्रद तो उनमें से अधिकाँश हैं, पर कुछ ही है ऐसी हैं जो इतने व्यवस्थित, सुसंपादित ढंग से निकली हैं, जिनमें यह ग्रंथावली है और मंगलमूर्ति ने इसका नाम 'समग्र' रखा है, और इस पर विचार किया है उन्होंने कि ग्रंथावली अलग होती है और समग्र अलग होता है। जितनी सामग्री है वह सारी की सारी और पूरी क्रमबद्धता के साथ रखी गयी है। वास्तव में, सम्पादन कैसे किया जाता है यह आपको इस 'समग्र' को पढ़ कर पता लगेगा कि कैसे और कितने वैज्ञानिक और व्यवस्थित ढंग से सम्पादन किया जाता है। जो आवश्यक है उसे कैसे और कहाँ दिया जाय - सारे तथ्यों को जांच करके, पड़ताल करके दिया गया है। कहाँ उनका हस्तलेख दिया जाना चाहिए इसका भी ध्यान रखा गया है। इसीलिए

अत्यंत सुसंपादित यह 'शिवपूजन सहाय साहित्य समग्र' है, जो एक आदर्श है, और एक मानदंड बन सकता है हिंदी के किसी सम्पादक के लिए।'

मुझको कोई आश्चर्य नहीं हुआ जब कि 'समग्र' के प्रकाशन के बाद हिंदी के साहित्य-जगत में इसकी कोई चर्चा ही नहीं हुई, बल्कि कुछ छुट भैयों ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'समग्र' का संपादन किसी और सक्षम और सुयोग्य व्यक्ति को करना चाहिए था। उसी तरह शिवजी पर हाल में हुए एक त्रि-दिवसीय सेमिनार में भी, जिसमें मैं उस सत्र का मुख्य अतिथि था, एक वक्ता ने मेरे संपादन पर कई गंभीर और निरर्थक आरोप लगा दिए, और अध्यक्षता कर रहे हिंदी के एक वरिष्ठ प्राध्यापक ने मुझको इन निराधार आरोपों का प्रतिकार करने का भी अवसर नहीं दिया। जो हो, मैं भले ही हिंदी साहित्य का व्यक्ति न सही, लेकिन मैं इतना कह सकता हूँ कि मुझमें हिंदी साहित्य का जितना रक्त प्रवाहित है, उसमें कोई मिलावट नहीं है, वह हिंदी के एक संत तपस्वी सेवी का ही रक्त है शत-प्रति-शत। और मैं अपना काम बखूबी जानता हूँ, अपने पिता की तरह ही, जैसे एक किसान का बेटा जानता है, एक लुहार या सुनार का बेटा जानता है, जिसे एक पुश्तैनी हुनर की तरह उसने एक-एक चोट खाकर सीखा है। और लगातार मैं अपना यह काम करता भी रहा हूँ, जो मेरे जाने के बाद भी रह जायेगा, और देखा जा सकेगा। आज हिंदी में सन्दर्भ-सामग्री की इतनी कमी है, अच्छे कोशों की इतनी कमी है - हम अंग्रेजी की ओर स्पर्धा और हिकारत की नजर से देखते हैं, लेकिन उनके पास इस तरह की सहायक सामग्री की आश्चर्यजनक विपुलता है। हम दूसरों में दोष ही देखने में व्यस्त रहते हैं, हमको अपनी कमियों की ओर पहले ध्यान देना चाहिए।

आपके प्रश्न का उत्तरार्द्ध मेरे पिता के उपन्यास 'देहाती दुनिया' से जुड़ा है, और उस प्रसंग में आपने कथा-लेखन, कथा-भाषा और भाषा शिल्प जैसे कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी उठाये हैं। यहाँ मैं पहले कह दूं कि हर रचनाकार या कथाकार अपनी रचना का सबसे पहला और सबसे संवेदनशील संपादक होता है। वह रचना को जन्म देता है, और रचना की प्रसव-पीड़ा एक प्रकार का सम्पादन-कर्म भी है। अपने समय में शिवपूजन सहाय हिंदी के सर्वाधिक समर्थ और लम्बी भाषा-साधना की शक्ति से सर्व-संपन्न लेखक और रचनाकार थे। उनकी कुछ कहानियां हैं- 'मुण्डमाल', 'कहानी का प्लाट', आदि, और उनका एकमात्र उपन्यास है 'देहाती दुनिया' - जिसको हिंदी का हर आलोचक 'हिंदी का प्रथम आंचलिक उपन्यास' कह कर वापस रख देता है, जैसे यही उस उपन्यास की एकमात्र मूल्यवत्ता हो, और फिर उसको उन दिनों लिखे जाने वाले अन्य उपन्यासों के नीचे चुपचाप दबा कर रख दिया जाता है- जिनमें उस समय प्रेमचंद के केवल तीन प्रकाशित उपन्यास थे- 'सेवा सदन' (1918), 'प्रेमाश्रम' (1922) और 'रंगभूमि' (1925) और चौथा कोई वैसा उपन्यास था भी नहीं।

यह भी उल्लेखनीय है की जब शिवपूजन सहाय 'देहाती दुनिया' लखनऊ में रहते हुए लिख रहे थे, उसी समय वे प्रेमचंद की 'रंगभूमि' का सम्पादन भी साथ-साथ कर रहे थे। 'गोदान'

भी दस साल बाद आया। हिंदी उपन्यास के समालोचक इस पर ध्यान नहीं देते कि 1925-26 के दशकों बाद जैसे 'रेणु' और 'नागार्जुन', और फिर तो अनेकानेक उपन्यासकार, 'देहाती दुनिया' के ही सांचे में ढालकर हिंदी उपन्यास में एक नए शिल्प और कथा-भाषा के आविष्कर्त्ता माने जाने लगे, उस तरह का कोई मॉडल - हिंदी क्या, विश्व-उपन्यास में भी - 1925-26 में शिवपूजन सहाय के सामने कहीं नहीं था। अंग्रेजी में थॉमस हार्डी के कुछ उपन्यास अवश्य इस कोटि में परिगण्य थे, और संभव है प्रेमचंद और शिवजी भी उनसे परिचित हुए हों, पर उस समय के उपलब्ध हिंदी उपन्यासों में केवल प्रेमचंद के उपन्यासों का मॉडल शिवजी के लिए उपलब्ध जरूर था, लेकिन आप उस समय तक के प्रेमचंद के उपन्यासों से तुलना कर के देखें तब 'देहाती दुनिया' के सर्वथा अनूठे, सर्वथा नवीन शिल्प का आपको अंदाज मिलेगा। और 'देहाती दुनिया' में कथा-रचना का शिल्प भी आपको प्रेमचंद को कड़ी टक्कर देता प्रतीत होगा। कथा-भाषा की कसौटी पर तो मेरी दृष्टि में 'देहाती दुनिया' उस समय भी और बाद के समय में भी प्रेमचंद की कथा-भाषा की पराकाष्ठा से एक कदम भी पीछे नहीं मिलेगा, और कहीं-कहीं भाषा-सौष्ठव और संयम की दृष्टि से तो वह प्रेमचंद की कथा-भाषा को भी पीछे छोड़ देता लगता है। यहाँ उद्धरणों के अवसर तो नहीं हैं पर 'रंगभूमि' के कथा-गद्य और 'देहाती दुनिया' के कथा-गद्य की तुलना करने पर इस प्रतिपत्ति की पुष्टि की जा सकती है। और इससे यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि 'देहाती दुनिया' अपने समय में प्रकाशित हिंदी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है, जिसके शिल्प और कथा-भाषा की ओर हिंदी कथालोचन में अभी समुचित ध्यान ही नहीं दिया गया है।

कथा-भाषा पर सोदाहरण विचार करने से पहले दो-तीन बातों पर ध्यानाकर्षण जरूरी है। पहले तो, 1925 तक 'देहाती दुनिया' जैसा पूरी तरह एक ग्राम्यांचल-विशेष पर केन्द्रित कोई उपन्यास नहीं लिखा गया था। प्रेमचंद के उपन्यासों में भी कथानक शहर के परिसर में ही और सरहद से सटे कुछ गाँव के चरित्रों को लेकर ही विकसित होता है। उनके कथानक में शहर या उसके आस-पास का ही परिदृश्य होता है, और अधिकाँश चरित्र भी शहरी ही होते हैं उनकी बातचीत के सन्दर्भ भी बहुलांशत: शहरी होते हैं। उस समय तक के प्रेमचंद के उपन्यासों में गाँव पूरी तरह कहीं केंद्र में नहीं होता। दूसरी बात, प्रेमचंद की कथा-भाषा में गाँव की बोलचाल के रस के बदले शहर के शिक्षित वर्ग की भाषा का प्रयोग एक सपाट ढंग से तब तक के सभी उपन्यासों में एक-जैसा दिखाई देता है, जबकि 'देहाती दुनिया' 'रंगभूमि' के साथ-साथ लिखी जाने पर भी एक नयी आविष्कृत गंवई बोलचाल की भाषा के प्रयोग के साथ हिंदी उपन्यास में प्रवेश करती है। 'मैला आँचल' भी इस दृष्टि से 'देहाती दुनिया' के बरक्स 'गोदान' के ही अधिक निकट है। 'देहाती दुनिया' की कथा-भाषा का ग्रामीण परिवेश से एकात्मीकरण एक प्रकार का अद्वितीय उत्कर्ष प्राप्त कर लेता है, जबकि और दोनों उपन्यासों- 'रंगभूमि' और 'मैला आँचल' में शहर की छाया उनपर बराबर बनी रहती है। इसीलिए कथा-भाषा की दृष्टि से भी 'रंगभूमि' और 'देहाती दुनिया' में तुर्की-ब-तुर्की तुलना संभव नहीं है। 'रंगभूमि' की कथा-भाषा प्रेमचंद के तब तक के लिखे उपन्यासों की ही तरह जहाँ एक-साँ उर्दू की टकसाली छाप के साथ नगरीय और अभिजात्य है, 'देहाती दुनिया' में ग्रामीण परिवेशानुकुल एक नयी आविष्कृत कथा-भाषा के दर्शन होते हैं जैसी

कथा-भाषा हिंदी कथा-साहित्य में तब तक कहीं नहीं दिखाई देती- प्रेमचंद के उपन्यासों में भी नहीं। इस प्रसंग के अंत में मैं दो छोटे-छोटे तुलनात्मक उदाहरण आपके सामने रखता हूँ, यद्यपि अपने भिन्न सन्दर्भों के अनुसार ये पूरी तरह समतुल्य नहीं हैं, लेकिन एक नई आंचलिक कथा-भाषा का स्वरुप तुलना से साफ झलक जाता है। उससे पहले यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि ये दोनों उपन्यास बिलकुल एक ही समय लिखे गए थे, और शिवपूजन सहाय जब 'देहाती दुनिया' लखनऊ में लिख रहे थे, और वहां उनका प्रेमचंदजी का साहचर्य भी था, बल्कि प्रेमचंद वाले अपने संस्मरण में सूरदास के चरित्र के बारे में शिवजी एक अनबूझ पहेली भी बुझाते हैं- क्योंकि उसी समय वे 'रंगभूमि' की पाण्डुलिपि का वहां संशोधन भी कर रहे थे। आप इन दो उदाहरणों को पहले देखिये। एक तरफ, 'रंगभूमि' की नगर-बोधयुक्त कथा-भाषा और दूसरी तरफ 'देहाती दुनिया' की नई आविष्कृत ग्राम्यांचल की कहीं अधिक व्यंजक कथा-भाषा :

'संध्या हो गयी थी। किन्तु फागुन लगने पर भी सर्दी के मारे हाथ-पाँव अकड़ते थे। ठंढी हवा के झोंके शरीर की हड्डियों में चुभे जाते थे। लोग लिहफ में यूँ मुंह छिपाए हुए थे जैसे चूहे बिलों में से झांकते हैं। दुकानदार अंगीठियों के सामने, बैठे हाथ सेंकते थे।' ('रंगभूमि', अध्याय)

जेठ का महीना था। भूखे गरीब के पेट की तरह धरती जल रही थी। लू की लपट से ऐसी आंच निकलती थी, मानों नवयुवती विधवा गरम सांस छोड़ रही हो। लम्बी जीभ निकाले कुत्ते हलप-हलप कर हाँफते थे, जैसे जाड़े में दमा का कोई पुराना रोगी। हम बाबूजी के साथ पालकी पर मूसन तिवारी के एक भतीजे की बरात में जा रहे थे। साथ में एक लदुआ टट्टू पर बाबू रामटहल सिंह के दरवान घूरन सिंह भी थे। उनके पीछे-पीछे खेदू बहँगीदार। ('देहाती दुनिया', अध्याय 11)

जरूरी यह है कि आप एक नयी दृष्टि से 'देहाती दुनिया' का गंभीर पुनर्पाठ करें, केवल पहला आंचलिक उपन्यास कह कर शेल्फ पर न रख दें। मेरा एक लेख 'देहाती दुनिया' पर छप चुका है, जिसको थोड़े और विस्तार से मैं लिख रहा हूँ जो जल्दी ही कहीं छपेगा। कथा-भाषा और शिल्प के प्रसंग में मैं उसकी कुछ पंक्तियाँ यहां उद्धृत करना चाहूंगा।

'देहाती दुनिया' एक ऐसा उपन्यास है जिसका परिवेश और कथा-संसार ही नहीं, वरन जिसकी भाषा भी उनके ठेठ देहाती मित्रों के जीवन के निकटतम थी। जिसका स्वरुप, कथानक, परिवेश-चित्रण आदि एक विशिष्ट मूल ग्रामीण पाठक या श्रोता वर्ग की अभिरुचि से निर्धारित हुआ था। इस अर्थ में यह हिंदी का ऐसा उपन्यास था जो अपनी उपमा आप था। इसका दूसरा कोई मॉडल नहीं था। परमानन्द श्रीवास्तव के अनुसार 'देहाती दुनिया' 'अपने साथ एक नया कथा-रूप लेकर आता है'। अंतर बताते हुए वे कहते हैं - ''देहाती दुनिया' के साथ कुछ और तरह के आंचलिक उपन्यास की छवि हमारे मन में बनती है।... ध्यान से देखने पर खंड-खंड रखा गया उसकी अन्विति का एक अनोखा शिल्प उसके पास है।'

और हम यदि केवल इस उपन्यास की भाषा और उसके शिल्प पर ही विचार करें तो भी यह उपन्यास एक विश्वस्तरीय उपन्यास माना जा सकता है। लेकिन सत्य ये है कि 'देहाती दुनिया'

हिंदी के महनीय आलोचकों द्वारा सबसे कम पढ़ा गया, सबसे कम मूल्यांकित उपन्यासों में गणनीय है यह उपन्यास। इसकी विशिष्टता का एक मानक यह भी है कि जैसे श्रेष्ठ कविता का अनुवाद नहीं हो सकता, उसी तरह इस उपन्यास का अनुवाद भी अत्यंत कठिन है। ऐसा उपन्यासों में कम हुआ है। इस उपन्यास की भाषा भोजपुर अंचल के गाँव के बतरस वाली भाषा है - गाँव की कहावतों और मुहावरों से सिक्त जैसे पूरी तरह वहां के जीवन-रस में भींगी हुई। इसका एक-एक वाक्य ग्राम्य जीवन के राग और संगीत को ध्वनित करता है। और ऐसा शायद ही हिंदी के किसी अन्य तथाकथित आंचलिक उपन्यास में देखने को मिलता है। इसकी कथा भाषा में ही गाँव की आत्मा के दर्शन होते हैं। शहर का कोई चरित्र इसमें नहीं हैं। दारोगा पुलिस भी ग्रामीण इलाके के थाने के ही हैं, जिनसे गाँव वालों का रोज का आमद-दरफ्त है, और जो उस ग्रामीण अंचल के जरूरी पात्र हैं। इसका कथानक कभी शहर के निकट भी पहुंचता ही नहीं। शहर की कोई भी गंध नहीं है इसमें कहीं भी। उपन्यास का ऐसा अनोखा, अभूतपूर्व स्वरुप हिंदी उपन्यास में न इससे पहले था, इसके समकालीन उपन्यासों में तो नहीं ही था, बाद के उपन्यासों में भी शिल्प और कथा भाषा की ऐसी एकात्मकता नहीं दिखाई देती।

मेरा अपना मत है कि 'देहाती दुनिया' के गंभीर नए पुनर्पाठ से ही ये बातें साफ हो सकती हैं। मेरी दृष्टि में हिंदी समालोचना के सामने यह एक चुनौती है कि नए समालोचक पुरानी बहुत सारी कृतियों का गंभीर पुनर्पाठ करें। परंपरा की नयी और सघन छान-बीन से बहुत सारा गर्द-गुबार तभी साफ हो सकता है।

कलानाथ - आचार्य शिवपूजन सहाय के साहित्यिक अवदान में उनके कथा-साहित्य, निबंध-लेखन, संस्मरण साहित्य आदि में आप किसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

मंगलमूर्त्ति - मैं कभी-कभी सोचता हूँ - एक सर्वथा असंभव युक्ति- मेरे पिता 1920 में सरकारी स्कूल की नौकरी में थे जिससे असहयोग आन्दोलन में त्यागपत्र दे दिया, लेकिन यदि वे फिर चाहते तो आरा में ही या अन्य कहीं स्कूल की या कोई और नौकरी करते, या फिर छपरा में ही प्रोफेसरी छोड़कर पटना नहीं जाते, और नौकरी के साथ-साथ अपना लेखन-कार्य भी करते होते, और हिंदी सेवा या देश सेवा की भावना के बदले एक लेखक के रूप में प्रसिद्धि के आकांक्षी होते, और दूसरों की रचनाओं के सम्पादन में नहीं उलझाए गए होते, जैसा उनके समकालीन बहुत से लेखकों के साथ हुआ था, तो शायद वे भी और अधिक व्यवस्थित साहित्य-लेखन कर पाते, और कुछ और कहानियां और उपन्यास भी लिख पाते। उन्होंने कुछ अधूरे उपन्यास लिख छोड़े हैं, जिन्हें 'समग्र' में संकलित किया भी गया है। आप उन्हें देख सकते हैं, और प्रेमचंद के तब के लिखे उपन्यासों- 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम'. 'रंगभूमि' आदि से उनकी तुलना करके उनमें प्रच्छन्न संभावनाओं की जांच-परख भी कर सकते हैं, और तब शायद मेरी इन असम्भव संभावनाओं को तर्कपूर्ण पाया जा सकता है। शिवपूजन सहाय 'रंगभूमि' के साथ-साथ, या उससे कुछ पहले ही, 1922-23 में, एक नए शिल्प, नई कथा-भूमि का उपन्यास 'देहाती दुनिया' लिख रहे थे जिसकी कथा-भाषा भी 'रंगभूमि' की कथा-भाषा से सर्वथा भिन्न और उस नई कथा-भूमि के पूर्णतः अनुकूल थी, और यह तब जब वे 'रंगभूमि' की पाण्डुलिपि का सम्पादन भी साथ-साथ करते चल रहे थे, और कुछ

प्रेमचंद शैली के ही और उपन्यास उन्होंने अधूरे लिखे भी थे। तब इन सब तथ्यों को एक साथ मिला कर विचार करने पर इसकी बहुत संभावना दीखने लगाती है कि यदि यह सारा अघट संयोग घटा होता तो शिवपूजन सहाय भी प्रेमचंद की ही तरह के एक उपन्यासकार हिंदी में और होते। यह संभावना बहुत दृढ हो जाती है जब हम उनके अपूर्ण उपन्यासों को 'देहाती दुनिया' के साथ रख कर देखते हैं। ऐसी संभावना की ओर उनके कई समानधर्मा लेखकों ने अपने संस्मरणों में संकेत भी किया है। पर हिंदी भाषा और साहित्य की इमारत खड़ी करने के लिए कुछ राज-मजदूरों की भी जरुरत थी, और शिवपूजन सहाय ने अपने लिए ठेकेदार के बदले मजदूर का पेशा ही अख्तियार करने का निश्चय किया। त्याग और सद्भावना शिवपूजन सहाय के जीवन का मूल मन्त्र सदा रहा।

उपन्यास और कहानी के कुछ नमूने पेश कर के उन्होंने हिंदी लेखन-जगत को बता दिया कि उन विधाओं में उनकी सृजन-संभावनाएं कितने ऊंचे स्तर की हैं। जब वे दसवें क्लास के छात्र थे तभी उन्होंने तुलसीदास के अनुकरण में तत्सम अनुप्रास और अलंकरण से युक्त सुन्दर काव्य-छंदों की रचना कर के अपनी काव्य प्रतिभा का पूरा परिचय दे दिया था, जो हिंदी संसार के सामने पहले नहीं आयीं, लेकिन 'समग्र' में मैंने उनको भी प्रकाशित कर दिया है। आप उनको देखें तो निराला के तत्सम-बहुल काव्य-प्रवाह की सहज ही याद आएगी, और आपको लगेगा काव्य-रचना की संभावना भी शिवपूजन सहाय में उतनी ही थी, यदि वे उसमें आगे बढ़ना चाहते। आप यदि बिना पढ़े-गुने आलोचना के मैदान में ताल ठोंकना शुरू कर देंगे तो क्या कहा जा सकता है !

निबंध-लेखन साहित्य की सबसे कठिन चुनौतीपूर्ण विधा है। निबंध के विषय में शिवजी की ही एक टिप्पणी पढ़िए-

कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना आदि साहित्य के प्रमुख अंग हैं, पर निबंध तो साहित्य का उत्तमांग है। साहित्य के वास्तविक उत्कर्ष की जांच निबंध से ही होती है। निबंध में ही लेखक के गद्य की शक्ति परखी जाती है। हिंदी का निबंध-साहित्य उत्तरोत्तर विकसित और समृद्ध होता जा रहा है। अब यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि हिंदी में भावात्मक, विचारात्मक, विवेचनात्मक और समीक्षात्मक निबंध बहुत ही उच्च कोटि के लिखे जाने लगे हैं, जिनके बल पर हिंदी अन्य उन्नत भाषाओं के सामने भी सगर्व खड़ी रह सकती है। निबंधकार द्वारा अनुभूत विषय जब पाठक के मन को रमानेवाले ढंग से अभिव्यक्ति पाता है तभी निबंध की सार्थकता सिद्ध होती है। निबंध केवल पांडित्य प्रदर्शन का साधन नहीं है।

अपने निबंधकार के लिए शिवजी ने स्वयं कसौटी प्रस्तुत कर दी है। वे एक श्रेष्ठ कथाकार तो थे ही, उनमें काव्य-प्रतिभा भी समुचित थी, पर उनके निबंध उनके सबसे महत्त्वपूर्ण अवदान हैं। उन्होंने 'भावात्मक, विचारात्मक, विवेचनात्मक और समीक्षात्मक' - सभी कोटियों में श्रेष्ठ निबंध हिंदी को दिए हैं जिनकी विविधता और विदग्धता और उनके प्रशस्त आयाम विस्मयकारी हैं। यहाँ भी वे प्रथम कोटि के रचनाकार हैं। और उनके संस्मरणों जैसे संस्मरण तो हिंदी में कहीं और मिलेंगे ही नहीं। शताधिक लिखे उनके संस्मरणों में केवल 'निराला', प्रेमचंद

और 'प्रसाद' पर लिखे उनके तीन संस्मरण ही हिंदी के संस्मरण-साहित्य के लिए गौरव-चिन्ह हैं। मेरा अपना मानना है कि एक श्रेष्ठ रचनाकार एक सामान्य पत्र भी लिखता है तो वह साहित्य की एक अनमोल वस्तु हो जाती है, और सचमुच मुझको अपने पिता के लिखे पत्रों से अधिक सुन्दर - एक रचना की सम्पूर्ण सुन्दरता लिए हुए- पत्र हिंदी में कहीं और पढने के लिए नहीं मिले हैं। यह मैं एक पुत्र की तरह नहीं, एक प्रबुद्ध पाठक और साहित्य-अध्येता के रूप में निस्संकोच कह सकता हूँ। आप उनके पत्रों को पढ़कर देखें- जो उग्रजी ने 'फाइल प्रोफाइल' में प्रकाशित किये हैं, या जो समग्र के अंतिम खंड-10 में छपे हैं।

कलानाथ - आचार्य जी एक कुशल रचनाकार तो थे ही पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनका अवदान अमूल्य है। पत्रकारिता में आचार्य शिवपूजन सहाय मेरुदंड की तरह स्थापित हैं। आप उन दिनों की पत्रकारिता से भी परिचित होंगे। आज की साहित्यिक पत्रकारिता में आप तुलनात्मक दृष्टि से किस तरह का अंतर देखते हैं?

मंगलमूर्त्ति - शिवजी ने जब 1920 के असहयोग आन्दोलन में सरकारी स्कूल की नौकरी से इस्तीफा दिया था तब उनके सामने पत्रकारिता को ही अपनी आजीविका का साधन बनाने का विकल्प था। लेकिन आजीविका से अधिक वे पत्रकारिता का वरण हिंदी और राष्ट्र सेवा के लिए करना चाहते थे। 'मारवाड़ी सुधार' आरा के उनके मारवाड़ी छात्रों और प्रशंसकों द्वारा प्रकाशित हुआ और उसी को छपवाने के लिए वे फरवरी 1921 में कलकत्ता गए। वहाँ मिर्जापुर के महादेव प्रसाद सेठ ने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर ही बालकृष्ण भट के नाम पर 'बालकृष्ण प्रेस' खोला था जहाँ 'मारवाड़ी सुधार' के अंक मुद्रित होते थे। उसी भवन (23 शंकर घोष लेन) में रामकृष्ण मिशन के सन्यासियों के साथ निरालाजी भी रहते थे और 'समन्वय' का संपादन करते थे। इसी समय कुछ दिन शिवजी ने 'आदर्श', 'मौजी', 'गोलमाल' जैसे कुछ पत्रों का संपादन किया, लेकिन वे बालकृष्ण प्रेस में ही रहने लगे थे, जहाँ निरालाजी से उनकी घनिष्ठता हुई। अंततः वहीं से अगस्त, 1923 में 'मतवाला' का प्रकाशन हुआ जिसके लेखन-सम्पादन का तीन-चौथाई काम शिवपूजन सहाय ही करते थे, यद्यपि सम्पादक के रूप में मालिक महादेव प्रसाद सेठ का नाम छपता था। उसके बाद 1924 में कुछ दिन शिवजी लखनऊ की 'माधुरी' में सम्पादन-विभाग में रहे जहाँ प्रेमचंद, जो 'माधुरी' के संपादक थे, उनसे संपर्क हुआ और वहीं शिवजी ने 'रंगभूमि' का संपादन किया, जिसकी चर्चा मैं कर चुका हूँ। यही वे अपना उपन्यास 'देहाती दुनिया' भी उसी समय लिख रहे थे, और जब दंगे में लखनऊ से भागे तब 'देहाती दुनिया' की पांडुलिपि वहीं होटल के कमरे में बंद छोड़ आये जो फिर मिली नहीं, और शायद दुलारेलाल के साहित्यिक गोदाम में कहीं खो गयी। और तब उन्होंने पूरा उपन्यास काशी में रहते हुए दुबारा लिखा जो 1926 में पुस्तक भंडार से प्रकाशित हुआ।

शिवजी अब काशी में ही रहने लगे थे। यहीं रहते हुए उनका तीसरा विवाह हुआ। कुछ दिन बाद काशी से ही शिवजी के सम्पादन में 1932 में पाक्षिक 'जागरण' निकला जो छः महीने ही चला। और तब उन्होंने उन्हीं दिनों लगभग एक साल सुल्तानगंज से प्रकाशित साहित्यिक मासिक 'गंगा' का संपादन किया। संपादित पत्रों की अगली कड़ी में पुस्तक-भंडार से प्रकाशित दो पत्र

'बालक' (लहेरिया सराय, 1932) और 'हिमालय' (पटना, 1946) रहे। और जब वे छपरा से पटना आ गये तब उनके और नलिनविलोचन शर्मा के सम्पादन में त्रैमासिक 'साहित्य' 1950 से लगातार 1962 तक प्रकाशित हुआ। ये सभी नामित पत्रिकाएं आद्योपांत शिवजी के सम्पादन में ही प्रकाशित होती थीं, पर कुछ पर सम्पादक के रूप में महादेव प्रसाद सेठ या प्रेमचंद या रामलोचन शरण का नाम छपा करता था। शिवजी द्वारा संपादित इन सभी लगभग दर्जन-भर पत्रिकाओं का नाम मैंने कालक्रम से गिनाया है, और ये सभी साहित्यिक पत्रिकाएं थीं जो 1921 से 1962 - लगभग चार दशकों के काल-खंड में फैली हुई, हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता का दिग्दर्शन कराती हैं। मसलन, पाक्षिक 'जागरण' जब प्रेमचंद के सम्पादन में साप्ताहिक रूप में छपने लगा तब उसका स्वरुप मूलत: एक राजनैतिक पत्र का हो गया। लेकिन 'मतवाला' राजनैतिक विषयों पर लिखते हुए भी अपनी शुद्ध साहित्यिकता- जब तक शिवजी उसमें रहे - बनाए रहा। शिवजी द्वारा सम्पादित शेष सभी नामित पत्रों का स्वरुप बराबर शुद्ध साहित्यिक ही रहा।

स्पष्ट है 'साहित्यिक पत्रकारिता' से तात्पर्य यही है कि उसमें प्रकाशित सारी सामग्री में साहित्य की ही प्रधानता रहेगी। शिवजी द्वारा सम्पादित बिहार हिंदी साहित्य सम्मलेन के मुखपत्र का तो शीर्षक ही 'साहित्य' था और बाकी सभी नामित पत्रों के मुकाबले यह एक गंभीर शोध-प्रधान साहित्यिक पत्र था। साहित्यिक पत्रकारिता साहित्य का प्रकाश-स्तम्भ होती है। वह उसको दिशा दिखाती है और उसके दिशा-प्रवाह का समालोचन भी करती है। यह काम छायावाद युग में 'जागरण' ने किया था, और फिर आधुनिकता के अग्रदूत के रूप में 'हिमालय' ने, और उसीसे प्ररित होकर उसके तुरत बाद अज्ञेय के संपादन में 'प्रतीक' ने किया था। साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में ये सभी मील-स्तम्भ की तरह हैं। और यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि आचार्य द्विवेदी जी के बाद हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता में अगला नाम शिवपूजन सहाय का ही है। इन दोनों के मुकाबले कोई तीसरा नाम दूर-दूर तक दिखाई नहीं देता।

आपने आज की साहित्यिक पत्रकारिता की बात कही है। अब वह संघर्ष और निर्माण का समय नहीं रहा। लम्बे समय तक यह गुरुतर दायित्त्व-निर्वहन 'आलोचना' ने किया जो नामवर जी के संपादन में साहित्यिक पत्रकारिता के अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गयी। उसके पीछे एक सर्व-समर्थ हिंदी प्रकाशक का दृढ़ संबल था। लेकिन आज जो अनेक अल्पजीवी साहित्यिक पत्रिकाएं निकल रही हैं उनकी गुणवत्ता के विषय में कुछ कहना मेरे लिए कठिन है। सामान्यत: साहित्यिक पत्रिका का महत्त्व उसके सम्पादक पर ही निर्भर होता है। आज का साहित्यिक वातावरण सर्वथा भिन्न है। आप स्वयं एक प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका के संपादक हैं। आप शिवपूजन सहाय और नलिन विलोचन शर्मा के युग की साहित्यिक पत्रकारिता से भली-भांति परिचित हैं। 'साहित्य' के अंकों को देख कर साहित्यिक पत्रकारिता का प्रशिक्षण प्राप्त किया जा सकता है। बाबूजी के सहायक सम्पादक श्रीरंजन सूरिदेव जी कुछ दिन पहले दिवंगत हुए हैं। मेरे पिता की आँखें जब काम करना बंद कर चुकी थीं तब प्रूफ देखने का काम श्रीरंजन जी ही करते थे। आज साहित्य के नाम पर प्रकाशित होने वाली पत्रिकाएं भी प्रूफ और संपादन की भूलों से भरी

रहती हैं। लगता है अब लोग भाषा की भूलों के प्रति उदासीन होते जा रहे हैं। रचनाओं का सम्पादन-काट-छांटके अलावा- शायद ही अब कहीं होता है। मैं अंग्रेजी का अध्येता हूँ। अंग्रेजी की साहित्यिक पत्रिकाओं में ऐसी त्रुटियाँ आपको कहीं नहीं मिलेंगी। इस प्रसंग में लेखन में भी लोग बहुत असावधान हो गए हैं। यह एक अत्यंत चिंताजनक स्थिति है, मैं बस यही कह सकता हूँ।

कलानाथ - आचार्य सहायजी ने अपने जीवन-काल में कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण अभिनन्दन ग्रंथों का भी सम्पादन किया था जिसमें आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ की बहुत चर्चा होती है, यद्यपि कहा जाता है उसमें सम्पादक के रूप में उनका नाम नहीं छपा है। कृपया इस पर कुछ प्रकाश डालें।

मंगलमूर्त्ति - अभिनन्दन ग्रन्थ जर्मन शब्द 'फेस्टश्रीफ्ट' से आया है, जिस शब्द का पहला प्रयोग ही जर्मनी में 1898 में हुआ था। अब अंग्रेजी में भी अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में इसी जर्मन शब्द का प्रयोग प्रचलित है। इसकी मूल कल्पना एक ऐसे ग्रन्थ के रूप में हुई थी जो किसी महान लेखक, कलाकार या वैज्ञानिक के अभिनन्दन में प्रकाशित हो, और जिसमें उसके कार्य-क्षेत्र-विशेष से सम्बद्ध गंभीर शोध-निबंध अथवा लेखादि संकलित हों। हिंदी में कलात्मक मुद्रण का प्रारम्भ 'सरस्वती' पत्रिका से ही माना जा सकता है जिसके सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी स्वयं थे और जो प्रयाग के इंडियन प्रेस से प्रकाशित होती थी। 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' का मुद्रण भी उसी प्रेस में हुआ था, यद्यपि काशी भी उन दिनों श्रेष्ठ मुद्रण का एक केंद्र माना जाता था। शिवजी उन दिनों काशी में ही रहते थे और 'जागरण' का सम्पादन करते थे। यह 1932 की बात है। 'जागरण' के दूसरे ही अंक (22 फरवरी, 1932) के अपने सम्पादकीय में शिवजी ने पहले-पहल यह प्रस्ताव किया था कि आगामी वर्ष द्विवेदी जी की 67 वीं जयंती के अवसर पर 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से उन्हें एक सर्वांग सुन्दर स्मृति-ग्रन्थ भी अर्पित किया जाय।' सभा ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकृत किया और इसकी तैयारी जोर-शोर से शुरू हो गयी, क्योंकि समय कम था। इसकी पूरी कहानी शिवजी के द्विवेदी जी पर लिखे दो संस्मरणों में है, जो 'समग्र' के खंड-2 में प्रकाशित हैं। वहां उन्होंने लिखा है- 'वह कई महीनों के लगातार परिश्रम की लम्बी कहानी है। मैं महीनों इंडियन प्रेस में बैठ कर, अभिनन्दन ग्रन्थ तैयार करता रहा...।' यद्यपि ग्रन्थ के लिए लेखों को मंगाने, उनकी पांडुलिपियों की प्रेस कॉपी बनाने, काशी से बार-बार प्रयाग आते-जाते, वहां प्रेस की अतिथिशाला में रहकर उसका कई-कई बार प्रूफ फाइनल करने का आदि से अंत तक का सारा काम शिवजी ने किया, और इसका प्रमाण एक छोटे से हाथ-सिले नोटबुक में है, जिसमें इस दौरान के सम्पादन-सम्बन्धी सारे विवरण शिवजी की लिखावट में दर्ज हैं।

इसके पृष्ठों के चित्र 'समग्र' (3) में छपे हैं। यदि यह नोटबुक विदेश में होती तो केवल इसकी कीमत लाख रुपये से कम नहीं होती। 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' में सम्पादक के रूप में सभा के अधिकारियों - श्यामसुंदर दास और राय कृष्णदास का नाम तो छपा लेकिन शिवजी के योगदान के प्रसंग में केवल भूमिका के अंत में सभा के सभापति, राम नारायण मिश्र की ये पंक्तियाँ मिलती हैं - 'श्री शिवपूजन सहाय जी ने जो बीज बोया, उसे पल्लवित करने में उनका बहुत बड़ा हाथ रहा

है। लेखों के संपादन में उन्होंने पूरी सहायता दी है, और इस थोड़े समय के अन्दर ही जहाँ तक बन पड़ा है, उन्होंने प्रूफ भी बड़ी सतर्कता और सतत परिश्रम से देखा है।' और आपको आश्चर्य होगा,

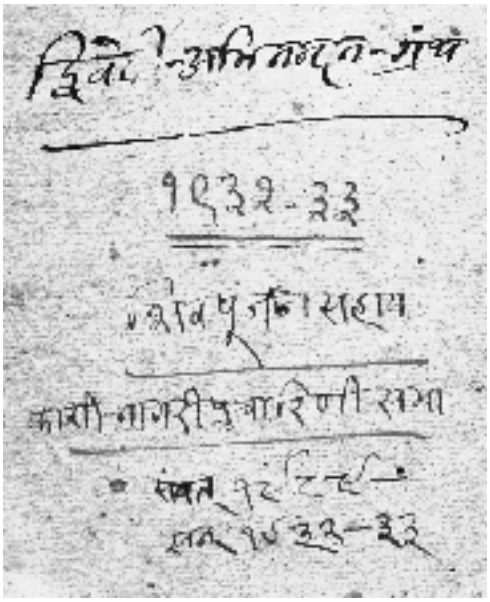

शिवपूजन सहाय जी की डायरी में द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रंथ का पृष्ठ

हाल में एन.बी.टी. से प्रकाशित इस ग्रन्थ के पुनर्संस्करण में तो यह पूरा पृष्ठ ही गायब है, जिसकी ओर मैंने, लखनऊ हिंदी संस्थान में हुए इसके लोकार्पण समारोह में अपने अध्यक्षीय भाषण में ध्यान भी दिलाया था। शायद यही कारण है कि ग्रन्थ के वास्तविक सम्पादक के रूप में शिवजी का नाम भले ही ग्रन्थ में नहीं छपा हो, और इसीलिए यह जानकारी भी आज ग्रन्थ को देखने पर नहीं मिलती, पर आज साहित्य-जगत में लोग उपर्युक्त नामों से अधिक शिवपूजन सहाय के नाम को ही स्मरण कर रहे हैं, और उन्हीं का सर्वत्र अभिनन्दन हो रहा है। शिवजी के जीवन में ऐसा बहुत हुआ। उनके द्वारा संपादित और भी कई अभिनन्दन ग्रन्थ हैं जिनकी यहाँ चर्चा की जा सकती है, जैसे- पुस्तक-भंडार का 'जयंती-स्मारक-ग्रन्थ' (1942), 'राजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रन्थ' (1950), 'अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रन्थ' (1960), 'बिहार की महिलाएं' (राजेंद्र अभिनन्दन ग्रन्थ, 1962), आदि। इसके अलावा भी जिन अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का सम्पादन शिवजी ने किया, जैसे 'रंगभूमि', राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्मकथा' और उनकी लगभग सभी किताबें, और सैकड़ों की संख्या में हिंदी के नामचीन लेखकों की अनेक किताबें - जिनमें प्रसाद, निराला, दिनकर, बेनीपुरी, भवानीदयाल सन्यासी, आदि जैसे न जाने कितने नाम हैं, उनकी चर्चा नहीं होती, क्योंकि हम लेखकों का सम्मान तो करते हैं, पर उनको भूल जातें हैं जिन्होंने वास्तव में लेखकों को बड़ा लेखक बनाया। लेकिन आप यह देखिये कि सम्पादन के क्षेत्र में पूरे हिंदी संसार में यदि द्विवेदी जी के बाद कोई एक नाम लिया जा सकता है तो वह निश्चय ही शिवपूजन सहाय का नाम है।

कलानाथ - आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपने कई लेखों में राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की दशा आदि पर चिंतन मनन किया था। आज हिंदी प्रदेशों में हिंदी की जो दशा है या राष्ट्रभाषा हिंदी की जो दशा है या सरकार की ओर से इस दिशा में जो कदम उठाए जा रहे हैं उन पर आप क्या सोचते हैं ?

मंगलमूर्त्ति - शिवपूजन सहाय के समग्र साहित्य को पढ़ने पर उसकी रीढ़ की हड्डी के रूप में उनकी हिंदी सेवा-भावना ही दिखाई देगी। उनका एक-एक शब्द हिंदी के निर्माण और विकास को ही समर्पित है- चाहे उनका रचनात्मक कथा-साहित्य हो, निबंध-साहित्य हो, संस्मरण-साहित्य हो, सम्पादकीय लेख हों, भाषण हों, भूमिकाएं हों, या साहित्यिक पत्र ही हों- सब में आपको हिंदी की ही रागिनी बजती सुनाई देगी। राष्ट्रभाषा और उर्दू के प्रश्नपर विशेष रूप से उनका ध्यान रहा है, और पूरे हिंदी-संसार में हिंदी राष्ट्रभाषा का यह प्रश्न पूरी बीसवीं सदी का सबसे बड़ा भाषा-प्रश्न रहा है। यह एक ऐसा विषय है जिसमें सबसे बड़ा विरोधक तत्त्व स्वयं सरकार रही है। स्वतंत्रता पूर्व अंग्रेजी सरकार, और एक हद तक कांग्रेस भी, जो बाद में सत्ता-लोभ में हिंदी का हित-हनन करती रही है। कांग्रेस ने अंग्रेजों से ही सीखी 'बांटो और लूटो' की नीति हिंदी के विरुद्ध भी अपनाई। शिवजी ने खास तौर से 1950 के बाद लिखी अपनी डायरी और टिप्पणियों में इसका कड़ा विरोध किया है। मैंने इधर हाल में अपने एक प्रकाशित लेख 'राहुल सांकृत्यायन और 'हिंदी - उर्दू - हिन्दुस्तानी' का सवाल' में इसकी कुछ विस्तार से चर्चा की है। राहुलजी का विरोध कुछ और कठोर था।

मैं समझता हूँ, सरकार को खुलकर हिंदी को अपना समर्थन देना चाहिए, अन्य भाषाओं को संपोषण देते हुए भी। देश अब इसके लिए तैयार है। हिंदी का प्रसार चतुर्दिक हो रहा है- भारत में और विश्व में भी। सरकार सत्ता-लोभ में बराबर ढुलमुल रही है। उसको दृढ़ निर्णय लेना चाहिए जैसा अभी की सरकार ने मुस्लिम महिलाओं के लिए या कश्मीर के हित में लिया है। आवश्यकता दृढ़ता की है। जनता मजबूत कदम पसंद करती है। हिंदी को विशेष और त्वरित संपोषण देना चाहिए। लेकिन हिंदी-भाषियों को भी हिंदी के हित में एक-जुट होना चाहिए। यहाँ वाम-पंथ और दक्षिण पंथ का झगड़ा खतम होना चाहिए जो सबसे ज्यादा साहित्य में दिखाई देता है। आम बहुसंख्यक जनता को बाएं-दायें से कुछ लेना-देना नहीं है- उसको बस सीधा गुरबत और बदहाली से निजात चाहिए। हिंदी भाषा में भी यही राष्ट्रीय समन्वय-भावना होनी चाहिए, और हिंदी साहित्य के सभी लेखकों को कम-से-कम भाषा के इस प्रश्न पर एकजुटता दिखानी चाहिए।

कलानाथ - आचार्य शिवपूजन सहाय के जीवन के उत्तरार्ध में उनका संबंध देश के लगभग सभी श्रेष्ठ साहित्यकारों से थी। उनसे उनका निरंतर पत्राचार भी हुआ करता था। कुछ तो छपे भी हैं। उनकी सर्वाधिक निकटता किन-साहित्यकारों से थी ?

मंगलमूर्त्ति - आचार्य शिवपूजन सहाय को उनके समानधर्मा साहित्यकार 'अजातशत्रु' कहा करते थे। उनके समय में सभी साहित्यकार उनका अत्यधिक सम्मान करते थे जो मैंने उनके बराबर साथ रहते हुए देखा था, और जो उन पत्रों में और स्पष्टता से व्यक्त है जो 'समग्र' में प्रकाशित हैं। उनमें

श्रीधर पाठक से लेकर अज्ञेय तक के हिंदी के सभी श्रेष्ठ साहित्यकारों के पत्र प्रकाशित हैं, जो शिवजी से उनकी आत्मीय निकटता के प्रमाण हैं। उनके सर्वाधिक अन्तरंग सम्बन्ध प्रेमचंद, निराला और प्रसाद के साथ रहे। 'उग्र' से उनकी अंतरंगता दोनों के बीच हुए पत्राचार से उजागर होती है। सौभाग्य से 'उग्र' ने शिवजी के सभी पत्र 'फाइल प्रोफाइल' में प्रकाशित कर दिए थे, और अब यह सारा परस्पर पत्राचार 'समग्र' में उपलब्ध है। जिससे उनके बीच की आत्मीयता की स्पष्ट झलक मिलती है। उसी प्रकार काशी के प्राय: सभी साहित्यकारों से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध थे जो उन लोगों के संस्मरणों में अंकित हैं। साहित्य चरित्र और आचरण में कैसे परिलक्षित होता है, और कैसे वह आपसी संबंधों में एक अप्रतिम सौहार्द के रूप में प्रच्छन्न अनुभूत होता है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव करने का मेरा सौभाग्य रहा। मेरे द्वारा संपादित उनके आत्म-संस्मरणों की पुस्तक 'मेरा जीवन' में, जो 'समग्र' के दूसरे खंड में प्रकाशित है, यह साहित्यिक निर्मल प्रेम-भाव सहज, स्पष्ट दिखाई देता है।

कलानाथ - अलग-अलग कारणों से शिव जी को एक स्थान से दूसरे स्थान, जगह बदलना पड़ रहा था। कहा जाता है कि आचार्य शिवपूजन सहाय जी का जीवन अर्थाभाव में ही बीता। राजेंद्र कॉलेज से प्राध्यापक के रूप में जुड़ने के बाद उनकी इस अवस्था में कुछ सुधार हुआ। इस संबंध में आप कुछ कहना चाहेंगे।

मंगलमूर्त्ति - अर्थाभाव या सभी तरह का अभाव तो शिवजी के जीवन का आजीवन सबसे अभिन्न सहचर रहा। सबसे पहले तो अर्थाभाव के कारण ही पिता की मृत्यु के बाद शिवजी मैट्रिक के बाद आगे नहीं पढ़ सके, और बनारस कचहरी में नकलनवीस की नौकरी से आजीविका का प्रारम्भ किया। फिर पत्रकारिता के क्षेत्र में आने पर तो अर्थाभाव का यह संकट स्थायी रूप से उनके जीवन का अंग बना रहा। स्कूल की सरकारी नौकरी 1920 में छोड़ने के बाद फिर कायदे की नौकरी 1940 में राजेन्द्र कॉलेज में ही मिली। बीच के 20 साल का जीवन तो सदा अर्थभाव में ही बीता। राजेन्द्र कॉलेज में आने के बाद भी मुक्तहस्त दानी होने के कारण पूरे महीने आर्थिक अभाव में रहने की आदत बन गयी थी। उसी समय अपने बचपन में मुझे याद है वह आर्थिक तंगी पटना आने पर 1950 में 500 की तनखाह थी जो 1959 में लगभग 900 हुई थी। मुझे सब याद है इसलिए कि 1952 में मैं कॉलेज में चला गया था। बाबूजी को पहली तारीख को तनखाह मिलती थी और उसी दिन न जाने, मेरे भी अनजाने, कितने लोग उनके सामने हाथ पसारे चले आते थे। यह सब कुछ बाबूजी की डायरी में दर्ज है। लेकिन सबसे कठिन दिन तब थे जब 1959 में बाबूजी को सेवा-शर्तों के विपरीत बिहार सरकार ने उन्हें रिटायर कर दिया, जिस कारण वे पेंशन से पूरी तरह वंचित हो गए। हम दोनों भाई भी किसी नौकरी में तब तक नहीं लगे थे। वे अर्थाभाव के सबसे घनघोर संकट वाले दिन थे। बाबूजी को दवा और फल-दूध सबका कष्ट होने लगा था। उनके तत्कालीन प्रकाशक भी जो उनकी पुस्तकों से साल में हजारों-हजार कमा रहे थे- उनको उनकी पुस्तकों की रॉयल्टी का शतांश भी नहीं देते थे। हमारे संग्रह में उन दिनों की रॉयल्टी का सारा हिसाब लिखा पड़ा है, और रॉयल्टी का सारा तगादा मुझे ही करना पड़ता था। लेकिन वह सारी कहानी बाबूजी की उन दिनों की डायरी में दर्ज है, और चूंकि घर का सारा बोझ मेरे सर पर रहता था, इसलिए उस दुर्दांत अर्थाभाव की कहानी के दंश का दाग मेरी स्मृति में अंकित है। हिंदी का

सबसे अधिक अहित अत्यधिक अर्थ-लोलुप हिंदी के प्रकाशकों ने ही किया है, और केवल शिवपूजन सहाय के साथ प्रकाशकों द्वारा जो घनघोर शोषण हुआ उसकी कहानी ही अगर लिखी जाय तो वह हिंदी की सबसे करुण और कलुषित कथा होगी।

कलानाथ - प्रथम राष्ट्रपति डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद जी ने शिवपूजन सहाय को 'तपःपूत साहित्यकार' की संज्ञा दी थी। उन्होंने कहा है कि - 'मूक हिन्दी सेवा ही व्रत था आचार्य शिवजी का।' इस संबंध में कुछ कहना चाहेंगे।

मंगलमूर्त्ति - इसमें 'मूक हिंदी सेवा' सबसे अभिव्यंजक पद है। शिवपूजन सहाय ने सैकड़ों बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे लेखकों- जिनमें प्रेमचंद से लेकर सांवलिया बिहारी लाल वर्मा तक की अनेक पुस्तकों के हजारों पृष्ठों की पांडुलिपियों का जो संशोधन किया- जिसमें राजेंद्र बाबू की 'आत्मकथा' और उनकी लगभग सभी हिंदी पुस्तकें शामिल हैं- 'मूक हिंदी सेवा' से तात्पर्य वही है। 'सेवा' में एक छिपा हुआ व्यंजनार्थ यह भी है कि यह सारी सेवा निःस्वार्थ भाव से बिना किसी प्रतिदान के की गयी थी। आप सारे हिंदी साहित्य में एक भी नाम नहीं बता सकते जिसने अपनी अन्यतम सृजनात्मक प्रतिभा का बलिदान करके इतने सारे हिंदी लेखकों को साहित्य में यशस्वी बनाया हो। और उन्होंने हिंदी में एक-एक शब्द जो लिखा उसके पीछे जन-कल्याण और सेवा की ही भावना रही। राजेन्द्र बाबू ने अपनी श्रद्धांजलि में यही भाव व्यक्त किया है।

कलानाथ - शिवपूजन सहाय जी के निधन पर रामधारी सिंह दिनकर ने कहा था 'यदि शिवपूजन सहाय जी की सोने की प्रतिमा लगाई जाए और उस पर हीरे-मोती जड़े जाएँ तो भी साहित्य में उनके योगदान की भरपाई नहीं की जा सकती है।' आपकी दृष्टि में क्या हिंदी जगत उस अनमोल विरासत को सही ढंग से सहेजने में सक्षम रहा है?

मंगलमूर्त्ति - मैंने पहले जो भी कहा है उसमें आपके इस प्रश्न का उत्तर समाहित है। 'समग्र' के दसवें खंड के अंत में और उसके पिछले आवरण पर अनेक वरिष्ठ साहित्यकारों के श्रद्धांजलि वक्तव्य प्रकाशित हैं- जैसे कविवर 'बच्चन' का यह वक्तव्य- 'सहायजी अपने यशः काय से उस समय तक जीवित हैं, जबतक हिंदी जीवित है।' या फिर विष्णु प्रभाकरजी का यह वाक्य- 'आचार्य शिवजी सचमुच हिंदी साहित्य के स्वर्ण-स्तम्भ थे' अथवा शिवमंगल सिंह सुमन का यह कथन कि 'शिवपूजन जी हमारी पीढ़ी के पितामह थे'। लेकिन सर्वोत्तम श्रद्धांजलि तो फादर कामिल बुल्के ने दी थी जिसका अंतिम अनुच्छेद है- 'परलोक में पहुँचने पर मुझे अपनी जन्मभूमि के कम लोगों से मिलने की उत्सुकता रहेगी ... अपनी नयी मातृभूमि भारत के बहुत से अच्छे-अच्छे लोगों का मुझे परिचय प्राप्त हो सका है, और

दिनकरजी के साथ बेनीपुरीजी के यहाँ गोष्ठी में (1955)

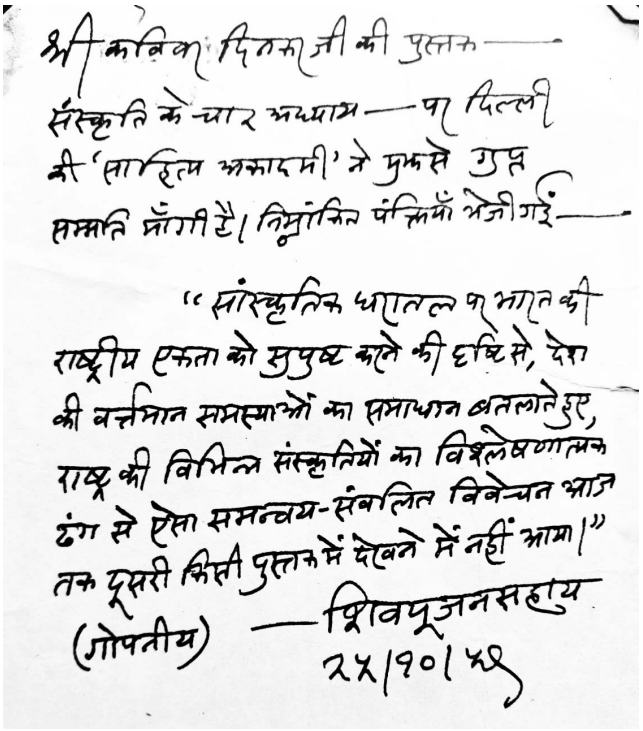
श्री कविवर दिनकर जी की पुस्तक —
संस्कृति के चार अध्याय — पर दिल्ली
की 'साहित्य अकादमी' ने मुझसे शुभ
सम्मति माँगी है। निम्नांकित पंक्तियाँ भेजी गईं —

"सांस्कृतिक धरातल पर भारत की
राष्ट्रीय एकता को सुपुष्ट करने की दृष्टि से, देश
की वर्त्तमान समस्याओं का समाधान बतलाते हुए,
राष्ट्र की विभिन्न संस्कृतियों का विश्लेषणात्मक
ढंग से ऐसा समन्वय-संबलित विवेचन आज
तक दूसरी किसी पुस्तक में देखने में नहीं आया।"
(गोपनीय) — शिवपूजनसहाय
२५/१०/५९

दिनकर जी की पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय के संबंध में आचार्य जी की टिप्पणी

उनमें एक शिवपूजनजी हैं। परलोक में पहुँच कर मुझे उनसे मिलकर अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव होगा और मैं उनके सामने नतमस्तक होकर उनको धन्यवाद भी दूंगा कि उनसे मैंने जान लिया था कि विनय का वास्तविक स्वरुप क्या है।' मैं समझता हूँ एक विदेशी बेल्जियम निवासी क्रिश्चियन संत की दी हुई इस श्रद्धांजलि से बढ़कर शिवजी के लिए दूसरी कोई सच्ची श्रद्धांजलि नहीं हो सकती।

जहाँ तक विरासत संभालने का प्रश्न है मैंने तो अपना पूरा जीवन उसी के लिए समर्पित कर दिया है, जो अब समाप्ति पर ही है। शिवपूजन सहाय ने हिंदी में साहित्य की विरासत को संभालने का काम जिस निष्ठा और श्रम से किया है, वैसा तो उन्हीं की पीढ़ी में कम लोगों ने किया। उसके बाद की पीढ़ी के विषय में मेरे लिए कुछ कहना तो अवांछनीय ही होगा शायद।

कलानाथ - निराला जी से आचार्य शिवपूजन सहाय का गहरा जुड़ाव था। निराला जी ने शिवपूजन सहाय जी को 'हिंदी-भूषण' विशेष से अलंकृत किया था। उनके निधन पर आचार्य सहाय की प्रतिक्रिया के विषय में कुछ बताएं ?

मंगलमूर्त्ति - शिवजी को सबसे अधिक मर्मान्तक आघात नलिन जी के निधन से हुआ था, जो निराला जी के निधन से एक ही महीने पहले हुआ था, और जिनकी अर्थी में शिवजी ने कन्धा

लगाया था। आप उनकी डायरी की इन पंक्तियों को पढ़िए। नलिन जी के निधन पर जब वे उनके घर गए- 'उनका शव देखकर करुणा का बंधन टूट गया। मैं अश्रु-प्रवाह न रोक सका। उनकी अर्थी में कन्धा लगा कर घर के चौपाल से सड़क तक ले आया।' और फिर एक ही महीने बाद जब निराला जी के निधन का संवाद मिला तो उन्होंने अपनी डायरी में लिखा- 'नलिन जी का घाव अभी हरा ही था, निरालाजी के निधन ने उसमें बड़ी क्रूरता से नख लगा दिया। कलेजे पर अंगार रख गया कोई!' शिवजी निराला के सबसे बड़े भक्त थे- दोनों में राम और शिव का प्रेम था, जो आजीवन रहा। निरालाजी से प्रयाग जाकर अपनी अंतिम भेंट की जो चर्चा शिवजी ने निराला के अपने संस्मरण में की है उसको पढने से भी लग जाता है कि दोनों का परस्पर प्रेम कैसा था- वह एक आदर्श साहित्यिक आत्मीयता थी, जो बस शिवजी और निरालाजी के बीच ही बनी रही।

कलानाथ - शिवपूजन सहाय जी का देहावसान 70 वर्ष की अवस्था में हुआ। हिंदी का सम्पूर्ण साहित्य जगत स्तब्ध रह गया। जीवन के अंतिम दिनों में उनके लेखन कार्य, उनकी सृजनात्मकता के बारे में आप कुछ बताएं?

मंगलमूर्त्ति - मैनें एक चीज अपने पिता में देखी। उन्होंने अपने जीवन का एक-एक क्षण भरपूर जिया- अभाव और आफियत से उसमें कभी कोई अंतर नहीं पड़ा। उनके धैर्य और मानसिक संतुलन का स्तर कितना उंचा था इसका एक उदाहरण मैंने तब देखा जब वर्षों से अपाहिज पड़े पोलियो-ग्रस्त अपने पहले पौत्र की मीठापुर में ही मृत्यु होने पर उन्होंने अपने हाथों से उसको नहला कर धीरे-धीरे उसके पूरे बदन में चन्दन लेपा और हमलोगों को गंगा-लाभ के लिए उसे एक खादी चादर में लपेट कर दिया। यह सब करते हुए भी उनका चेहरा बिलकुल शांत था, और आँखों में आंसू भी नहीं थे।

यह 1960-61 की बात है। उसके कुछ ही दिनों बाद 21 जनवरी 1963 को पटना जेनरल अस्पताल में उनका देहांत हुआ। लेकिन उसकी दुखद कहानी कभी बाद में। किसी साहित्यकार के मरने पर उतनी पत्र-पत्रिकाओं के स्मृति-विशेषांक शायद ही निकले हों। लोग कहते हैं, बनारस में प्रेमचंद की अंतिम यात्रा में मुश्किल से एक दर्जन लोग शामिल थे। लेकिन बाबूजी की अंतिम यात्रा में पूरे अशोक राजपथ में इंजिनीयरिंग कॉलेज से लगायत बांस घाट तक लगभग एक हजार लोग साथ गए थे। वैसा फिर केवल जयप्रकाशजी की अंतिम यात्रा में ही देखने को मिला।

सेवा निवृत्ति (सितम्बर, 1959) के बाद बाबूजी कुछ दिन लोहानीपुर में और फिर 1960 से भगवान रोड, मीठापुर में रहे। इस अवधि में उनका सारा समय अवैतनिक रूप से परिषद् जाकर- जहाँ से केवल रिक्शा-भाड़ा सरकार उनको देती थी, जिस सरकार ने उनको 'पद्मभूषण' उपाधि दी थी- वे रोज 'हिंदी साहित्य और बिहार' का संशोधन-संपादन-लेखन करते थे। इन्हीं दिनों उन्होंने अपने बहुत सारे संस्मरण लिखे जो 'बिम्ब:प्रतिबिम्ब' और 'वे दिन, वे लोग' शीर्षक से बाद में मेरे सम्पादन में प्रकाशित हुए। इन अंतिम दिनों में भी, घनघोर आर्थिक अभाव झेलते हुए भी वे अनवरत साहित्य-सृजन में लगे रहे। 'समग्र' में छपी उनकी पूरी डायरी में यह सारी कहानी पढ़ी जा सकती है।

कलानाथ - आचार्य शिवपूजन सहाय का देहावसान हुआ तब आप की अवस्था 24 वर्ष के आसपास की रही होगी। बाबूजी की सहज, सरल जीवन शैली और उनकी सृजन साधना से आप किस तरह प्रभावित हुए?

मंगलमूर्त्ति - मैं कह चुका हूँ कि मेरे जीवन के 25 साल और मेरे पिता के जीवन के अंतिम 25 साल साथ-साथ गुजरे, और इनमें 20 साल मेरे लिए मातृहीन रहते हुए बीते थे, जिस कारण मैं अपने पिता के साथ साये की तरह जुड़ा रहता था। यह सौभाग्य मेरे तीन भाई-बहनों को भी नहीं मिला था। बाबूजी का छपरा में एक 5-10 फीट का जेल की कोठारी से भी छोटा एक कमरा था जो हमारे मकान के अगले बैठक की दाएँ छोर पर था। उस कमरे में एक ही दरवाजा था और ऊपर बस एक रोशनदान था। उसी कमरे में जमीन पर चटाई बिछा कर बाबूजी पढ़ते- लिखते थे। दरवाजे के सामने दीवाल में एक रैक बना था उसी पर उनकी किताबें, कागज-पत्तर, आदि कुछ चीजें रखी होती थीं। एक तरफ एक ट्रंक था जिसमें उनके खादी के कुछ कपडे होते थे। खादी का प्रयोग वे असहयोग आन्दोलन के समय से ही करने लगे थे, और बाहर बराबर गांधी टोपी और बंडी जरूर पहनते थे। कमरे के दरवाजे के बाहर उनके 5-6 जोड़े जूते सजे रहते थे। लेकिन उनके कपड़ों में बराबर खस और मजमुए इत्र की खुशबू भरी रहती थी, धोबी के यहाँ से आने पर भी। वे पान खाते थे और जर्दा भी सबसे महंगा होता था, जिसकी सुगंध भी कमरे में रखे पीकदान से आती रहती थी। वह सारी मिली-जुली सुगंध अभी भी मेरी स्मृति में बनी है, जैसे वह उनके पूरे व्यक्तित्त्व की सुगंध हो। मैं तो उनके साथ ही सोता था, और वो खुशबू मुझको उनके बदन से भी मिलती थी। सबसे छोटा मातृहीन बच्चा होने से वे मुझको अपना सबसे ज्यादा प्यार देते थे। उनके कमरे में अन्दर केवल मुझको जाने की इजाजत थी। मैं वहां की हर चीज छू सकता था, पर इधर-उधर हरगिज नहीं कर सकता था। एक प्रकार से मैं उनके दैनंदिन जीवन का अभिन्न अंग था। इसलिए मैं उस जीवन को एक तरह से उनके साथ ही जीता था। उसकी सरलता, उनके हृदय में भरा हुआ साहित्यिक रस, उनके हृदय की कोमलता, उनकी गहरी सनातन धार्मिक आस्था, उनकी शिव-जैसी गंभीरता, - मैं इन सब से बराबर घिरा रहता था। मैं देखता था जब वे चटाई पर लेटे, एक पैर समेटे, पढ़ते होते थे- तब वे दीन-दुनिया से बिलकुल बेखबर होते थे। उनके रहन-सहन में सरलता और सहजता जैसे रसी-बसी रहती थीं। कहीं कोई आडम्बर नहीं। गाँव पर भी जाते तो गर्मी के दिनों में दिन-भर खाली बदन बस एक बनारसी या खादी का गमछा लपेटे रहते। वे पद्मभूषण की उपाधि मिलने पर राष्ट्रपति भवन में रिहर्सल के लिए बुलाये जाने पर टिकट के पैसे नहीं होने से नहीं गए, और यों भी उनकी उसमें कोई रूची नहीं थी। डायरी में उन्होंने लिखा- 'पद्मभूषण' की उपाधि गलग्रह हो गयी है। इसीलिए 'प्रतिष्ठा' को 'शूकरी विष्ठा' कहा है और 'गौरव को रौरव'। ये दोनों उपमाएं बावन तोले पाव रत्ती ठीक हैं।' जब पटना के कलक्टर उनको पटना के मीठापुर के किराए वाले मकान में पद्मभूषण का पदक और उपाधि-पत्र आदि देने आये उस समय भी वे नंगे बदन बाहर के बरामदे में केवल खादी का गमछा पहने चौकी पर लेटे कुछ लिख रहे थे। मेरे पिता शायद गाँधी के ही एक साहित्यिक संस्करण थे। और जो इस तरह के साहित्यिक संत के साथ बराबर अहर्निश जुड़ा रहा हो- जो सौभाग्य परमात्मा ने मुझको दिया- वह तो केवल प्रभावित ही नहीं होगा, बल्कि अभिन्न हो ही जायेगा।

कलानाथ - आचार्य शिवपूजन सहाय ने जीवन भर संघर्ष किया, हिन्दी की सेवा की किन्तु आप अंग्रेजी के प्राध्यापक हो गए। कुछ कहना चाहेंगे जिन परिस्थितियों में आपने अंग्रेजी शिक्षा लेने की ठानी।

मंगलमूर्त्ति - हिंदी की सेवा के लिए हिंदी का प्राध्यापक होना तो आवश्यक नहीं। मेरे पिता यद्यपि भिन्न परिस्थितियों में हिंदी के प्राध्यापक हुए, लेकिन उससे बहुत पहले से वे हिंदी की महनीय सेवा करते आ रहे थे। उनकी पढाई पारिवारिक आर्थिक कठिनाइयों के कारण मैट्रिक के बाद आगे नहीं बढ़ सकी। लेकिन जब छपरा कॉलेज में हिंदी प्राध्यापक पद पर नियुक्ति का प्रश्न उठा तब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आ. श्यामसुन्दर दास, रामचंद्र वर्मा आदि के अनुशंसा पत्र प्रस्तुत हुए थे जो 'समग्र' में प्रकाशित हैं। किन्तु, वह तो अपने में एक अलग कहानी है। उस समय भी हिंदी में शिवपूजन सहाय की योग्यता को डिग्री से नहीं नापा गया था। वे दस साल तक हिंदी साहित्य के प्राध्यापक रहे, फिर भी उनका दर्जा प्राध्यापक से बहुत ऊपर रहा। उन्होंने उस समय बी.ए. और आनर्स की परीक्षाओं के लिए जो प्रश्नपत्र बनाए थे वे भी 'समग्र' में प्रकाशित है। मैं केवल एक उदहारण देता हूँ। 1947 में हिंदी आनर्स की परीक्षा का एक प्रश्न था- 'रूप-लोभ और प्रेम में क्या अंतर है तथा इस अंतर की दृष्टि से जायसी को रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम-वर्णन में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है?' अथवा भाषा-विज्ञान का यह प्रश्न- 'हिंदी में प्रयुक्त अरबी तथा फारसी शब्दों के मुख्य-मुख्य परिवर्तनों का विवेचन कीजिये।' मैं तो समझता हूँ, आज के हिंदी प्राध्यापकों को भी वह प्रश्नावली देखनी चाहिए।

अब अपनी बात। मैं तो अंग्रेजी की ओर इसलिए गया कि मेरे अग्रज आनंदमूर्त्ति जी ने - जो आपके कॉलेज में ही अंग्रेजी के प्रोफेसर थे - बचपन से ही अंग्रेजी की राह पकड़ ली। और अनुजवत मैंने भी उनका अनुसरण किया। कारण यह भी था कि हिंदी पुस्तकों का तो घर में भंडार भरा था लेकिन विश्व साहित्य को जानने-समझने के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक था और मेरे अग्रज ने एक बड़ी आलमारी अंग्रेजी पुस्तकें स्कूल में पढ़ते हुए ही खरीद ली थीं, पर आज अपने अग्रज के चरणों का स्मरण करते हुए जिनके पदचिन्हों पर चल कर ही मैंने साहित्य की कुछ समझ पायी, मुझे लगता है यही उचित हुआ। जैसे मेरे पिता ने मेरे एम.ए.पास करने पर स्पष्ट सलाह दी कि मैं प्राध्यापक ही बनूँ, कुछ और नहीं। मैं मानता हूँ कि ये दोनों निर्णय मेरे लिए लाभकारी हुए। हिंदी का प्राध्यापक होता तो दोनों भाषाओं और उनके साहित्य का और विश्व-साहित्य को जानने-समझने का जो दुहरा लाभ हुआ उससे वंचित रह जाता।

कलानाथ - आपने 'शिवपूजनसहाय साहित्य समग्र' नाम से दस खंडों में उनके संपूर्ण साहित्य का संपादन किया है। इसमें उनकी सभी कृतियाँ आ गई हैं या अब भी कुछ शेष है ?

मंगलमूर्त्ति - 'समग्र' के सम्पादन के विषय में तो मैंने आपको कुछ बातें बताई हैं। 'समग्र' शब्द से तात्पर्य यह है कि शिवजी के साहित्य-लेखन में जो भी शाश्वत संग्रह की सामग्री है सब उसमें सम्मिलित कर ली गयी है, जिसमें उनके संग्रहालय में उपलब्ध अपूर्ण उपन्यास आदि सब कुछ है, और शोधोपयोगी भी बहुत कुछ है। उसके पांचवें खंड में एक सूची भी दी गयी है, अनेक पत्र-पत्रिकाओं में विकीर्ण उनके अनुपलब्ध लेखों की। शिवपूजन सहाय के साहित्य-लेखन से

सम्बद्ध और ज्ञात ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो उसमें नहीं है, अथवा जिसकी सूचना उसमें नहीं है। अब जो भी उनके अपने संग्रहालय में है वह छिटफुट पांडुलिपियों के रूप में है। हाँ, दूसरों के नाम उनके लिखे पत्रों में से 70-80 प्रतिशत पत्र सारी कोशिश के बावजूद नहीं मिले, जिनमें ऐसे कुछ पत्र-प्राप्तकर्त्ताओं के महत्त्वपूर्ण नाम हैं- राजा राधिकारमण (150), दुलारेलाल भार्गव (135), श्रीगोपाल नेवटिया (276), प्रवासीलाल वर्मा (121), भवानीदयाल सन्यासी (146), रामनाथ सुमन (92), रामलोचन शरण (58)- ये बस कुछ ही नाम हैं। शिवजी के संग्रह में जिनके जितने पत्र संगृहीत हैं, कोष्ठक की संख्याएं उन्हीं का संकेत करती हैं। यदि इन व्यक्तियों को शिवजी ने भी इतने ही पत्र लिखे होंगे तब भी इतनी संख्या लगभग 1000 होती है, जब कि शिवजी के कुल उपलब्ध और प्रकाशित पत्रों की संख्या 500 से अधिक नहीं है। 'साहित्य' के स्मृति-अंक में प्रकाशित शिवजी के पूरे पत्र-संग्रह की संख्या लगभग 7,500 है, और जो पत्र शिवजी ने स्वयं छांट दिए थे, उनकी संख्या का अनुमान करें तो वह संख्या 20,000 से भी ऊपर होगी। और इस सारी चयन-प्रक्रिया में शुरू से अंत तक मैं बाबूजी के साथ रहा था। ये सभी लगभग 7,500 पत्र अब नेहरु मेमोरियल लाइब्रेरी में संरक्षित हैं। और इनमें से चुने हुए लगभग 2000 पत्र ही समग्र के दो खण्डों में प्रकाशित हैं। मैं ऐसे कुछ और नाम भी बताता हूँ- जैसे पं. केदारनाथ शर्मा 'सारस्वत' (242), मोहनलाल महतो 'वियोगी' (135), रत्नशंकर प्रसाद (129), जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' (80), 'नटवर' (80), प्रफुल्ल चन्द्र ओझा 'मुक्त' (77), रामचन्द्र वर्मा (63), आदि, जिनसे प्राप्त पत्रों की संख्या कोष्ठक में दी हुई है, और जो अधिक महत्त्वपूर्ण नाम हैं, और ऐसे सुज्ञात नाम भी कम-से-कम 20 और होंगे जिनके पत्रों की संख्या 50 के आस-पास है। लेकिन उनके परिवार-जन से ऐसे पत्र भी, या उनके चतुर्थांश भी मिल सकते तो शिवजी के कम-से-कम 1000 पत्र और प्रकाशित हो सकते थे, जिनमें बहुत महत्त्वपूर्ण सूचनाएं होंगी। मैंने बहुत कोशिश भी की, बहुत पत्राचार किया, वंशजों से ढूंढ-ढूंढ कर मिला, लेकिन कोई सफलता नहीं मिली, और अब तो मेरे चिराग का तेल भी खतम होने वाला है।

शिवपूजन सहाय जन्म-शती (1893-1993) के अवसर पर जारी डाक टिकट

''राम कृपा के बिना मेरे सामान तुच्छ व्यक्ति का इतना अधिक गुणगान कैसे हो सकता।''

शिवपूजन सहाय-लिखित अंतिम व्यक्ति।

•

डॉ. मंगलमूर्त्ति, एच.एच.-302, सेलेब्रेटी गार्डेन, सुशांत गोल्फ सीटी अनसल,
के.पी. आई. लखनऊ-226030, मो. : 7752922938, ई-मेल : bsmmurty@gmail.com

✧ ✧ ✧

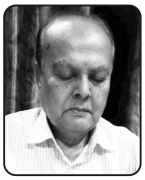

सार्वभौम प्रतिभा के शुभ्ररूप : आचार्य शिवपूजन सहाय

डॉ. रामसिंहासन सिंह

निसंदेह आचार्य शिवपूजन सहाय ने मौलिक विचारक साहित्य - मर्मज्ञ, सुधी चिन्तक के रूप में अपनी पहचान अलग बनाई है। हितैषी, शुभैषी, सहयोगी संरक्षक आदि रूपों में उनकी ख्याति है। प्रबुद्ध अध्येता के रूप में भी उन्होंने अपने को प्रतिष्ठित किया हैं, जिनमें सरसता, सरलता, बौद्धिकता, विनोद प्रियता, गुरूता, ममता आदि गुणों का समाहार हुआ है। जीवन के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में वे एक शैली अभिव्यक्त करते हैं-जिनमें संतुलन सामजस्य, सम्यक भाव बोध, संयम शब्दावली, परिमार्जित भाषा एवं पांडित्य झलकता है। दर्शन की सूक्ष्मता और तर्कशीलता उनकी साहित्यिक उपलब्धि है। धर्म और कर्म को पर्याय समझने वाले ये मानवतावादी जीवन दृष्टि के कायल थे।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी गंभीर चिन्तक, सरस-सरल सादगी विनोदी व्यक्तित्व से युक्त आचार्य शिवपूजन सहाय अपने पाठकों एवं श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने की अद्‌भुत क्षमता, योग्यता एवं दक्षता रखते थे। उनका प्रेरक एवं प्रतिभाशाली चुम्बकीय व्यक्तित्व बरबस ही लोगों को आकृष्ट करता था। साहित्य स्रष्टा के साथ साथ वे साहित्यनिर्मिति के अनुभवी प्रेरक, सहृदय कवि एवं साहित्य-सर्जना के प्रेरणा स्रोत थे। उनकी काव्य-मर्मज्ञता से प्रभावित एंव प्रेरित होकर अनेक साहित्यकारों में काव्य-सर्जना की भावना जाग्रत होती थी। निः संदेह ही उनमें सूर्योदयी संकल्पों के रचनाकार दीपशिखावाही कवि की संज्ञा की प्रवणता, कला की उत्कृष्ठता, गहन चिंतन क्षमता, जीवनानुभूति की संश्लिष्टता, वैचारिक गांभीर्य, मानवीय मूल्यों की स्थापना तथा जीवनादर्शो के प्रति अटूट आस्था, विश्वास एवं निष्ठा का भाव परिलक्षित होता है। उनकी विद्वता, सहृदता और सौम्य प्रकृति ने अनेक लोगों को आकर्षित किया है। इन्होंने हिन्दी भाषा एवं साहित्य की उन्नति और उसके प्रसार-प्रचार में अपने जीवन को समर्पित कर दिया था। आचार्य शिवपूजन सहाय ने 1939 से 1949 तक राजेन्द्र कॉलेज, छपरा में प्राध्यापक रूप में अपनी सेवा अर्पित की। 'बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन' तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् की स्थापना में आचार्य जी का योगदान अमूल्य रहा है।

आचार्य शिवपूजन सहाय के हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं के अलावा हिन्दी पत्रकारिता में योगदान उल्लेखनीय है। मैं समझता हूँ कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के बाद आचार्य शिवपूजन सहाय हिन्दी के सर्वाधिक प्रतिष्ठित सम्पादक साहित्यकार थे। इन्होंने मारवाड़ी सुधार, मतवाला माधुरी, गंगा, जागरण, आदर्श, उपन्यास तंरग, समन्वय, बालक, मौजी, हिमालय, गोलमाल और साहित्य आदि पत्र-पत्रिकाओं का सफल सम्पादन किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से निकलने वाली त्रैमासिक शोध पत्रिका 'साहित्य' के सम्पादक के रूप में इन्होंने अत्यन्त श्लाघानीय कार्य किया। आचार्य शिवपूजन सहाय शुद्ध टकसाली हिन्दी लिखने वाले हिन्दी के प्रथम लेखक थे। इन्होंने आम जीवन की भाषा को साहित्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हुए भी उसे पांडित्यपूर्ण शैली से अलग रखा। 'देहाती दुनिया' हिन्दी का ऐसा उपन्यास है, जिसमें प्रेमचन्द और रेणु के बीच भारतीय, ग्रामीण जीवन को देखने की दृष्टि दी है। सम्पादन के क्षेत्र में इनकी भूमिका अत्यन्त सराहनीय रही है। इन्होंने पत्रकारों की नई पीढ़ी को प्रशिक्षण दिया। भाषा-परिष्कार में भी इन्होंने द्विवेदी जी की तरह ही योगदान दिया। हलन्त के मनमाना प्रयोग पर इनकी व्यंग्यात्मक टिप्पणी इस प्रकार है- 'कौमा' और 'हाईफन' की तरह हिन्दी में 'हलन्त' भी अब पोंव फैला रहा है। गत्वर्ष, दृष्टिपात्, प्रतिष्ठित्, अधिकृत आदि का व्यवहार दिन-दिन बढ़ रहा है। 'हिन्दी में 'जगत किंचित' आदि शब्दों से 'हलन्त' हटा दिया गया है, इसलिए जान पड़ता है कि अपना पैतृक अधिकार छिन जाने से 'हलन्त' हड़बड़ा गया है और जिसको सामने 'नतमस्तक' पाता है, उसी पर चढ़ बैठता है।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य शिवपूजन सहाय जी 'हलन्त' तक के गलत प्रयोग को बिल्कुल ही सहन नहीं कर पाते थे। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा जैसे शुद्ध उद्भट पंडित भी शिवपूजन सहायक के भाषा संशोधन एवं परिमार्जन की बारीकियों की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं- ''आचार्य जी मेरी गलती कभी नहीं निकाली। उसके बदले हर बार सम्पादकीय देकर कहा-जरा देख लीजिएगा, और मैंने खूब सावधानी से देखा, क्योंकि मास्टर साहब (शिवजी) को इधर लिखने-पढ़ने में नेत्र रोग के कारण असुविधा होती थी, और यह कैसे होता कि उनकी रचना में मेरे रहते बिन्दु-विसर्ग तक की कोई छूट या गडबड़ी रह जाए। लेकिन मुझे यह अवसर अभी पाना ही है, जब कौमा या डैश, बिन्दु या विसर्ग की भी कोई छूट या गड़बड़ी मिले। हाल ही में प्रमादवश आचार्य जी की एक सम्पादकीय टिप्पणी की प्रेस कॉपी देखने के बदले मैंने कोश देखकर प्रुफ में एक संशोधन कर दिया। परिणाम यह हुआ कि मैने जब खुद ही विचार करना शुरू किया तो पाया कि संशोधन करके मैंने भूल की है मैं इसको 'साहित्य' में एक लेख लिखकर मान चुका हूँ''। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य शिव पूजन सहाय जी भाषा के प्रति काफी सजग थे। ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने प्रेमचन्द की रचनाओं, प्रसाद की 'कामायनी' का भी भाषा संशोधन किया था। वैसे तो शिवपूजन सहाय एक साहित्य सेवी पत्रकार थे, किन्तु उनकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ स्वतंत्रता आंदोलन की अग्नि में घी का काम करती थी।

एक बार एक टिप्पणी में उन्होंने भारतीयों पर अंग्रेजों के अत्याचार का पर्दाफाश करते हुए लिखा था- ''दिल्ली से कुछ ही दूर एक गाँव में डिप्टी कमिश्नर साहब बहादुर की आज्ञा से एक बुढ़िया का झोपड़ा फूँक डाला गया। बुरा क्या हुआ? अब तक जाने कितने डिप्टी कमिश्नरों ने

अनेक घर फूँक तापें हैं। कृपा करके भारत सरकार विलायत को सूचना दे दी कि जिन लोगों को इंग्लैण्ड में अधिक सर्दी मालूम हो वे दया करके भारत आवें। यहाँ फूंक तापनें लायक गरीबों के असंख्य झोपड़े है।'' इस प्रकार विशुद्ध साहित्यकार के मन में राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। आचार्य शिवपूजन सहाय की ग्राम्य चेतना पर जब हम दृष्टिपात करते हैं, तो यह पाते हैं कि उनकी यह चेतना काल्पनिक नहीं बल्कि वास्तविक थी। 'गाँवों का महत्व' शीर्षक लेख में गाँवों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए उन्होंने सही लिखा है- 'भारतवर्ष गाँवों का देश कहलाता है। गाँव ही हमारे राष्ट्र की रीढ़ है। वही हमारे अन्नदाता है। किसान और मजदूर वहीं रहते हैं।'' हमारे पशुधन का खजाना भी वहीं है। हमारा अन्न और दूध घी का भंडार तो वहाँ ही है, कपड़े बनाने के सभी समान भी हम वहीं से पाते हैं। सुख के सारे सामान हमें वहीं से मिलते हैं। शहरों में और बड़े-बड़े कारखानों से हमारे काम की जितनी चीजें तैयार होती हैं, सब के लिए कच्चा माल वहीं से आता है''। इन पंक्तियों में गाँवों की महता का प्रतिपादन उन्होंने बड़ी बारीकी से किया है।

एक ओर आज सम्पूर्ण विश्व को एक गाँव में परिवर्तित करने का दावा किया जा रहा है तो दूसरी ओर आज भी भारत के गाँवों की स्थिति अत्यन्त दयनीय बनी हुई है। इस संदर्भ में आचार्य जी लिखते हैं'' गाँवों में दीपावली के समय कितनों ही गरीबों की विवशता देखकर कलेजा दहल जाता है। जब पड़ोस के सुखी गृहस्थ के घर दीपमाला शोभित होती और पकवान-मीठाई का सौरभ उड़ने लगता है, तब बेचारे गरीब पड़ोसी किस तरह कोड़ी भर तेल से संझवाती दिखाकर मन मारे तन-हारे चुप सो रहते हैं-कोई भूखा रह जाता है। कोई अधपेट''। एक बात पर सहाय जी बहुत जोर देते हैं कि गाँव की दुर्दशा को समझने के लिए वहाँ जाकर कुछ दिनों तक रहने की आवश्यकता है। केवल धूम-फिर कर चले आने और भाषणबाजी करने से गाँव की दशा सुधरने वाली नहीं है। मेरी दृष्टि से उनकी यह सोच बिलकुल ठीक है। इनका एक लेख है- 'कवियों और लेखकों के गाँव इस लेख के माध्यम से इन्होंने प्रमाणित किया है कि गाँव का जैसा चित्रण कवियों और लेखकों ने किया है, वैसा गाँव वास्तव में नहीं है कवियों ने गाँव को स्वर्ग और किसान को देवता प्रमाणित कर दिया। लेकिन बात वैसी नहीं है। उनका मानना है कि वास्तविकता में ऐसी बातें नहीं हैं। ग्रामीणों के जीवन में अनेकों बुराईयों घर कर गयी हैं, जिन्हें सुधारना होगा।

साहित्यकार अपने समय का स्रष्टा और द्रष्टा दोनों होता है। समय की नब्ज पकड़कर चलना उसका दायित्व होता है। आचार्य शिवपूजन सहाय भी इसी श्रेणी में आते है। सहाय जी स्वयं शिक्षक थे, इसलिए शिक्षक की आर्थिक स्थिति से पूर्णत: अवगत थे। उन्होंने शिक्षको को भरपूर वेतन देने की बात कही है ताकि प्रतिभाशाली लोग शिक्षक का पेशा अपना सके, और जब तक प्रतिभाशाली लोग शिक्षक का पेशा नहीं अपनाएँगे, तबतक देश का कल्याण कतई संभव नहीं है। डॉ० राम विलास शर्मा का एक संस्मरण है- 'हिन्दी भूषण बाबू शिवपूजन सहाय।' अपनी विशिष्ट शैली में डॉ० शर्मा जी लिखते है- ''हिन्दी भूषण बाबू शिवपूजन सहाय के अक्षर कितने सुन्दर होते थे। जब वे छपरा के राजेन्द्र कॉलेज में अध्यापक थे, तब तो कभी कभी घसीट भी लिखते थे, यद्यपि अक्षर भी स्पष्ट होते थे, किन्तु जैसे-जैसे आँखों की ज्योति क्षीण होती गयी, इनके अक्षर अपनी रूपरेखा में और भी निखरते गये। गेहूँ की भरी बालों पर मोती की तरह चमकती हुई ओस की बूंदों

जैसे उनके अक्षर शब्द से भिन्न और अभिन्न, पत्र को अपने व्यक्तिगत सौदर्य से आलोकित करते हैं। निराला जी के अक्षरों की वक्रता उनमें नहीं हैं, किन्तु सादगी, स्पष्टता और दृढ़ता उनमें ज्यादा है। निराला जी के अंतिम दिनों में महाकवि के अक्षर शिथिल वृहदाकार हो गये थे। शिवपूजन बावू के अक्षरों में पहले ज्यादा कसाब आ गया था, ओस की बूंदो जैसे अक्षर ढले हुए फौलाद जैसे भी थे, साँचे में ढलने के बाद पत्र पर जैसे जम गये हों।'' इस उद्धरण में डॉ० राम विलास शर्मा जी ने बाबू शिवपूजन सहाय की लिखावट और उनके अक्षरों के बारे में जौ कहा है, वह उतना ही उन अक्षरों, शब्दों और वाक्यों में अंतर्निहित अर्थ के लिए भी सत्य है।

आचार्य शिवपूजन सहाय का रचनाकर्म उस समूचे युग को समझने के लिए अत्यंत उपयोगी है। यदि इसे ''एक पूरे साप्ताहिक इतिहास खण्ड की आत्मगाथा'' के रूप में प्रस्तावित किया गया है, तो इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है। 'समग्र' से पूर्व बिहार राष्ट्र भाषा परिषद' से शिवपूजन रचनावली (चार खण्ड) का प्रकाशन हो चुका है। 'शिवपूजन बाबू के जीवन काल में इसका पहला (1956) दूसरा (1957) तीसरा (1957) खण्ड प्रकाशित हुआ था। चौथा खंड 1959 में प्रकाशित हुआ। 'समग्र' के पहले पाँच खड़ो में इस पूर्व प्रकाशित सामग्री को उनकी 'अपूर्ण' अमुद्रित या पांडुलिपि के रूप में उनके संग्रह में पड़ी रह गयी सामग्री के साथ प्रकाशित किया गया है। खंड छह और खंड सात में उनकी डायरी प्रकाशित की गयी है। शेष तीन खंड पत्रों के हैं। खंड आठ और नौ में विभिन्न साहित्यिकों द्वारा शिवपूजन सहाय द्वारा पारिवारिक और साहित्यकों को लिखे पाँच सौ पत्र संकलित है। पत्रों के संकलन की दृष्टि से यह संभवत: हिन्दी का सबसे विशद संकलन है।

निसंदेह आचार्य शिवपूजन सहाय ने मौलिक विचारक साहित्य-मर्मज्ञ, सुधी चिन्तक के रूप में अपनी पहचान अलग बनाई है। हितैषी, शुभैषी, सहयोगी संरक्षक आदि रूपों में उनकी ख्याति है। प्रबुद्ध अध्येता के रूप में भी उन्होंने अपने को प्रतिष्ठित किया हैं, जिनमें सरसता, सरलता, बौद्धिकता, विनोद प्रियता, गुरूता, ममता आदि गुणों का समाहार हुआ है। जीवन के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में वे एक शैली अभिव्यक्त करते हैं-जिनमें संतुलन सामजस्य, सम्यक भाव बोध, संयम शब्दावली, परिमार्जित भाषा एवं पांडित्य झलकता है। दर्शन की सूक्ष्मता और तर्कशीलता उनकी साहित्यिक उपलब्धि है। धर्म और कर्म को पर्याय समझने वाले ये मानवतावादी जीवन दृष्टि के कायल थे।

डॉ. रामसिंहासन सिंह, पूर्व प्रधानाचार्य, चम्पाकुंज, दुर्गा नगरी, सुधा टॉकीज के निकट, मानपुर, गया, पो. : बुनियादगंज–823003, मो. : 9631332910

पद्मश्री बिहार विभूति आचार्य शिवपूजन सहाय

डॉ. प्रतिभा सहाय

'जन-हित चिंतक साहित्यकार के रूप में शिवपूजन बाबू ने गाँवों की आत्मा भारत के हृदय में प्रवेश कर न केवल उसकी यातना और वेदना का का अनुभव किया है बल्कि उसके कारणों की तटस्थ पड़ताल की है और हमें मानवीय विकास के वास्तविक पथ पर चलने के लिये प्रेरित भी किया।' इन्होंने साहित्य के क्षेत्र में आंचलिक औपन्यासिकता का सूत्रपात कर साहित्यकारों के लिये एक मार्गदर्शक प्रकाश स्तम्भ विनिर्मित किया। 'देहाती दुनिया' इनका सुप्रसिद्ध औपन्यासिक वैलक्षण्य से परिपूर्ण एक ऐसा प्रयोगात्मक उपन्यास है जिसमें एक लड़के भोलानाथ के जीवनवृत्त के ताने बाने के बीच कुल ग्यारह शीर्षकों में ग्यारह ऐसी कहानियाँ हैं जो स्वयं में औपन्यासिक वैलक्षण्य से परिपूर्ण हैं।

बिहार गौरव पद्मश्री आचार्य शिवपूजन सहाय जी अपने मित्रों के बीच अपने मानवीय और कल्याणकारी गुणों के कारण 'शिवजी' के नाम से प्रख्यात थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिन महार्घ आचार्यों ने हिन्दी भाषा और साहित्य को परिनिष्ठित और परिष्कृत किया उनमें आ० महावीर प्रसाद द्विवेदी, आ० रामचंद्र शुक्ल के साथ आ० शिवपूजन सहाय का नाम श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है। हिन्दी की अन्य विभूतियों की अपेक्षा हिन्दी साहित्य को इन्होंने अपनी अप्रतिम बहुमुखी प्रतिभा से जो स्तरीयता और गरिमा प्रदान की वह अन्यतम कहा जा सकता है। ये एक ऐसी विभूति थे जो, महाकवि जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' को शुद्ध करने, आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के हिन्दी साहित्य-इतिहास की पाण्डुलिपि का भी यथोचित परिष्कार करने और देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा जैसी पुस्तकों के परिष्कार एवं प्रकाशन में अपने परामर्श और योगदान देकर उनकी श्रद्धा के पात्र बने रहे। बड़े बड़े राष्ट्रीय और राज्यस्तरीय सम्मेलनों में इनका अभिभाषण बड़े चाव से सुना जाता था क्योंकि उसमें हिन्दी के समग्रतः विकास और समुन्नति के अनेक अभ्युपाय का वर्णन होता था। एक पत्रकार के रूप में 'माधुरी', मतवाला', 'हिमालय', 'बालक' प्रभृत्ति सम्प्रख्यात पत्रिकाओं के सम्पादन में अपनी सम्पादकीय दक्षता और कला वरेण्यता के

लिये साहित्यकारों के बीच अत्यंत लोकप्रिय हुए। यहाँ उनके सम्पादकीय लेख 'आधुनिक हिन्दी में क्या है कि कोई पढ़े' एवं आ० महावीर प्र० द्विवेदी जी की सरसठवीं जयंती' शीर्षक दो सम्पादकीय के उद्धरण द्रष्टव्य हैं- 'जबतक साहित्य स्रष्टाओं की स्थिति सन्तोषप्रद न होगी तबतक साहित्य गौरवमंडित ना होगा। जो लोग आज दौड़ कर हिन्दी पढ़ने नहीं आते, वे शायद कल भी नहीं आवेंगे। क्योंकि उनकी मनोवृत्ति तबतक नहीं बदलेगी जबतक देश की शासन प्रणाली और शिक्षाप्रणाली।'1' हिन्दी साहित्य के निर्माण में उन्होंने (आ०म०प्र० द्विवेदी) जितना शारीरिक और मानसिक परिश्रम किया है उतना शायद ही किसी एक व्यक्ति ने लगातार किया है। उन्होंने अपने शरीर और मस्तिष्क का एक एक कण हिन्दी साहित्य के यज्ञकुण्ड में होम दिया है----अपना तन मन धन सर्वस्व हिन्दी को सौंप दिया है----।'2

उपर्युक्त उद्धरणों से यह पता चलता है कि आ० शिवजी के हृदय में महार्घ साहित्यकारों के त्याग, तपस्या और हिन्दी के अभ्युत्थान के लिये किए गये अतुल्य योगदान के प्रति कितनी श्रद्धा और श्रेयता का भाव था। इन उद्धरणों से यह भी स्पष्ट है कि साहित्यकारों की आर्थिक स्थिति को सुधारने और उन्हें मर्यादा प्रदान करने की दिशा में तत्कालीन सरकार और शिक्षण संस्थानों के अधिनायकों के हृदय में जो उपेक्षा भाव था उससे वे अत्यंत व्यथित और पीड़ित थे। उनके हृदय में हिन्दी के निराला जैसे महान कवियों के प्रति जो सम्मान भाव था वह भी हमारी नई पीढ़ी के लिए प्रेरणाप्रद हो सकता है। साथ ही उन्होंने हिन्दी के साहित्यकारों को हिन्दी को सम्मृद्ध करने में अपना योगदान करने की जो प्रेरणा दी है वह भी आधुनिक हिन्दी सेवियों का मार्गदर्शन करने में सदैव प्रासंगिक बना रहेगा। वे अपने आलेखों में भूमंडलीकरण और उदारीकरण के इस अन्धायुग में मानवीय सवालों को गहरी संलग्नता के साथ उठाते हुए नई आर्थिक नीति के तहत विकास का ढिंढ़ोरा पीटने वाली व्यवस्था के समक्ष चुनौती उत्पन्न करते हैं।

'जन-हित चिंतक साहित्यकार के रूप में शिवपूजन बाबू ने गाँवों की आत्मा भारत के हृदय में प्रवेश कर न केवल उसकी यातना और वेदना का अनुभव किया है बल्कि उसके कारणों की तटस्थ पड़ताल की है और हमें मानवीय विकास के वास्तविक पथ पर चलने के लिये प्रेरित भी किया।'3 इन्होंने साहित्य के क्षेत्र में आंचलिक औपन्यासिकता का सूत्रपात कर साहित्यकारों के लिये एक मार्गदर्शक प्रकाश स्तम्भ विनिर्मित किया। 'देहाती दुनियाँ' इनका सुप्रसिद्ध औपन्यासिक वैलक्षण्य से परिपूर्ण एक ऐसा प्रयोगात्मक उपन्यास है जिसमें एक लड़के भोलानाथ के जीवनवृत्त के ताने बाने के बीच कुल ग्यारह शीर्षकों में ग्यारह ऐसी कहानियां हैं जो स्वयं में औपन्यासिक वैलक्षण्य से परिपूर्ण हैं। इन कहानियों में 'बुधिया का भाग' और 'नमक का बदला' शीर्षक कहानियों में देहाती दुनियाँ के जीते जागते यथार्थ को अपने शब्दों में उकेर कर आचार्य शिवपूजन सहाय जी पाठकों के समक्ष एक सजीव ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्र उपस्थित कर देते हैं। इन कहानियों में गाँव गँवई की ठेठ भाषा, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, नवीन उपमाओं के द्वारा इन्होंने इनमें

इतनी रसात्मकता और चित्रात्मकता भर दी है कि पाठक किसी भी कहानी को आद्योपांत पढ़े बिना नहीं रह सकता। पात्रों के चरित्र चित्रण में तो आचार्य जी ने कमाल ही कर दिया है। प्रत्येक पात्र अपनी परिस्थिति, परिवेश और संदर्भ के अनुसार जो आचरण करता है, वह सब चित्रवत पाठक के सामने आता जाता रहता है। 'बुधिया का भाग्य' नामक कहानी की नायिका बुधिया के रूपासक्ति के कारण बाबू साहेब रामटहल सिंह ने पहले तो उसे अपनी गौशाला के निकट एक मकान में रखा और वहाँ आना जाना शुरु किया। बाद में जब इसकी भर्त्सना शुरु हुई तो लोकापवाद के भय से बधिया की माँग में सिन्दूर भर दिया और उसे घर ले आए। अब बुधिया के जीवन में सास की फटकार तो थी पर पति की ओर से सभी प्रकार के सुख साधन भी मुहैया कराये गए। इस प्रसंग में बुधिया की परिस्थिति का जो चित्र अंकित किया गया है उसकी बानगी देखिए --- 'जो किसी दिन गोबर में से अनाज के दाने चुन चुन कर खा जाती थी, वह अब पेड़ा बरफी भी छील-छील कर खाने लगी। जिसका चुड़ैल का सा झोंटा एक दिन जुओं का अड्डा था उसका सिरदर्द अब गुल रोगन से भी दूर नहीं होता। जो कभी अच्छी तरह दातून भी नहीं करती थी वह अब दाँतों में सुगंधित मँजन लगाने लगी। जो पैसा भर गुड़ खाकर भी घंटों ओठ चाटती रह जाती थी वह अब आईने के सामने पलंग पर पड़ी-पड़ी अपने ओठों पर पान की ललाई निहारने लगी। जमाना एकबारगी ही पलट गया। कहाँ वह गली गली मारी-मारी फिरने वाली फूहड़ बुधिया और कहाँ यह छैल छिकनिया जमींदार की पर्दानशीन रखेली। धन्य है भगवान की लीला'। 4

यही बुधिया तीन पुत्रियों मी माता बनने के बाद बाबू साहेब की उपेक्षा से तंग आकर बाबूजी के चरित्र का थाना कचहरी जाकर पर्दाफाश करने की धमकी देते हुए कहती है- 'गाँव भर के सामने उसका पानी उतारूँगी। उसे इजलास पर चढ़ाऊँगी। हाकिम के सामने हाथ में गंगाजल, गाय की पूंछ और पीपर का पत्ता देकर हलफ उठवाऊँगी। जब भरी कचहरी में पगड़ी उतारेगी तब---------- मजा मालूम होगा।------जब थानेदार झींगा मछली की तरह रुपये गिनने लगेगा तब आंख खुलेगी।'5 यह उद्धरण बुधिया के तेवर, गाँव की प्रचलित भाषा में दी गयी धमकी और उस परिस्थिति में पड़ी स्त्री का कितना जीता जागता और सजीव चित्र उपस्थित करता है, यह शिवपूजन सहाय जी के गँवई परिवेश, भाषा और लोक रीति नीति आदि की विशद जानकारी और पैनी दृष्टि को दर्शाता है।

आगे जब बुधिया अपने हठ पर डटी रहकर अपनी बेटियों के साथ थाने की ओर निकल पडती है। रास्ते में काली मन्दिर मिलता है। वहाँ वह काली माई की दुहाई देकर उसके सर्वनाश का शाप जिन ठेठ शब्दों में देती है, वह भी देखने लायक है ----''ऐ काली माई---------उसके लिये हैजा भेजो। जिस दिन उसके मुँह में आग लगेगी उसी दिन कलेजे की कसक कढ़ेगी। दुहाई काली मैया की ।' 6

भाग्यवशात उसी रास्ते जाते एक संपन्न बनिये के वाग्जाल में फँसकर, अपने मामले को सुलझाने की आश्वस्ति पाकर अपनी बेटियों सहित बुधिया उसके साथ हो लेती है। गाँव पहुँच कर बनिया सोहावन मोदी उसे अपनी दुकान का कारबार सम्भालने में लगा देता है। एक स्त्री दुकानदार को देख दुकान की बिक्री बढ़ गई, दुकान खूब चल पड़ी। उसकी आमदनी अन्य बनियों से बढ़ गई, वह निश्चिंत होकर चिलम भरने लगा ।

इसमें तत्कालीन जमींदारों की मानसिकता और चरित्र के साथ-साथ उस स्त्री बुधिया के तीरिया चरित्र और बनते बिगड़ते भाग्य की चित्रवली अंकित की गई है जिससे इस कहानी में प्रयुक्त भाषा शैली, शब्द शिल्प, पात्रों के सहज स्वाभाविक सजीव चित्रण के वैशिष्टङ और कहानी कला की दक्षता का दिग्दर्शन होता है ।

'नमक का बदला' कहानी में मुन्शीजी और उनके बेटे के साथ ब्राह्मण विवाह की प्रथा आदि का चित्रण है। मुन्शी जी कहारों के कन्धे पर पालकी में अपने बेटे के साथ बैठे हैं। ठेठ जेठ की गरमी में मूसन तिवारी के भतीजे की शादी की बारात में जा रहे हैं। रास्ते में चलते समय जेठ की गर्मी का आलंकारिक और गाँव जवार के आम जीवन के प्रतीकों के माध्यम से जैसी भाषा में चित्र उपस्थित किया है वह सचमुच अद्वितीय है। देखिए- 'जेठ का महीना था। भूखे गरीब के पेट की तरह धरती जल रही थी। लू की लपट से ऐसी आंच निकलती थी मानो नवयुवती विधवा गरम सांस छोड़ रही हो। लम्बी जीभ निकाले कुत्ते हलफ हलफ कर हाँफते थे जैसे जाड़े में कोई दमा का पुराना रोगी।'7 ऐसी जेठ दुपहरिया में कहार सब घूरन सिंह से ताड़ी पिलाने के आग्रह के बहाने व्यंग्य विनोद करते हुए आगे पहुँचते हैं जहाँ एक घना छायादार वृक्ष मिलता है। वहाँ पालकी रखकर कहार विश्राम की मुद्रा में आते हैं। इस समय का चित्र देखिए --- 'हरसंकरी का बड़ा ही छतनार पेड़ था। घनी पाकड़ के साठव गलबहियाँ डालकर मानो बर और पीपर सुख छहियाँ लूट रहे थे। मालूम होता था चारो ओर लू के डर से भागकर दसो दिसा की छाया यहीं आ सिमटी है।'8 खेदू ने कम्बल बिछा दिया।---------- घूरन सिंह बोले- आजकल रास्ता चलने लायक दिन नहीं होता। बिना पेड़ रुख के तप्पे में पड़ने पर लू लग जाए तो अन्तकाल में तुलसी गंगाजल भी नसीब न हो। एक कहावत है -

'सावन साग अरु भादो दही,
क्वार करैला कातिक मही।
अगहन जीरा पूसे घना, माघे मिसरी फागुन चना।
चैत गुड़ बैसाखे तेल, जेठे पंथ असाढ़े बेल
इन बारह से बचे जो भाई ता घर वैद न सपनेहु जाई।'9

इसमें पेड़ की छाँव को जिस कल्पनाशीलता और अलंकार के साथ भावव्यंजक बनाया गया है वह उल्लेख्य है। साथ ही गाँव में प्रचलित कहावतों का भी दिग्दर्शन कराया गया है।

इसी पेड़ की छाँव में अपनी गुम हुई बिटिया का समाचार जानने के लिये कलकत्ते से अपने सम्बंधी द्वारा भेजी गयी चिठ्ठी को पढवाने के लिये पांच सात गाँव की चक्कर लगाकर थका मांदा नवाब नाम का बूढ़ा सुस्ता रहा था। उसकी दयनीय दशा से द्रवीभूत हो उसके आग्रह पर मुन्शी जी ने उसका पत्र पढ़कर सुनाया। इस अंतर्कथा में निरक्षरता के कारण गाँव के लोगों की विवशता, चिठ्ठी पढवाने के लिये दर-दर भटकना, मनीऑर्डर आने पर डाक बाबू के कहने पर बिना देखे अंगूठा लगाना आदि को दर्शाया गया है।

आगे बारात के गाँव पहुँचने पर बस्ती में व्याप्त गन्दगी, अव्यवस्था, के साथ साथ निर्धन और पितृविहीना वयस्क युवती के बालक के साथ बेमेल विवाह जैसी सामाजिक कुप्रथा को भी उजागर किया है। बारात में दूल्हे को देख गाँव की महिलाएं व्यंग्य कर कहती हैं- 'हाय रे ! ताड़ बराबर कनिया का वर यही है धीया का अभाग है कि इस उमर में वर भी मिला तो ऐसा कि अपने हाथ धोती भी न पहिर सके। अब तक बेचारी व्याही होती तो इतने बड़े लड़के की महतारी कहलाती। छि: छि: बाप जीता होता तो आज इतने पर कुएँ में ठढ़े गिर पड़ता। बिचारी पुरनियां महतारी क्या करे। पितिया ने बिना मोह माया के सूखे कुएँ में भठा दिया। जस जस यह जवान होगा तस तस वह बुढाएगी।'10

अंतत: बारात में कहा सुनी, मार पीट और बिना भोजन पानी के रहकर वापस आना, आदि का जीवन्त वर्णन है। इस कहानी की प्रासंगिकता मात्र इतनी है कि तत्कालीन गाँव की निरक्षरता, अस्वच्छता और बात-बात में मार पीट की नौबत आदि आ जाना इत्यादि के वातावरण को यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया जाय। इस कथा की विशिष्टता है कि इसमें गाँव गँवई की ठेठ भाषा, मुहावरे, लोकोक्तियों के साथ एक सिद्धहस्त शब्द शिल्पी और कथाकार के रूप में आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपने को सरलता पूर्वक प्रतिष्ठित किया।

उपर्युक्त देहाती दुनिया की इन कहानियों के अतिरिक्त आचार्य शिवजी की प्राय: पाठ्य पुस्तकों में आने वाली दो रचनाएँ भी अत्यंत लोकप्रिय रही हैं। 'कहानी का प्लॉट' कहानी तथा व्यंग्य प्रधान ललित निबंध 'मै हज्जाम हूँ' बहुचर्चित हैं। इन्होंने कहानी के क्षेत्र में भी अपने भाषा सामर्थ्य और शब्द शिल्प का जो अनूठा चित्र अंकित किया उसका भी विशिष्ट महत्व है। इन्होंने जिस ग्राम्य जीवन का यथार्थवादी चित्र अपनी रचनाओं में अंकित किया उससे इनकी ग्रामीण भाषा, लोकोक्ति, कहावत, मुहावरे और जीवन्त चरित्र नायक नायिकाओं के सजीव दर्शन होते हैं। साथ ही इनकी अपूर्व उपमाएँ, हास्य और व्यंग्य कथा के साथ इस प्रकार घुल मिल जाते हैं कि पूरा ग्राम समाज पाठक के मानस पटल पर सप्राण हो उठा हो। उन्होंने अपने समकालीन समय और मनुष्य को जिस गहरी मानवीय संलग्नता के साथ समझने और समझाने का प्रयास किया है, वह

उन्हें मानवता के सच्चे प्रहरी के रूप में स्थापित करता है।

साहित्य रचना के अतिरिक्त इन्होंने एक प्राधयापक के रूप में राजेन्द्र कॉलेज छपरा में दस वर्षों तक लगातार योगदान देकर हिन्दी विभाग की गरिमा को महिमा मंडित किया, वह कतई विस्मृत नहीं किया जा सकता।

उसी प्रकार इन्होंने बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद में जो अतुलनीय, अभूतपूर्व मनसा वाचा कर्मणा योगदान दिया वह इनके त्याग, तपस्या और आत्मोत्सर्ग की ऐसी कहानी है जो हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है।

इतिहासकार के रूप में इन्होंने बिहार के हिन्दी साहित्यकारों के इतिहास को दो खंडों में प्रकाशित किया वह बिहार के साहित्यकारों के लिये किंवा समस्त हिन्दी जगत के लिये एक अन्यतम अवदान है।

साहित्य जगत में उनके महार्घ योगदान और अप्रतिम प्रतिभा को समुचित प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिये भारत सरकार ने इन्हें 1960 ई. में पद्मश्री की सम्मानोपाधि से समलंकृत किया। बिहार की जनता ने इन्हें न केवल एक महार्घ साहित्य स्रष्टा और उन्नयन कर्ता के रूप में समाकृत किया वरन एक स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में इन्होंने सन 1920 ई. से स्वातंत्र्य आन्दोलन में भी जो निष्काम भावना से देश भक्ति और देशानुराग से प्रेरित होकर अपना योगदान दिया तथा महात्मा गाँधी के सिद्धांतों के अनुरूप अपने जीवन को सादगी और सेवा भावना से संवारने में जो एक चरित्र नायक की भूमिका अदा की, उसके लिये भी उन्हें सम्मान के साथ श्रद्धा सुमन अर्पित किया गया है। इनकी अनेकशः कृतियों और मानवीय गुणों के वैशिष्ट्य को ध्यान में रख कर पटना की जनता ने इनका जो हार्दिक नागरिक अभिनन्दन किया वह भी इनकी यशस्य लोकप्रियता को प्रमाणित करता है। आज सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य जगत के साथ सारा बिहार इन्हें बिहार की एक अप्रतिम साहित्यिक विभूति के रूप में स्मरण करता है।

संदर्भ -

1. शिवपूजन रचनावली-खण्ड-4, पृष्ठ-430-431, 2. वही पृष्ठ-406-407, 3. शिवपूजन रचनावली-खण्ड-2-वक्तव्य-डॉ. वीरेंद्र नारायण यादव, 4. शिवपूजन रचनावली-खंड-1, बुधिया, 5. वही-पृ-288, 6. वही-पृ-290, 7. वही-नामक का बदला-पृ-391, 8. वही-पृ-392, 9. वही-पृ-393, 10. वही-पृ-399

डॉ. प्रतिभा सहाय, आचार्य, हिन्दी विभाग, ए. एन. कॉलेज, पटना (बिहार)

महान शब्द-शिल्पी और भावितात्मा साहित्यर्षि थे आचार्य शिवपूजन सहाय

डॉ. अनिल सुलभ

प्रेमचंद्र, आचार्य जी से इतने प्रभावित थे कि, वे अपनी रचनाओं को प्रकाशित करने से पूर्व एक बार उनसे अवश्य दिखा लेना चाहते थे। वर्ष 1926 में शिवजी वाराणसी चले गए, जहाँ उन्हें महाकवि जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' एवं अन्य रचनाओं को देखने का अवसर मिला। कहा जाता है कि, शिवजी के आग्रह पर प्रसाद जी ने 'कामायनी' में अनेक परिवर्तन भी किए। 1931 में वे बिहार के सुल्तानगंज (अब झारखण्ड) आ गए, जहाँ उन्होंने 'गंगा' का संपादन किया। लगभग एक वर्ष के पश्चात वे पुनः बनारस लौट आए और 1932 में काशी से प्रकाशित पाक्षिक-पत्र 'जागरण' के संपादन का दायित्व स्वीकार किया। इनके पश्चात प्रेमचंद इसके संपादक हुए थे।

हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर देने वाले महान शब्द-शिल्पी आचार्य शिवपूजन सहाय एक ऐसे विनम्र साहित्यकार और संपादक थे, जिन्हें साहित्यर्षि कहा जाना अधिक उपयुक्त होगा। उनकी विनम्रता और सरलता, पूज्य राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की स्मृति कराती थी। उनके हृदय में साहित्य और साहित्यकारों के प्रति जो उदात्त भाव थे वे विरल और दुर्लभ हैं। यद्यपि उनके हाथ में संपादन की बहुत ही दृढ़ और कड़ी 'छेनी-हथौड़ी' थी, पर उन्होंने उससे किसी साहित्यकार के चित्र को बिगाड़ा नही, बल्कि उन्हें तराश कर साहित्य-देवी की वन्दनीय प्रतिमा बना दिया। उन्होंने जिस निष्ठा से हिन्दी की सेवा की, जितना लिखा, यदि अपने लिए लिखा होता तो, केवल उनके ही ग्रंथों से एक बड़ा ग्रंथागार भरा होता, पर उन्होंने अपनी लेखनी का बहुलांश, साहित्यकारों को, विशेषकर नवोदित साहित्यकारों को दिया, उनके अनगढ़ साहित्य को निखारने और चमकाने तथा उनपर 'भूमिका' या 'उपोदघात' लिखने में। वे उन कृतात्मा साहित्यकारों में थे, जिन्होंने जिस निष्ठा से माँ भारती की सेवा की उसी निष्ठा से भारता माता की स्वतंत्रता के महान-संग्राम में भी भाग लिया। उनकी महान सेवाओं और एकनिष्ठ साहित्य-साधना के लिए भारत सरकार ने 'पद्म-भूषण' के अलंकरण से उन्हें विभूषित किया। वे बिहार

राष्ट्र भाषा परिषद के संस्थापक-निदेशक और बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भी अध्यक्ष रहे, जहाँ राष्ट्रभाषा परिषद का कार्यालय आरंभ हुआ था। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 100 वर्ष के गौरवशाली इतिहास का वह स्वर्णयुग था जब शिवजी सम्मेलन परिसर में रहकर हिन्दी-सेवा किया करते थे। उन्होंने सम्मेलन भवन को देश भर के साहित्यकारों का तीर्थ-स्थल बना दिया था और उनके संपादन में प्रकाशित हो रही पत्रिका 'साहित्य', देश में 'शोध-साहित्य' की सबसे बड़ी पत्रिका मानी जाती थी। इस पत्रिका में छपना परम सौभाग्य का विषय माना जाता था। वे एक ऐसे मनीषी संपादक और शब्द-शोधक थे, जिन्हें कथा-सम्राट 'मुंशी प्रेमचंद्र के अनेक उपन्यासों और महाकवि जयशंकर प्रसाद के विश्व-विश्रुत महाकाव्य 'कामायनी' के परिशोधन का गौरव प्राप्त है। वे सच्चे अर्थों में भावितात्मा साहित्यर्षि थे!

शिवजी का जन्म शाहाबाद (अब बक्सर) जिले के इटाढ़ी प्रखंड अंतर्गत उनवास ग्राम में, 9 अगस्त 1893 को एक निम्न मध्यम-वर्गीय किंतु कुलीन सारस्वत कुल में हुआ था। उनके पूज्य पिता श्री वागीश्वरी दयाल, आरा के एक जमींदार के पटवारी थे। शिवजी की प्रारंभिक शिक्षा ग्रामस्थ पाठशाला में हुई। प्राथमिक-शाला की पढ़ाई पूरी करने के पश्चात उनका नामांकन आरा के बहु-प्रशंसित विद्यालय 'के जे ऐकेडमी' में करा दिया गया, जहाँ से उन्होंने 1913 में प्रवेशिका की परीक्षा उत्तीर्ण की। आर्थिक कारणों से इनकी उच्च-शिक्षा की अभिलाषा अधूरी रह गई। इसी शिक्षा और आयु में उन्हें वृति की खोज करनी पड़ी और वे वाराणसी की कचहरी में नकल-नवीस हो गए। किंतु भगवत-कृपा से उन्हें शीघ्र ही, उसी विद्यालय में शिक्षक का पद प्राप्त हो गया, जहाँ से उन्होंने प्रवेशिका की थी।

शिवजी में साहित्य के प्रति आग्रह किशोर-वय से ही था। अध्यापन का कार्य मिला तो साहित्याध्ययन और सृजन के लिए अवकाश भी मिला। और इस प्रकार उनके उस महान साहित्यिक-जीवन का आरंभ हुआ, जिसने उन्हें, हिन्दी साहित्य के क्षितिज पर कांतिमान नक्षत्र के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन दिनों आरा नगर, साहित्य और संस्कृति के उज्ज्वल केंद्र के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित कर रहा था। यहाँ की नागरी प्रचारिणी सभा, संपूर्ण देश में प्रतिष्ठा पा चुकी थी, जो देश की प्राचीन साहित्यिक संस्थाओं के रूप में आज भी जीवित है। पुण्य श्लोक शिवनंदन सहाय, पं. सकल नारायण शर्मा, पं. ईश्वरी प्रसाद शर्मा आदि स्तुत्य विद्वान इसी संस्था से प्राणापण से जुड़े हुए थे। शिवनंदन बाबू और पं सकल नारायण शर्मा बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष भी रह चुके थे। इन्हीं विद्वानों का साहचर्य पाकर शिवजी की साहित्यिक प्रतिभा और चेतना प्रस्फुटित और परिष्कृत हुई।

यह काल स्वतंत्रता के महान और निर्णायक संग्राम की पृष्ठभूमि तैयार कर रहा था। गांधी जी का अहिंसक चंपारण सत्याग्रह आरंभ हो चुका था। गांधी जी के आह्वान पर उन्होंने भी अपने विद्यालय के अध्यापक-पद का त्याग कर दिया और असहयोग आंदोलन में कूद पड़े।

गाँव-गाँव जाकर वे कांग्रेस के लिए प्रचार और जन-जागरण के कार्य करने लगे। कुछ साहित्यिक अग्रजों की प्रेरणा से वे वर्ष 1921 में कलकत्ता (अब कोलकाता) चले गए, जहाँ उन्होंने अनेक वर्षों तक, 'मारवाड़ी सुधार', 'मतवाला', 'समन्वय', 'गोलमाल', 'उपन्यास तरंग', 'मौजी', 'आदर्श' आदि साहित्यिक पत्रिकाओं का संपादन किया। इन पत्रिकाओं के संपादक के रूप में उन्हें पर्याप्त ख्याति मिली और सम्मान प्राप्त हुआ। वे देश के सुप्रतिष्ठ और श्रेष्ठ भाषाविद संपादक के रूप में सुख्यात हो चुके थे। इसी अवधि में उनकी बहुचर्चित कृति 'देहाती दुनिया' 'उपन्यास' और कथा-संग्रह 'विभूति' का प्रकाशन हो चुका था। 'देहाती दुनिया' को, जो ग्राम्य-सुषमा पर आंचलिकता के स्वर से युक्त उपन्यास है, प्रथम आँचलिक उपन्यास माना जाता है। 'विभूति' में संकलित उनकी कहानियाँ 'मुंडमाल' और 'कहानी का प्लॉट' साहित्य-संसार में लोकप्रियता का शिखर छू रही थी।

उनकी संपादन-कला और शब्द-शिल्प से प्रभावित होकर, 'माधुरी' के अनुरागी प्रकाशक दुलारे लाल भार्गव ने उन्हें आग्रह कर लखनऊ बुला लिया। अपने लखनऊ प्रवास में,

इधर पटना में 'पुस्तक भंडार' का कार्यालय आरंभ हो गया था तथा बेनीपुरी जी और दिनकर जी 'हिमालय' नाम से एक साहित्यिक पत्रिका निकालने का उद्योग कर रहे थे। उनकी इच्छा थी कि शिवजी ही उसका संपादन करें। इस इच्छा से उन्होंने राजेंद्र बाबू से आग्रह किया और उनके प्रयास से एक वर्ष का विशेष अवकाश लेकर शिवजी पटना आ गए और 'हिमालय' का संपादन किया, एक वर्ष के भीतर यह पत्रिका संपूर्ण हिन्दी पट्टी में विशेष स्थान बनाने में सफल हो गई। अवकाश एक वर्ष के लिए ही था, सो वे पुनः राजेंद्र कौलेज वापस हो गए।

उन्होंने अनेक साहित्यिक विभूतियों को अपना सौजन्य प्रदान किया। इसी अवधि में उन्होंने मुंशी प्रेमचंद्र के प्रसिद्ध उपन्यास 'रंगभूमि' समेत उनकी अनेक कहानियों का भाषा-परिशोधन भी किया। प्रेमचंद्र, आचार्य जी से इतने प्रभावित थे कि, वे अपनी रचनाओं को प्रकाशित करने से पूर्व एक बार उनसे अवश्य दिखा लेना चाहते थे। वर्ष 1926 में शिवजी वाराणसी चले गए, जहाँ उन्हें महाकवि जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' एवं अन्य रचनाओं को देखने का अवसर मिला। कहा जाता है कि, शिवजी के आग्रह पर प्रसाद जी ने 'कामायनी' में अनेक परिवर्तन भी किए। 1931 में वे बिहार के सुल्तानगंज (अब झारखण्ड) आ गए, जहाँ उन्होंने 'गंगा' का संपादन किया। लगभग एक वर्ष के पश्चात वे पुनः बनारस लौट आए और 1932 में काशी से प्रकाशित पाक्षिक-पत्र 'जागरण' के संपादन का दायित्व स्वीकार किया। इनके पश्चात प्रेमचंद्र इसके संपादक हुए थे।

लहेरिया सराय में स्थापित हुए अपने समय के चर्चित प्रकाशन संस्थान 'पुस्तक भंडार' के संस्थापक महोदय के आग्रह पर शिवजी बिहार के लहेरिया सराय आ गए। यह कोई 1934-35 का वर्ष था। यहाँ उन्होंने लगभग 6 वर्ष बिताए और इस अवधि में उन्होंने अनेक हिन्दी लेखकों और कवियों की पांडुलिपियों का उद्धार किया। छपरा के सुप्रसिद्ध विद्वान, जो बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री भी हुए, श्री उमानाथ जी के उद्योग से शिवजी राजेंद्र कौलेज में हिन्दी विभाग के प्राध्यापक के रूप में छपरा आ गए। तब यशस्वी कवि द्विज जी विभागाध्यक्ष थे। द्विज जी के पश्चात शिवजी हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हुए। यह भी एक रोचक प्रसंग है कि एक प्रवेशिका उत्तीर्ण व्यक्ति किसी महाविद्यालय का विभागाध्यक्ष था। यह अद्‌भुत उपलब्धि भी शिवजी के ही नाम है। लगभग दस वर्षों तक शिवजी ने शिक्षा-दान करते हुए, छपरा में हिन्दी को संवलित किया।

इधर पटना में 'पुस्तक भंडार' का कार्यालय आरंभ हो गया था तथा बेनीपुरी जी और दिनकर जी 'हिमालय' नाम से एक साहित्यिक पत्रिका निकालने का उद्योग कर रहे थे। उनकी इच्छा थी कि शिवजी ही उसका संपादन करें। इस इच्छा से उन्होंने राजेंद्र बाबू से आग्रह किया और उनके प्रयास से एक वर्ष का विशेष अवकाश लेकर शिवजी पटना आ गए और 'हिमालय' का संपादन किया, एक वर्ष के भीतर यह पत्रिका संपूर्ण हिन्दी पट्‌टी में विशेष स्थान बनाने में सफल हो गई। अवकाश एक वर्ष के लिए ही था, सो वे पुनः राजेंद्र कौलेज वापस हो गए।

1950 में शिवजी को राज्य सरकार ने पटना बुला लिया और वे नव-स्थापित 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के संस्थापक संचालक (तब इस पद को 'मंत्री' कहा जाता था) नियुक्त किए गए। परिषद का कार्यालय, कदमकुआं स्थित बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन भवन में आरंभ किया गया था। शिवजी सम्मेलन भवन में ही रहा करते थे। उन्होंने अपनी कर्मठता, विद्वता और घोर परिश्रम से परिषद को अप्रतिम ऊँचाई प्रदान की। अनेक दुर्लभ ग्रंथों का प्रकाशन कराया। परिषद द्वारा अनेक खंडों में प्रकाशित ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य और बिहार' एक महान उपलब्धि है, जिसके कारक और कारण भी शिवजी ही थे। उनका साहित्यिक अवदान इतिहास शेष है। उन्होंने राजेंद्र बाबू की आत्म-कथा, 'द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ', 'राजेंद्र अभिनंदन ग्रंथ', 'जयंती-स्मारक ग्रंथ' (पुस्तक भंडार की रजत-जयंती पर प्रकाशित), 'बिहार की महिलाएँ' आदि अत्यंत मूल्यवान और साहित्यिक महत्त्व के ग्रंथों का संपादन किया। 'विभूति' और 'देहाती दुनिया' के अतिरिक्त 'भीष्म', 'अर्जुन' (जीवन-चरित), 'दो घड़ी' (व्यंग्य), 'ग्राम सुधार' आदि उनकी प्रकाशित कृतियाँ तथा अनेक अप्रकाशित रचनाएँ, हिन्दी साहित्य की मूल्यवान धरोहर हैं । उनके विद्वान पुत्र प्रो मंगलमूर्ति ने चार भागों में उनके समग्र 'शिवपूजन रचनावली' का प्रकाशन कर एक अत्यंत कल्याणकारी और स्तुत्य कार्य किया है। तथापि शिवजी ने हिन्दी भाषा और साहित्य के उन्नयन में जितने महनीय कार्य किए हैं, उनका मूल्यांकन अभी भी शेष है। गद्य साहित्य में उनके अप्रतिम अवदान का सम्यक् मूल्याँकन होने पर वे हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'द्विवेदी-युग' की भाँति गद्य में 'शिवजी-युग' के रूप में प्रतिष्ठित किए जाएँगे।

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन में उनके कार्यों को मैं यों भी 'सम्मेलन का स्वर्ण-युग' मानता हूँ। वे वर्ष 1941 में, सम्मेलन के 17 वें अधिवेशन के सभापति चुने गए थे। उनके अध्यक्षीय भाषण, जो सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ग्रंथ 'बिहार की साहित्यिक प्रगति' में संकलित भी है, हिन्दी भाषा के समक्ष खड़ी बाधाओं की स्पष्ट पहचान कर, उसके निदान का मार्ग प्रशस्त करता है। जब वे राष्ट्रभाषा परिषद के मंत्री के रूप में, सम्मेलन परिसर में स्थाई रूप से निवास करने लगे, सम्मेलन को भी उनकी महान सेवाएँ प्राप्त हुईं। तत्कालीन अध्यक्ष रामवृक्ष बेनीपुरी जी के आग्रह पर उन्होंने सम्मेलन पत्रिका 'साहित्य' के संपादन का दायित्व स्वीकार किया। सम्मेलन के साहित्यमंत्री और समालोचना के शिखर-पुरुष आचार्य नलिन विलोचन शर्मा के संपादन-सहयोग से शिवजी द्वारा संपादित यह शोध-पत्रिका भारतवर्ष में साहित्य की शीर्ष पत्रिका मानी जाती थी। इस पत्रिका में स्थान पा लेना, बड़ा साहित्यकार हो जाने का प्रमाण-पत्र था। इसी में छपे नलिन जी की समालोचना के कारण, फनीश्वर नाथ 'रेणु', रातोंरात कथा-साहित्य के वरेण्य-पुरुष हो गए, अन्यथा वे भी उन सैकड़ों मनीषी साहित्य-सेवियों की भाँति अज्ञात ही रह जाते, जो समालोचकों की दृष्टि से अलक्षित रह गए। उनके काल में निरंतर देश भर के मनीषी साहित्यकारों का आना होता रहा। बड़े-बड़े कवि-सम्मेलन हुए। उनकी दिवंगता पत्नी बच्चन देवी के नाम से साप्ताहिक 'बच्चन देवी गोष्ठी' हुआ करती थी, जिसमें देश भर के विद्वान आया करते थे।

अत्यंत सादगी भरा जीवन जीने वाले शिवजी इतने सरल और विनम्र थे कि, सम्मेलन और परिषद के सभी छोटे बड़े कार्य वे स्वयं कर लिया करते थे। पत्र लिखने, पत्रोत्तर लिखने, लिफाफ में भरने और पैदल चलकर डाक-पेटी में गिराने तक के कार्य वे स्वयं करते थे। वे गांधी-दर्शन के सर्वतोभावेन आदर्श पुरुष थे। वर्ष 1956 में परिषद के मंत्री के पद को उत्क्रमित किया गया, तबसे शिवजी उसके निदेशक हो गए। किंतु संविदा की तिथि से 6 माह पूर्व ही उन्हें 1959 में पद से मुक्त कर दिया गया, जिसके कारण उन्हें अवकाश-प्राप्ति का लाभ (पेंशन) नही मिला। सम्मेलन भवन भी छूट गया। मीठापुर में किराए के एक मकान में उनके अंतिम के कुछ वर्ष कठिनाई में बीते। भोजन तक की भी चिंता रही। यह एक साहित्यिक महात्मा के साथ अन्याय की एक अलग कथा है, जो फिर कभी। हिन्दी भाषा को सनाथ करने वाले शिवजी 21 जनवरी, 1963 को अनेक पीढ़ियों को अनाथ कर के संसार से विदा हो गए।

डॉ. अनिल सुलभ, ई–मेल : anilsulabh6@gmail.com

आचार्य शिवपूजन सहाय के मानस में तुलसी-काव्य

डॉ. आशा

मासिक 'समन्वय' (कलकत्ता) के लिए लिखे गये 'तुलसीदास का पवित्र सौन्दर्य-वर्णन' लेख में आचार्य शिवपूजन सहाय भारतीय समाज में गोस्वामी तुलसीदास की काव्य-साधना और उनकी 'रामचरितमानस' की लोकप्रियता और महानता का श्रद्धापूर्वक गुणगान करते हैं - 'यों तो हिन्दी-संसार के घर-घर में रोज ही गोसाईंजी स्मरण किये जाते हैं। उनकी कविता में बड़ी सरलता, मधुरता, कोमलता और पवित्रता है। उनका एक एक शब्द उनके भक्ति-सुधा-सिक्त असली हृदय का चित्र है।

आचार्य शिवपूजन सहाय का नाम हिन्दी नवजागरण के उन अंतिम विशिष्ट व्यक्तित्वों में आता है जिन्होंने हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से सुदृढ़ और नये भारत का सपना देखा। भारतीय समाज, संस्कृति और हिन्दी साहित्य की जड़ों में गहरी पकड़ रखने वाले शिवपूजन जी द्वारा रचित वैचारिक साहित्य में विषयों की अपार विविधता के साथ नयी ऊर्जा और नयी विवेकशील दृष्टि के दर्शन होते हैं जो पाठक के लिए संजीवनी का काम करते हैं। नवजागरण की अवधारणा के अनुरूप आचार्य शिवपूजन सहाय एक ओर भारतीय संस्कृति के जीवन-मूल्यों के समर्थक हैं तो दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान की उपयोगिता के पक्षधर भी दिखते हैं। भारतीय 'लोक' को निर्मित करने वाले मूलभूत कारकों में वे गोस्वामी तुलसीदास और उनके साहित्य का महत्वपूर्ण अवदान मानते हैं। वस्तुतः तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' जैसा लोकप्रिय महाकाव्य को अपने रचना-काल से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय लोक-मानस में विशिष्ट स्थान प्राप्त है और भविष्य में भी इसका यह स्थान बना रहने की अपार सम्भावनाएँ हैं। भारत की संस्कृति के उपासक आचार्य शिवपूजन सहाय तुलसीदास और उनकी रचनाधर्मिता से बहुत गहराई से प्रेरित-प्रभावित हैं। उन्होंने तुलसी-काव्य का गहराई से अवगाहन करते हुए पूर्णतः आत्मसात कर लिया है, जिसकी अभिव्यक्ति उनके वैचारिक साहित्य में निरंतर देखने को मिलती है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके सम्पादकीय लेखों और निबन्धों का अध्ययन

करने पर ज्ञात होता है कि विषय चाहे कोई भी हो, किसी-न-किसी प्रसंग में तुलसी-काव्य का उल्लेख अधिकांशत: अनायास ही आ गया है। आचार्य शिवपूजन सहाय प्राय: तुलसीदास के लिए श्रद्धासूचक 'गोसाईंजी' शब्द का प्रयोग करते हैं और 'रामचरितमानस' के लिए 'भाषा रामायण' का। तुलसीदास की रचनाओं में उन्हें 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' विशेष प्रिय हैं। संभवत: इसीलिए इन काव्यों के पदों का उल्लेख उनके लेखों में बारम्बार हुआ है। मासिक 'समन्वय' (कलकत्ता) के लिए सन् 1925 में लिखे 'हिन्दी साहित्य का तीर्थ-निर्माण' नामक लेख में आचार्य शिवपूजन सहाय कहते हैं कि भारतीय भाषाओं में 'श्रीमद्भगवतगीता' के बाद दूसरा स्थान तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' का है। उनके मतानुसार विशुद्ध रूप से भक्ति-योग की प्रधानता वाले इस ग्रन्थ के कारण ही 'श्रीमद्भागवत की ललित भक्ति-धारा और श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की आदर्श मर्यादा का पुण्य-प्रवाह रामचरितमानस के प्रशस्त प्रवाह-क्षेत्र से होकर ही इस कलि-कल्मष-कलुषित संसार में प्रवाहित हुआ है।' शिवपूजन सहाय की तुलसीदास और उनके काव्य में प्रगाढ़ आस्था थी, वे उन्हें अत्यधिक सम्मान देते हैं। इसी क्रम में 'बाइबिल' से 'रामचरितमानस' की तुलना करते हुए आचार्य कहते हैं कि 'बाइबिल' का प्रचार तो मिशनरियों के प्रयासों से हुआ है किन्तु 'रामचरितमानस' तो स्वयंमेव ही लोक-मानस में रच-बस गया है। वे पूर्णत: आश्वस्त हैं कि एक-न-एक दिन पूरे संसार में तुलसीकृत 'रामचरितमानस' का ही सर्वाधिक प्रचार-प्रसार होगा। किन्तु इसके साथ वे खिन्नता भी प्रकट करते हैं कि इस महाकाव्य की रचना करने वाले तुलसीदास के जीवन से सम्बन्धित स्थलों- उनके गाँव राजापुर, चित्रकूट, अयोध्या, काशी आदि स्थानों पर उनकी स्मृति में कोई आयोजन नहीं होता, यहाँ तक कि किसी पत्र-पत्रिका में उनके चित्र भी प्रकाशित नहीं होते। भारतीय समाज में 'रामचरितमानस' की व्यापक लोकप्रियता के कारण भगवान् श्रीराम की भक्ति के साथ तुलसीदास का नाम अपरिहार्य रूप से जुड़ गया है। मासिक 'सम्मलेन पत्रिका' (प्रयाग) के लिए लिखे गये 'तुलसी की राम-भक्ति' शीर्षक लेख में आचार्य शिवपूजन सहाय ने 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' के विभिन्न प्रसंगों और पदों का हवाला देते हुए तुलसीदास की राम-भक्ति के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया है जिनके कारण भारत के लोक में राम के साथ तुलसी का नाम अपरिहार्य रूप से जुड़ गया है। तुलसीदास के भक्तिपरक पदों का बहुत मनोहारी विश्लेषण शिवपूजन जी ने बिलकुल उनके भीतर उतरकर, गहरी तन्मयता से किया है। उन्होंने तुलसी-काव्य के कई उदाहरणों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि तुलसीदास की राम-भक्ति वाल्मीकि-रामायण की अपेक्षा अध्यात्म-रामायण से अधिक प्रेरित और प्रभावित है। उनके मतानुसार वाल्मीकीय-रामायण में राम का ईश्वरत्व प्रच्छन रूप में है, वे मनुष्य के रूप में अधिक चित्रित हुए हैं, उनका अवतारी रूप उतना नहीं आया है जितना अध्यात्म-रामायण में। अध्यात्म-रामायण और रामचरितमानस से बाल-लीला, चित्रकूट-प्रसंग, शूर्पनखा-खरदूषण प्रसंग, मेघनाद द्वारा हनुमान को बाँधना आदि प्रसंगों के तुलनात्मक पद उद्धृत करते हुए आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपने मत को पुष्ट किया है। वस्तुत: तुलसीदास 'रामचरितमानस' में प्रत्येक काण्ड में अनेक स्थानों पर यह बताते चलते हैं कि जगत के कल्याण के लिए श्रीरामचन्द्र एक अवतारी मनुष्य के रूप में धरती पर आये हैं, वस्तुत: वे साक्षात् ईश्वर ही हैं। 'रामचरित-मानस' में जहाँ-कहीं मर्यादापुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र का खास

प्रसंग आया है, वहाँ अपनी राम-भक्ति का परिचय देने से गुसाईंजी जरा भी नहीं चूके हैं। बीहड़ से बीहड़ और ऊबड़-खाबड़ मार्ग में भी राम-भक्ति से लदा हुआ कविता-शकट निर्विघ्नतापूर्वक खींच ले गये हैं। सचमुच, उन्होंने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया है। शायद, उन्हें इस बात की आशंका थी कि भविष्य में बड़े-बड़े तर्कशास्त्री उत्पन्न होंगे। इसीलिए, वे राम-प्रसंग में सर्वत्र अतिशय सावधान दीख पड़ते हैं। उन्हें हमेशा सन्देह बना रहता था कि हमारे पाठक कहीं रामचन्द्रजी का ईश्वरत्व भूल न जायँ। पाठकों के मन में किसी प्रकार की शंका उत्पन्न होने की संभावना देखते ही वे सावधान हो जाते थे, और उस संदिग्ध स्थल पर, श्री रामचन्द्र का अतुलनीय ऐश्वर्य और प्रभुत्व वर्णन करके, पाठकों को इस तरह प्रभावान्वित कर देते थे कि कम-से-कम उनके मन को अवश्य ही पूर्ण संतोष हो जाता था। बिना पूर्ण संतोष प्राप्त किये, वे आगे बढ़ते ही न थे। तुलसीदास की समस्त रचनाओं में दास्य और दैन्य भाव की भक्ति की प्रधानता है। 'विनयपत्रिका' तो ऐसे ही पदों से परिपूर्ण है। 'गुसाईंजी के इस दैन्य में गजब का जादू है। ऐसी अविरल राम-भक्ति, ऐसी अलौकिक रामोपासना, इतनी शीतल दीनता, इतनी मधुर विनय, कहीं ढूँढे भी नहीं मिलती। उन्होंने विनय-पत्रिका में सभी देवताओं की विनती करके केवल निष्काम राम-भक्ति की याचना की है। 'रामचरित-मानस' में भी देवता, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, भूत, प्रेत, पिशाच, ऋषि, मुनि, भक्त, कवि, मनुज, दनुज, संत, असंत, चराचर से एकमात्र निष्काम राम-भक्ति के लिए प्रार्थना की है। समस्त जगत् को 'सियाराममय' जानकर सादर-सविनय प्रणाम किया है। जहाँ निर्गुण ब्रह्म और आत्म-ज्ञान की चर्चा करने लगे हैं, वहाँ भी। उस सन्नाटे में भी, उस चतुर्दिक शून्य अनन्त विकट मार्ग में भी- राम-भक्ति की गठरी सर पर रखे निःशंक सानन्द चले गये हैं और तारीफ यह कि अन्तिम लक्ष्य-पर्यंत सकुशल पहुँच गये हैं। तुलसीदास के एकनिष्ठ, पूर्णतः समर्पित एवं निर्द्वंद्व भक्ति-भाव का व्यापक विश्लेषण आचार्य शिवपूजन सहाय ने बेहतरीन ढंग से किया है। वे अपने समय के समाज में राम के नाम होने वाले ढकोसलों के प्रति भी सजग-सचेत थे इसीलिए उन्होंने 'रामभक्ति' नामक लेख में रामभक्ति का वास्तविक मर्म समझाते हुए इसके नाम पर मिथ्याडम्बर करने वाले कलियुगी भक्तों की भी अच्छी खबर ली है।

मासिक 'समन्वय' (कलकत्ता) के लिए लिखे गये 'तुलसीदास का पवित्र सौन्दर्य-वर्णन' लेख में आचार्य शिवपूजन सहाय भारतीय समाज में गोस्वामी तुलसीदास की काव्य-साधना और उनकी 'रामचरितमानस' की लोकप्रियता और महानता का श्रद्धापूर्वक गुणगान करते हैं - 'यों तो हिन्दी-संसार के घर-घर में रोज ही गोसाईंजी स्मरण किये जाते हैं। उनकी कविता में बड़ी सरलता, मधुरता, कोमलता और पवित्रता है। उनका एक एक शब्द उनके भक्ति-सुधा-सिक्त असली हृदय का चित्र है। उनके प्रत्येक शब्द से अन्तरात्मा की दिव्य भाषा व्यक्त होती है। छोटे-छोटे चौपाई-दोहों में उन्होंने कैसे-कैसे ऊँचे दर्जे के भाव भर दिये हैं, यह देखकर प्रत्येक सहृदय मनुष्य मुग्ध हो सकता है। जो जितना भी बड़ा विद्वान है, उनकी रामायण से वह उतना ही अधिक आनन्द प्राप्त करता है। मूर्ख और पण्डित, धनी और दरिद्र सबकी अन्तरात्मा को समान भाव से आनन्द देनेवाली अगर कोई पुस्तक हिन्दी में है, तो वह गोसाईंजी की रामायण ही है। चाहे कोई हजार बार पढ़ जाय, मजाल नहीं कि जरा भी जी ऊबे। तारीफ तो यह कि जितनी बार तुलसीकृत रामायण पढ़ी जाय, उत्तरोत्तर आनन्द की वृद्धि ही होती जायगी। अद्‌भुत ग्रन्थ है।

विलक्षण शक्ति है। कहा नहीं जा सकता कि यह कितनी बड़ी तपस्या का फल है। 'धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्!' 'रामचरितमानस' से उदाहरण देते हुए आचार्य शिवपूजन सहाय ने एक कुशल पारखी के समान तुलसीदास की सौन्दर्य दृष्टि का सूक्ष्म विश्लेषण किया है और ये निष्कर्ष दिया है कि चाहे श्रृंगार वर्णन हो या वात्सल्य प्रसंग या भक्ति-उदगार - तुलसी की सौन्दर्य भावना सदैव मर्यादा और पवित्रता के आवरण में ढँकी रही है। पुष्प-वाटिका में राम-सीता के पारस्परिक प्रथम-दर्शन, धनुष-भंग के बाद भरी राजसभा में सीता की आह्लादित मनःस्थिति, जनकपुर की गलियों में राम के सौन्दर्य की चर्चा, वनगमन के समय ग्रामवासियों के शब्दों में राम-सीता के सौन्दर्य का पवित्र वर्णन आदि प्रसंगों के उदाहरण देते हुए आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपनी स्थापना को पुष्ट किया है। इतना ही नहीं, सूर्पनखा की नाक कट जाने पर खरदूषण भी राम के अलौकिक और दिव्य सौन्दर्य को देखकर मोहित हो जाते हैं। 'गोसाईंजी की सौन्दर्य-वर्णन-प्रणाली स्वाभाविक और निष्कलंक है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता है-सर्वांग-शुद्धता। अन्य कवियों के सौन्दर्य-वर्णन पढ़ते समय इतनी प्रगाढ़ तन्मयता और आनन्दानुभूति नहीं होती। श्री राधारानी के सौन्दर्य-वर्णन में कई कवियों ने वासना भर दी है, अलौकिकता दब गई है, राधिका महारानी एक साधारण स्त्री बन गई हैं। किन्तु गोसाईंजी ने जगदम्बा जानकी का सौन्दर्य-वर्णन बड़ी कुशलता से निभाया है।' भक्तिकाल और रीतिकाल के कवियों ने कृष्ण और राधा का श्रृंगार व भक्तिपरक सौन्दर्य-वर्णन किया है किन्तु वे मर्यादा और पवित्रता का निर्वाह उस तरह नहीं कर पाये जिस तरह तुलसीदास राम और सीता के साथ कुशलतापूर्वक निभा ले गये हैं। इसीलिए 'किसी कवि के सौन्दर्य-वर्णन में इतनी तल्लीनता, प्रीति, भक्ति-भावना और अनुरक्ति नहीं मिलती। गोसाईंजी ने सौन्दर्य-सुधा में कहीं भी वासना का विष नहीं डाला है। इसीलिए उनका महाकाव्य - रामचरित 'मानस' सचमुच 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का प्रत्यक्ष रूप है।' ध्यातव्य है कि शिवपूजनजी ने आलोचनात्मक दृष्टि से तुलसीदास के पूर्ववर्ती और परवर्ती कवियों के सौन्दर्य-वर्णन का आकलन करते हुए अपनी मान्यता को स्थापित किया है।

'हास्य रस की कविता' में 'रामचरितमानस' से स्मित का सुन्दर चित्रण करने वाली चौपाईयों को उद्धृत किया है। 'हिन्दी-कवियों का वसंत वर्णन' में भी 'रामचरितमानस' के साथ 'विनयपत्रिका' का पद उद्कृत करते हुए बताते हैं कि तुलसीदासजी ने भगवान् शंकर को वन और भगवती पार्वती को वसंत के रूप में चित्रित किया है। 'भक्तों की भावनाएँ' नामक लेख में सच्चे भक्त के लक्षण और स्वभाव का संकेत देने के लिए भी उक्त दोनों काव्यों के कई-कई पदों का सहारा लेते हुए भावुक भक्त के भावोद्गारों-ईश्वर के प्रति कृतज्ञता, उनकी कृपा पाने की प्रार्थना, भक्ति की तल्लीनता, अनन्यता, दृढ़ता, भक्त का ईश्वर के समक्ष अपनी कमजोरियों का दीनतापूर्वक बखान और कृपालु भगवन की कृपा-दृष्टि पाने की आतुरता आदि का बहुत सुन्दर उल्लेख आचार्य शिवपूजन सहाय ने किया है। 'सुख और शान्ति' नामक निबन्ध में इन भावों को स्पष्ट करने के क्रम में शिवपूजनजी ने 'रामचरितमानस' के काक-भुशुण्डि-गरुड़ संवाद, राम की बाललीला, राम-विवाह प्रसंग, धनुष-यज्ञ के उपरान्त जनकपुर की रंगभूमि, राम-बारात आदि प्रसंगों की मनोहारिता का सुन्दर वर्णन किया है। 'सत्संगति' नामक लेख में सत्संगति की महिमा को समझाते हुए वे तुलसी-काव्य को तो उद्धृत करते ही हैं साथ ही, स्वयं तुलसीदास को भी

उदाहरणस्वरुप प्रस्तुत करते हैं- 'गोस्वामी तुलसीदास की रामायण पढ़कर आज तक कोटि-कोटि मनुष्य भवसागर से उद्धार पा चुके पर क्या किसी ने गुसाईंजी का सशरीर सहवास प्राप्त किया था? नहीं केवल उनके अक्षय यश: शरीर के सहवास-रामायण-पाठ से ही न जाने कितने जीवों के दोनों लोक सुधर गये।' 'साहित्य और विज्ञान' नामक लेख में उक्त दोनों विधाओं के महत्त्व और पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालने के क्रम में भी आचार्य शिवपूजन सहाय को तुलसीदास याद आ ही जाते हैं- 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' और 'विनयपत्रिका' में अनेक बार 'विज्ञान' और 'विज्ञानी' शब्दों का व्यवहार क्रमश: 'अंतर्दर्शन', 'ब्रह्मज्ञान', 'सृष्टि-मर्मज्ञ', 'तत्वद्रष्टा' के अर्थ में किया है।' इसके बाद कई उदाहरणों से उन्होंने अपनी बात पुष्ट की है। 'विजय-यात्रा' नामक लेख में 'रामचरितमानस' और 'हनुमन्नाटक' के आधार पर श्रीरामचन्द्र की लंका पर चढ़ाई करने वाली उत्साही सेना के गौरव और ओज का वर्णन किया है।

लखनऊ से प्रकाशित मासिक 'सुधा' के पहले वर्ष के पहले खण्ड के पहले अंक में 'सुधा' का वर्णन करते हुए उन्हें इस भाव को व्यक्त करने वाली जिन काव्य-पंक्तियों का ध्यान आता है उनमें से अधिकांशत: तुलसी रचित ही हैं। 'आलिंगन' नामक लेख में आलिंगन के प्रकार बताते हुए उसके कई-कई उदाहरण तुलसी-काव्य में राम-जीवन के विभिन्न प्रसंगों से दिये गये हैं। इसी प्रकार 'धैर्य' नामक लेख में धैर्य के महत्व-वर्णन में संस्कृत के साहित्यकारों के उद्धरणों के साथ ही तुलसी-काव्य से श्रीरामचंद्र के धैर्यधुरंधरत्व का उल्लेख हुआ है। 'संतोष' नामक लेख में इस भाव का विश्लेषण करते हुए भी शिवपूजन जी ने कई उदाहरण तुलसी-काव्य से दिये हैं। वे लिखते हैं- 'भाषा रामायण में विजय-रथ-वर्णन करते हुए गोसाईंजी ने संतोष को कृपाण निरूपण किया है अर्थात् संतोषरूपी चन्द्रहास से लोभ-महीपालरूपी प्रबल शत्रु का वध करके सुख-सिंहासनारूढ़ होना ही इस निस्सार संसार में विजय पाना है।' 'परोपकार' लेख में भी तुलसी-काव्य के उद्धरण के बिना काम नहीं चल सका है- 'परोपकारी पुरुष के पुण्य की थाह नहीं है यह उसकी कीर्ति चिरस्थायिनी और उसका महत्व अवर्णनीय है। देखिये गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं- सन्तन मिलि निर्णय कियो, मथि पुराण स्त्रुतिसार।

तुलसी सन्तन की मता, जुग-जुग पर उपकार।।
परहित सरिस धर्म नहिं भाई पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई।'

इसी भाँति 'औदार्य' नामक लेख मे तुलसी-काव्य से 'पम्पासर' का उल्लेख करते हुए तल्लीनता से उक्त भाव का विश्लेषण करते हैं। 'प्रेम और सेवा' लेख में भी कई उदाहरण लिए हैं। 'समय का सदुपयोग और मूल्य' लेख में भी तुलसी रचित 'मन पछतिहै अवसर बीते' और 'अब लौं नसानी अब ना नसैहौं' को उद्धृत करते हैं। 'आचार्यों का आर्ष-प्रयोग' नामक लेख में 'रामचरितमानस' में प्रयुक्त भोजपुरी शब्दों का उल्लेख किया है। श्यामसुंदर दास जैसे विद्वानों के सन्दर्भ लेते हुए लिखा है कि तुलसीदास बिहार में भी कुछ समय के लिए आये थे। आचार्य शिवपूजन सहाय इस बात से दुखी दिखते हैं कि तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' में भोजपुरी शब्दों के प्रयोग के बावजूद इनका उल्लेख नहीं किया जाता और न ही तुलसी के जीवन-प्रसंग में उनके बिहार में आने का उल्लेख किया जाता है।

आचार्य शिवपूजन सहाय तुलसीदास से इतने अधिक प्रेरित और प्रभावित हैं कि अपने कुछ लेखों के नाम ही तुलसी की चौपाईयों-अर्द्धालियों पर रख दिये हैं, जैसे - 'मति अति नीच ऊँचिरुचि आछी', 'चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी', 'दैहऊँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा' आदि। वस्तुतः तुलसी काव्य में वे ऐसी अनेक प्रासंगिक बातों को पाते हैं जो उन्हें अपने युग के अनुरूप मिलती हैं- जिनका सही मर्म और चरितार्थ समझते हुए अपने युगीन परिस्थितियों और जनता की रूचि का संस्कार हो सकता है। यही नहीं, शिवपूजन जी ने तुलसीदास जी के एक सोरठे को अपने युग की परिस्थितियों के अनुरूप प्रासंगिक पाकर उस पर पूरा लेख लिख दिया है- 'तुलसीदास का एक सोरठा' 'श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड में, शिव-पार्वती विवाह की कथा से पहले, मदन-दहन प्रसंग, में आता है-

धरा न काहू धीर
सबके मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर
ते उबरे तेहि काल मंह।।

संसार की वर्तमान गति-विधि इस 'सोरठा' पर गंभीरतापूर्वक विचार करने में प्रवृत्त करती है।' आगे के लेख में उन्होंने इस सोरठे के गहरे भाव की ओर संकेत करते हुए भविष्य के प्रति सचेत किया है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहना असंगत न होगा कि भारतीय संस्कृति के प्रेमी आचार्य शिवपूजन सहाय अपनी सांस्कृतिक सोच और मानसिक बुनावट के सर्वाधिक निकट तुलसी-काव्य को ही पाते हैं। इसी वैचारिक साम्य के चलते भारतीय लोक की मनःस्थिति और परिस्थिति के अनुरूप कोई-न-कोई सूत्र उन्हें गोस्वामी तुलसीदास के यहाँ मिल जाता है जिसकी अभिव्यक्ति उनके वैचारिक साहित्य में निरन्तर हुई है।

सन्दर्भः

1. शिवपूजन रचनावली, तीसरा खण्ड, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, संस्करण-1957, पृष्ठ-238, 2. वही, पृष्ठ-156, 3. वही , पृष्ठ-156, 4. वही , पृष्ठ-51, 5. वही , पृष्ठ-53, 6. वही, पृष्ठ-54, 7. वही, पृष्ठ-41, 8. वही, पृष्ठ-211, 9. वही , पृष्ठ-20, 10. वही , पृष्ठ-26, 11. वही, पृष्ठ-451

आधार ग्रन्थ :

शिवपूजन रचनावली, तीसरा खण्ड, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, संस्करण-1957

डॉ. आशा, हिन्दी विभाग, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

हिन्दी के अग्रपांक्तेय निबंधकार : आचार्य शिवपूजन सहाय

डॉ. सुनील कुमार पाठक

देश के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद शिवपूजन सहाय को तपःपूत साहित्यकार बताते लिखते हैं- ''मूक हिन्दी सेवा ही व्रत था आचार्य शिवजी का। इस प्रकार के हिन्दी सेवक देश में और अधिक पैदा हों। हिन्दी सेवा देश-सेवा का अभिन्न अंग है।'' सेठ गोविन्द दास ने तो स्पष्ट शब्दों में लिखा है- ''हिन्दी साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि में बिहार का जो योगदान है, उसमें श्री शिवपूजन सहाय जी का नाम सदा अग्रिम पंक्ति में रहेगा।'' बनारसी दास चतुर्वेदी की मान्यता है- भाई शिवपूजन सहाय जी को मैं हिन्दी का श्रेष्ठतम सेवक मानते रहा हूँ। वैसा व्यापक दृष्टिकोण हिन्दी जगत् में अन्य किसी का भी नहीं था और न अब है।''

आचार्य शिवपूजन सहाय हिन्दी निबन्ध साहित्य के एक ऐसे मूर्धन्य हस्ताक्षर हैं, जिनके निबन्धों में पर्याप्त विषयगत विविधता है, सम्प्रेषण की अद्‌भुत क्षमता है, संवेदना की सम्मोहक तरलता है, विचारों की प्रभावी प्रखरता है, विश्लेषण की समन्वयी प्रौढ़ता है तथा भाषिक प्रवाहमयता और मुहावरेदानी है।

आचार्य शिवपूजन सहाय के ही समकालीन बाबू गुलाबराय ने हिन्दी निबन्धों की विशेषताएँ बताते हुए लिखा था कि निबंध गद्य-साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसमें लेखक के निजीपन और व्यक्तित्व की झलक मिलती है तथा उसके वैचारिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन संभव हो पाता है। उनके अनुसार अपूर्णता और स्वच्छंदता के बावजूद निबंध रचना एक ऐसी स्वतःपूर्ण रचना होती है, जिसमें साधारण गद्य की अपेक्षा अधिक रोचकता और सजीवता होती है। गुलाबराय जी उम्र में शिवपूजन बाबू से पाँच वर्ष बड़े थे, किन्तु यह संयोग ही था कि वर्ष 1963 की 21 जनवरी को सहाय जी गुलाबराय जी को छोड़ पहले ही स्वर्ग सिधार गए। हिन्दी-साहित्य को गुलाबराय जी के देहावसान का वियोग भी इसी वर्ष महज तीन महीने बाद 13 अप्रैल, 1963 को झेलना पड़ा। बाबू गुलाबराय और आचार्य शिवपूजन सहाय जी दोनों ने हिन्दी निबंध को जो गरिमा प्रदान की, वह अविस्मरणीय है। साहित्य, संस्कृति, इतिहास, कला, सामाजिक सरोकार आदि हर विषयों से जुड़े निबन्धों से हिन्दी साहित्य का भांडार भरने में दोनों ने कोई

कसर नहीं उठा रखी।

हिन्दी निबन्धों को मुख्यत: चार रूपों में वर्गीकृत किया जाता है -वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक एवं भावात्मक। यह वर्गीकरण यद्यपि बहुत वैज्ञानिक और मौलिक नहीं है तथापि अध्ययन की सुविधा और विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से असंगत भी नहीं है।

निबंध अगर रचनाकार के व्यक्तित्व और मौलिक विचारों के संवाहक माने गए हैं तो यह आवश्यक है कि शिवपूजन सहाय जी के निबंधों पर विचार के क्रम में पहले हम उनके व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य का तथ्यपरक मूल्यांकन करें, फिर विचार-संपदा और प्रौढ़ि के अनुरूप उनके निबन्धों की मूल्यवत्ता और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता पर विचार करें।

9 अगस्त, 1893 को बक्सर (बिहार) जिले के उनवाँस गाँव में जन्मे आचार्य शिवपूजन सहाय का बचपन और युवावस्था दोनों संघर्ष में कटे। अपना परिचय देते उन्होंने स्वयं लिखा है- ''मैं ठेठ देहात का रहनेवाला हूँ, जहाँ नयी रोशनी की सभ्यता का उजाला नहीं पहुँचा है। अँधेरे में पड़े हुए गाँव बहुत से हैं, जहाँ न अच्छी सड़क है, न स्कूल है, न पुस्तकालय है, न अस्पताल है।'' अन्यत्र एक जगह इन गाँवों की हालत बताते साफ करते हैं -''हमारे देश की अधिकांश जनता गाँवों में रहती है, जहाँ असुविधा और अभावों का घना अन्धकार छा रहा है। वही अंधकार गाँवों का उद्धार नहीं होने देता। लोगों के जीवन में पग-पग पर प्रकाश की जरूरत है। किन्तु दुर्भाग्यवश देश-हितैषी भी गाँवों से उदासीन हैं।'' प्रकारान्तर से सहाय जी यहाँ कहना चाहते हैं कि गाँवों के प्रति उदासीनता रख देश-हितैषी होने की कल्पना अत्यन्त दुरावह है।

हिन्दी-शिक्षक के रूप में अपने अध्यवसायी जीवन की शुरूआत करनेवाले शिवपूजन जी कहीं भी स्थिर नहीं रहे। 1913 में मैट्रिक पास किया, यद्यपि पहली शादी चौदह वर्ष की उम्र में वर्ष 1907 में ही हो गई थी। पहली पत्नी जल्दी ही मर गईं। दूसरी शादी 1908 में हुई, दूसरी धर्मपत्नी भी बीस वर्षों बाद 1928 में दिवंगत हो गईं। सामाजिक दबाव पर तीसरी शादी 1928 में ही हुई और उसके बाद ही दामपत्य जीवन में थोड़ी स्थिरता आ पायी।

मैट्रिक के बाद आगे शिक्षा जारी नहीं रख पाने की मजबूरी के कारण बनारस में नकलनवीसी की नौकरी शिवपूजन बाबू ने स्वीकार कर ली। प्रारंभिक शिक्षा अपनी बुआ के घर रहकर प्राप्त करनेवाले आचार्य जी ज्ञानार्जन के प्रति शुरू से ही तत्पर और सचेष्ट रहे। स्वाध्याय के बल पर ही उन्होंने अपने साहित्यिक व्यक्तित्व का इतना परिमार्जन कर लिया था कि सभी समकालीन भी उनके प्रति पूरी सहृदयता और सम्मान का भाव रखते थे। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी ने शिवपूजन सहाय जी को 'साहित्यभूषण' विशेषण से अलंकृत किया था। डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र ने सहाय जी के साहित्यिक व्यक्तित्व को मूल्यांकित करते हुए लिखा है कि -''उनके व्यक्तित्व में एक ओर प्रसाद और निराला घुले हुए हैं और उनके ऊपर एक ओर बनारसी और कलकतिया दोनों रंग छाये हुए हैं, दूसरी ओर दुबका हुआ परिवारी गृहस्थ है जो भाषा, साहित्य और वाह्मय का इतना बड़ा साधक होते हुए भी घरबारी के रूप में ममता का छलकता हुआ प्याला है। उनकी विनम्रता अभिभूत कर देती थी और बड़े-बड़े रचनाकार या विद्वान को लज्जा और संकोच से

भर देती थी।''

देश के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद शिवपूजन सहाय को तप:पूत साहित्यकार बताते लिखते हैं- ''मूक हिन्दी सेवा ही व्रत था आचार्य शिवजी का। इस प्रकार के हिन्दी सेवक देश में और अधिक पैदा हों। हिन्दी सेवा देश-सेवा का अभिन्न अंग है।'' सेठ गोविन्द दास ने तो स्पष्ट शब्दों में लिखा है- ''हिन्दी साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि में बिहार का जो योगदान है, उसमें श्री शिवपूजन सहाय जी का नाम सदा अग्रिम पंक्ति में रहेगा।'' बनारसी दास चतुर्वेदी की मान्यता है- भाई शिवपूजन सहाय जी को मैं हिन्दी का श्रेष्ठतम सेवक मानते रहा हूँ। वैसा व्यापक दृष्टिकोण हिन्दी जगत् में अन्य किसी का भी नहीं था और न अब है।'' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के शब्द हैं- ''आचार्य शिवपूजन सहाय अत्यन्त निष्ठावान, सहृदय और निरन्तर कर्म करते रहने में विश्वास करनेवाले महान साहित्यकार थे। कठिन परिस्थितियों में भी उन्होंने ऊँचे आदर्शों और साहित्यकार के गौरवपूर्ण आत्माभिमान को कभी झुकने नहीं दिया। हजारी प्रसाद द्विवेदी एक जगह अन्यत्र लिखते हैं -''आचार्य शिवपूजन सहाय जी विनय और शील के मूर्तिमान रूप थे। कालिदास जी ने जिसे 'कोचन-पद्मधर्मिता' कहा है, वह पूर्ण रूप में उनमें मिलती थी- दृढ़, उज्ज्वल और कोमल! उन्हें जीवन में बहुत संघर्ष करना पड़ा। बहुत विषपान करके उन्होंने साहित्य को अमृत दान किया था। संघर्षों से वे कभी विचलित नहीं हुए। 'प्राप्तं प्राप्त-मुपासीत हृदये नापराजित:' वाले आदर्श ने उनके भीतर स्थिर निवास पाया था। वे बड़े ही स्वाभिमानी और मनस्वी थे, परन्तु स्वाभिमान अनेक कवचों से सुरक्षित था। मैं ऐसे स्वाभिमानियों को जानता हूँ जो दूसरों का असम्मान ही आत्म-गौरव का चिह्न मानते हैं। शिवजी बिल्कुल भिन्न थे। वे सच्चे हृदय से दूसरों का सम्मान करते थे। अपने से बहुत कनिष्ठ लोगों के गुणों का भी वे सम्मान करते थे। उनका स्वाभिमान कभी भी आक्रामक नहीं हुआ। क्योंकि वे भीतर से महान थे। अपने गौरव के प्रति उनके मन में दृढ़ आस्था थी, इसलिए वे खुले हृदय से दूसरों का सम्मान कर सकते थे। वे सही अर्थों में 'अजातशत्रु' थे। चरित्रगत दृढ़ता, लेखनगत ईमानदारी और मनुष्य के सहज चरित्रगुण में अटूट आस्था ने उन्हें अपने ढंग का अद्वितीय व्यक्तित्व दिया था। वे अपना उपमान आप ही थे-'गगनम् गगनाकारम्।'

पं॰ नन्ददुलारे वाजपेयी की सम्मति है कि ''शिवपूजनजी द्विवेदी-युग से कार्य आरंभ कर छायावाद-युग में अपने विशिष्ट व्यक्तित्व और साहित्य-चेतना को नई दीप्ति देते हुए, प्रगतिशील जीवनादर्शों को अपनी औपन्यासिक कृतियों में परिस्फुट करते हुए शैली के एक अनुपम प्रयोक्ता का पद ग्रहण कर सके हैं। उनके व्यक्तित्व में इतनी सहज उदारता और व्यापकता थी कि वे चारों युगों में किसी समय साहित्यिकों की प्रथम पंक्ति से पीछे नहीं गये। उनका व्यक्त्वि हिमालय की ऊँचाइयों का प्रतिनिधि न हो परन्तु वह सागरोपम विशाल, गंभीर और मर्यादाशील रहा है। हिन्दी के साहित्यिक, जिन्होंने उन्हें देखा है, उनका साहचर्य पाया है, वे उन्हें कभी नहीं भूल सकते। परन्तु, जिन्होंने उन्हें अधिक नहीं देखा, वे भी श्रुति-परम्परा से उनकी असाधारण हार्दिकता और क्रियानिष्ठता का परिचय प्राप्त करेंगे। जो नई पीढ़ियाँ, उनके दर्शन से वंचित रह गई हैं, वे भी उनकी मनोरम और मृदुल-गंभीर साहित्य-सर्जना का चिरदिन तक आस्वाद लेती रहेंगी।''

फादर कामिल बुल्के ने लिखा है –''मुझे लगभग पन्द्रह वर्ष पहले आचार्य शिवपूजनजी के संपर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हर मुलाकात से उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गई और अब मेरे हृदय-मंदिर की दीवार पर विनयमूर्ति, सौजन्यावतार, परमपूज्य एवं परमप्रिय शिवपूजन जी का चित्र सदा-सर्वदा के लिए अंकित है।''

डॉ॰ रामविलास शर्मा ने शिवपूजन सहाय के असाधारण साहित्यिक व्यक्तित्व के बारे में लिखा है –''शिवपूजन सहाय अपनी कर्मठता और योग्यता के लिए जाने जाते थे। 'मतवाला' मंडल के लेखकों में हिन्दी लिखना सबसे पहले उन्हीं ने शुरू किया था। पत्र-सम्पादन का व्यावहारिक ज्ञान भी उन्हें सबसे ज्यादा था। दूसरों का बड़प्पन आसानी से ओढ़ लेते थे, लोग उनकी सरलता और सज्जनता पर बलि-बलि जाते थे। वे कवि न थे, पर कविता के पारखी जरूर थे।''

विष्णु प्रभाकर जी ने सहाय जी को 'हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-स्तंभ' कह संबोधित किया है, जबकि शिवमंगल सिंह 'सुमन' उन्हें 'अपनी पीढ़ी का पितामह' मानते हैं। डॉ॰ नगेन्द्र ने लिखा है- ''आचार्य शिवपूजन सहाय हिन्दी के एक ऐसे प्रकाशस्तंभ थे, जो युग-युग तक आनेवाली पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त करते रहेंगे। ''पं॰ राम नरेश त्रिपाठी अपनी श्रद्धा निवेदित करते लिखते हैं- ''श्री शिवपूजन सहाय मेरे उन सम्मान्य मित्रों में हैं, जिनकी चरित्रिक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनने को मैं लालायित रहता हूँ। उनका गंगाजल जैसा शुद्व जीवन, सकरूण स्वभाव, स्नेह और सहानुभूति से भरा हुआ व्यवहार और 'कार्य वा साधयामि शरीरम् वा पातयामि' से अभिमंत्रित उनकी निष्ठा देखकर यह आभास होने लगता है, जैसे उपनिषद् काल का कोई ब्राह्मण इस युग में आ गया हो।'' रायकृष्णदास जी अपनी स्मरणांजलि में लिखते हैं- ''याद आती है प्रसाद जी की दुकान पर की वह संध्याकालीन दैनिक बैठक, जिसमें हिन्दी साहित्य का सारा संसार भाग लेता रहता। शिवपूजन जी की योजनाएँ और प्रस्ताव सदैव सारगर्भित होते, फलत: सभी को भाते। उनमें स्वप्नों को साकार करने की क्षमता थी।'' रामधारी सिंह दिनकर की श्रद्धान्वित पंक्तियाँ हैं-''जब हमलोग साहित्य की दुनियाँ में आँख खोलने लगे, उससे बहुत पूर्व ही हिन्दी भूषण शिवपूजन सहाय का नाम हिन्दी संसार में सुविख्यात हो चुका था।''

आचार्य शिवपूजन सहाय के समकालीन एवं अन्य विद्वानों और चिन्तकों की उपर्युक्त टिप्पणियों से स्पष्ट है कि शिवपूजन सहाय जी का व्यक्तित्व जीवन जितना संघर्षमय था, उसकी प्रभावान्वीति के रूप में उनके साहित्यिक व्यक्तित्व में भी उतनी ही जीवन्तता, विविधता, ऊर्ज्वस्विता और वैचारिक सुस्थिरता दृष्टिगोचर होती है।

सहाय का जीवन एक ही वर्ष जन्मे और एक ही वर्ष इस असार संसार से विदा लेने वाले अपने समकालीन महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी की तरह यायावर प्रकृति का रहा। कभी बक्सर, कभी आरा, कभी छपरा, कभी कलकत्ता, कभी लखनऊ, कभी बनारस, कभी लहेरियासराय (दरभंगा), कभी पटना। किन्तु ये जहाँ भी गए अपनी एक अमिट छाप छोड़ी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान 'असहयोग आन्दोलन' में भी शामिल हुए। गाँव-गाँव घूमकर काँग्रेस के सिद्धांतों और महात्मा गाँधी के संदेशों को पहुँचाया। स्वदेशी वस्तुएँ दुकानों में रख बिकवायीं -स्वदेशी कलम,

दवात, कागज, चरखा, टोपी, झंडा ये सारा कुछ गाँव-गाँव, डगर-डगर उपलब्ध करवाया।

प्रसिद्ध 'मतवाला मंडल' के सदस्य के रूप में निराला के काफी करीब रहनेवाले सहाय जी ने 1920-21 में कलकत्ता से 'मारवाड़ी-सुधार' नामक पत्रिका संपादित की। 'आदर्श', 'उपन्यास तरंग', 'समन्वय' और 'गंगा' के भी वे सम्पादक रहे। लहेरियासराय से उनके द्वारा सम्पादित पत्रिका 'बालक' बाल-साहित्य की श्री-वृद्धि में काफी सहायक रही। छपरा के राजेन्द्र कॉलेज में 1939 से ग्यारह वर्षों तक हिन्दी विभाग में अपनी सेवा देनेवाले शिवपूजन सहाय जी ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' एवं 'बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन' नामक बिहार की प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्थाओं को अपनी बहुमूल्य सेवाएँ दी। सहाय जी की अप्रतिम साहित्यिक सेवाओं की बदौलत उन्हें 1960 में 'पदम् भूषण' भी मिला। 1962 में भागलपुर विश्वविद्यालय ने डी॰लिट॰ की मानद उपाधि भी दी।

शिवपूजन सहाय जी ने साहित्य की विभिन्न विधाओं को अपनी रचनात्मकता से समृद्ध किया, किन्तु एक निबंधकार के रूप में उनका साहित्यिक अवदान चिरस्मरणीय रहेगा। कहानी, उपन्यास, संस्मरण, डायरी, आलोचना, अनुवाद, पत्र-लेखन आदि के साथ-साथ इतिहास, भूगोल तथा ग्रामीण, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर भी उन्होंने खूब लेखनी चलायी। 'बिहार का विहार' तत्कालीन बिहार राज्य का ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिदृश्य प्रस्तुत करता है तो 'देहाती दुनिया' एक उत्कृष्ट चरित्र प्रधान उपन्यास है। 'ग्राम-सुधार' और 'अन्नपूर्णा के मन्दिर में' में उनके ग्राम विषयक विभिन्न निबंध संग्रहित हैं। 'दो घड़ी' एक हास्यप्रधान रचना है, जबकि 'माँ के सपूत' तथा 'अर्जुन और भीष्म' जीवनी-साहित्य को उनकी अनुपम देन हैं। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित 'शिवपूजन रचनावली' के चार खंड तथा सहाय जी के विद्वान सुपुत्र मंगलमूर्ति जी द्वारा हाल ही में उनके समग्र साहित्य को दस खंडों में प्रकाशित कराया गया है। 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' की शिवपूजन रचनावली के प्रथम खंड में 'बिहार का विहार' संकलित है, जबकि द्वितीय खंड में 'भीष्म', 'अर्जुन', 'दो घड़ी', 'माँ के सपूत' 'अन्नपूर्णा के मंदिर में', 'महिला महत्त्व', 'बालोद्यान' एवं 'साहित्यिक भाषणावली' संग्रहित हैं। रचनावली का तीसरा खंड काफी महत्त्वपूर्ण है, जिसमें तत्कालीन महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं यथा- 'सुधा' (लखनऊ), 'माधुरी' (लखनऊ), 'लक्ष्मी' (गया), मनोरंजन (आरा), 'समन्वय (कलकत्ता), 'धर्माभ्युदय' (आगरा), 'विश्वमित्र' (कलकत्ता), 'बिजली' (पटना), 'स्वदेश' (गोरखपुर), 'भारत जीवन' (काशी), 'आर्यादर्श' (बस्ती), 'ज्ञानशक्ति' (गोरखपुर), 'कवि कौमुदी' (प्रयाग), 'जगद्गुरू' (काशी), 'विक्रम' (उज्जैन), 'राका' (छपरा), 'सम्मेलन पत्रिका' (प्रयाग), 'सरोज' (कलकत्ता), 'रचना विचार' (पटना), 'ज्योत्सना' (पटना), 'साधना' (आगरा), 'उषा' (गया), 'सन्मार्ग' (कलकत्ता), 'आर्यावर्त्त' (पटना), 'प्रदीप' (पटना), 'आज' (काशी), 'युवक' (पटना) आदि दर्जनों में छपे निबंध संग्रहित हैं।

सिविल कोर्ट की नकलनवीसी से लेकर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के निदेशक पद तक पहुँचने की यात्रा में शिवपूजन सहाय जी में एक बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार, प्रखर स्वतंत्र एवं निष्पक्ष पत्रकार और विद्वान प्राध्यापक के जो वैशिष्ट्य समाहित मिलते हैं, उनमें उनके

व्यक्तित्व की गहरी छाप है।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के निदेशक के रूप में शिवपूजन बाबू ने परिषद् से अनेक गौरव-ग्रंथों को प्रकाशित कराया। 'विद्यापति की रचनावली', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', 'हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन' 'मध्यदेश', 'भारतीय प्रतीक विद्या' 'बौद्ध-दर्शन', 'दोहा कोश' आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के प्रकाशन के साथ-साथ, लोकगीतों, लोक कथाओं, लोक भाषाओं आदि से संबंधित कई पुस्तकें शिवपूजन बाबू के कार्यकाल में परिषद् से छपीं।

शिवपूजन सहाय ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' की समीक्षा कर इस ग्रंथ की महत्ता प्रतिपादित की, परन्तु अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के हिन्दी साहित्येतिहास के ग्रंथ की जमकर आलोचना भी की। उन्होंने माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन जैसे राष्ट्रीय भावों के अनुपम गायक कवियों की अनदेखी तथा जयशंकर प्रसाद पर पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव का आरोप करने को लेकर हरिऔध जी की जमकर खबर ली। महावीर प्रसाद द्विवेदी की शुक्ल जी द्वारा की गई आलोचना से शिवपूजन सहाय सहमत नहीं थे। उन्होंने अत्यन्त स्पष्टतापूर्वक रामचन्द्र शुक्ल जी को प्रत्युत्तरित करते हुए लिख -''यहाँ पर मुझे यह कहने के लिए क्षमा मिलनी चाहिए कि वास्तव में द्विवेदी दूसरों के ही समझने के लिए लिखते हैं, पर शुक्ल जी केवल अपने ही समझने के लिए लिखा करते हैं। द्विवेदी सर्वसाधारण जनता के लिए लिखते हैं और शुक्ल जी लिखते हैं एम०ए० के छात्रों के लिए। द्विवेदी जी अपढ़ों और गरीबों के लेखक हैं, शुक्ल जी डिग्रीधारियों और अनंत पथगामियों के।''

आचार्य शिवपूजन सहाय के निबंध लेखन में विषयगत काफी विविधता है। निबंधों की अंतर्वस्तु में पर्याप्त रोचकता के कारण ये निबंध साहित्य के अनुरागियों के साथ-साथ, आम पाठकों के बीच भी अत्यन्त लोकप्रिय हैं। सहाय जी अपने निबंधों की साहित्यिक उपयोगिता के साथ-साथ उनके सामाजिक और सांस्कृतिक महत्त्व को लेकर भी पूरी तरह सजग थे। उनकी पृष्ठभूमि चूँकि गाँवों की थी, अतएव ग्रामीण जीवन को उन्होंने अत्यन्त निकट से देखा-परखा था। ग्रामीण जीवन से जुड़े विषयों पर उन्होंने बहुतेरे निबंध लिखे हैं, जिनमें गाँव के महत्त्व, गाँव की स्थिति, गाँव में सुधार, खेतों की चकबंदी, बाग-बगीचे, जंगल, पशुपालन, गोचर-भूमि के अलावे गाँव की सामाजिक कुरीतियों, ग्रामीण अछूतों, मजदूरों, कारीगरों आदि की समस्याओं, गाँवों में बाजार की जरूरत, गुणी और कलावन्तों की मौजूदगी, ग्रामीण पर्व-त्योहारों आदि के बारे में अत्यन्त रोचक रूप से सारगर्भित बातें प्रस्तुत की गई हैं। गाँव के रास्तों, कुँओं, तालाबों, मकानों आदि की हालत में सुधार के उपाय सुझाने के साथ-साथ, सहाय जी ने गाँवों के समक्ष उपस्थित मौजूदा चुनौतियों पर भी व्यापक रूप से प्रकाश डाला है। ये सारे निबंध 'ग्राम सुधार' नामक उनके निबंध-संग्रह में संकलित हैं। इन निबंधों की भाषा सरल, सहज, सुबोध और विश्लेषणपरक है। सहाय जी ने खुद लिखा है कि ''भाषा इसकी मैंने बहुत सरल रखी है। देहात में जैसी भाषा सबलोग समझ लेते हैं। वैसी ही रखने की कोशिश की है।''

गाँवों के समक्ष मौजूदा चुनौतियों का उल्लेख करते हुए शिवपूजन सहाय कहते हैं कि

''हिन्दू-जाति के लोग इस देश पर अपना स्वत्व स्थापित करने को बहुत उत्सुक हैं, पर इसकी वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति पर उनका ध्यान जैसा चाहिए, वैसा नहीं है। इस कृषि प्रधान देश के मेरूदंड-स्वरूप असंख्य गाँवों में अशिक्षा का अन्धकार छा रहा है, पर ज्ञान का प्रकाश फैलाने की चिन्ता पाँच प्रतिशत धनिकों में भी नहीं दिखाई पड़ती। स्वदेशी चिकित्सा की समुचित व्यवस्था न होने से अनेक गाँवों के मनुष्य और पशु अकाल काल- कवलित हो रहे हैं और समर्थ दानी लोग उन्हीं तीर्थ स्थानों में नये-नये मन्दिर बनवाते चले जा रहे हैं, जहाँ मंदिर की कोई आवश्यकता नहीं है-गाँवों के केन्द्र स्थानों में मनुष्यों और पशुओं के लिए चिकित्सालय अथवा दातव्य औषधालय स्थापित करने की सूझ किसी में पैदा नहीं होती।'' स्पष्ट है, शिवपूजन बाबू एक भविष्यद्रष्टा साहित्यकार और दूरदर्शी चिन्तक थे। उन्होंने स्वतंत्रता-आन्दोलन के दौरान गाँधीजी द्वारा चलाये गये स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग और स्वराज की परिकल्पना को मूर्त्त रूप देने के सार्थक प्रयास किये। 'अन्नपूर्णा के मंदिर में' नामक पुस्तक में उन्होंने कुछ अत्यन्त सार्थक और सारगर्भित निबंध लिखे हैं, जिनमें 'हमारे गाँवों की दशा कैसे सुधरेगी', 'गाँवों की सफाई का आन्दोलन',

भाषा और साहित्य को लेकर भी शिवपूजन सहाय ने जो निबंध लिखे हैं, उनमें उनके वैदुष्य की तो झलक मिलती ही है उनके व्यापक इतिहास-बोध, सांस्कृतिक चिन्तन तथा भारतीयता के मौलिक अभिज्ञान का भी परिचय मिलता है। हिन्दी भाषा के स्वरूप और साहित्य को लेकर लिखे गये उनके एक अत्यन्त महत्वपूर्ण निबंध 'भाषा का रूप और साहित्य की दशा' को पढ़कर हिन्दी के विकास को लेकर उनकी समझदारी को दाद देनी पड़ती है। उन्होंने लिखा है -''भारत में स्वाभाविक गति से हिन्दी बढ़ती जा रही है।

'हमारे देश में अन्न की दुर्दशा', 'देहात ही देश का दिल है', 'स्वतंत्र भारत के गाँव' आदि प्रमुख हैं। ये सभी निबंध आज भी भारतीय गाँवों के बारे में सोचने-समझने के लिए एक अत्यन्त मौलिक दृष्टि प्रदान करते हैं। इसी तरह उनकी किताब 'महिला महत्त्व' में उन्होंने भारत में महिलाओं की स्थिति पर दर्जन भर से ज्यादा निबंध लिखे हैं। 'ग्रामीण स्त्रियों की दशा' शीर्षक निबंध गाँवों में महिलाओं की दुर्दशा को बड़े व्यापक रूप से सामने लाता है। उन्होंने साफ-साफ लिखा है कि महिलाओं के बीच स्वतंत्रता की चेतना जगाने वाली महिलाओं को भी समाज में गलत नजरिये से देखा जाता है। शिवपूजन बाबू के शब्द हैं- ''समाज में विद्रोह की भावना फैलाने के लिए नारी समाज के अखण्ड अधिकारों की आवाज उठाना, शहरों में भले ही संभव हो, पर गाँवों में अभी संभव नहीं, यहाँ फिर दूसरे ही उपद्रव खड़े हो जाएँगे।'' वस्तुत: भारतीय गाँवों में आज जो नारी-जागृति देखने को मिल रही है उसके पीछे शिवपूजन बाबू जैसे कई अन्य साहित्यकारों के वैचारिक क्रांति जगाने के तत्कालीन प्रयासों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

सहाय जी ने मानवीय मनोभावों पर आधारित भी कई निबंध लिखे हैं। इन निबंधों में

विश्लेषण और मनोवैज्ञानिक विवेचन की भरपूर लेखकीय क्षमता मौजूद है। 'आलिंगन', 'धैर्य', 'संतोष', 'परोपकार', 'औदार्य', 'सेवा', 'सत्संगति', 'सचाई' आदि इनमें प्रमुख हैं। इन निबंधों की भाषा अत्यन्त परिनिष्ठित एवं सुसंस्कृत है। 'संतोष' को परिभाषित करते हुए शिवपूजन सहाय जी लिखते हैं कि- ''पुरूषार्थ, श्रमशीलता एवं सदुपयोग द्वारा सद्धर्मयुक्त जो कुछ उपार्जन हो सके, उसी को ईश्वरदत्त समझ, सहर्ष स्वीकार कर, सुखी रहना ही संतोष की सहज परिभाषा है।'' परोपकार की परिभाषा सहाय जी के शब्दों में कुछ इस प्रकार है-''प्राणपण से बद्धपरिकर होकर यथाशक्ति दूसरों की भलाई करना और साथ ही साथ स्वार्थशून्यता को धारण किये रहना ही परोपकार की सरल परिभाषा है।'' औदार्य को सहाय जी मानव हृदय का वह सर्वश्रेष्ठ गुण बताते हैं, जो मनुष्यत्व को देवत्व में परिणत कर देता है। 'समय का सदुपयोग और मूल्य' शिवपूजन बाबू का एक उपदेशात्मक निबंध है, किन्तु इसकी उपदेशात्मकता में भी भरपूर वैचारिकता है। मनोवैज्ञानिक निबंधों में व्यंग्य-विनोद की छटा भी देखते ही बनती है। भाषा की कारीगरी में माहिर शिवपूजन बाबू विषय-प्रतिपादन में भी पूर्णतः तार्किकता और वास्तविकता पर पूरा ध्यान देते हैं। उनके इन निबंधों की वैचारिक गंभीरता, सूत्रबद्धता, भावात्मक विलक्षणता, सरसतामूलक अलंकृति आदि विशेषताएँ उन्हें एक उत्कृष्ट कोटि का निबंधकार सिद्ध करती हैं।

भाषा और साहित्य को लेकर भी शिवपूजन सहाय ने जो निबंध लिखे हैं, उनमें उनके वैदुष्य की तो झलक मिलती ही है उनके व्यापक इतिहास-बोधा, सांस्कृतिक चिन्तन तथा भारतीयता के मौलिक अभिज्ञान का भी परिचय मिलता है। हिन्दी भाषा के स्वरूप और साहित्य को लेकर लिखे गये उनके एक अत्यन्त महत्वपूर्ण निबंध 'भाषा का रूप और साहित्य की दशा' को पढ़कर हिन्दी के विकास को लेकर उनकी समझदारी को दाद देनी पड़ती है। उन्होंने लिखा है -''भारत में स्वाभाविक गति से हिन्दी बढ़ती जा रही है। इसकी लोकप्रियता का आतंक केवल दुर्बल हृदयों पर ही है। वास्तव में हिन्दी स्वयं आतंक उत्पन्न करके अपनी सत्ता स्थापित करना नहीं चाहती। किसी के प्रति इसका दुर्भाव नहीं है। सबके साथ सद्भाव और सहयोग ही इसका सिद्धान्त है। तब भी इसके प्रतिपक्षी और विरोधी इसके अभ्युदय के मार्ग में विघ्न-बाधाएँ उपस्थित करने से नहीं चूकते।'' उर्दू और हिन्दी के प्रश्न पर शिवपूजन सहाय बिल्कुल स्पष्ट थे। उनकी मान्यता थी कि उर्दू, अरबी व फारसी के कठिन शब्द-जाल और दुर्बोध लिपि के कारण हिन्दी से अलग-थलग दिखती है। वे कहते हैं कि उर्दू तो भारत की ही उपज है। उनके शब्द हैं -''जनभाषा हिन्दी में अरबी-फारसी के मेलजोल से मुसलमानी रंगत आ गयी। उसी को मुसलमान भाई उर्दू कहने लगे। खड़ी बोली के क्षेत्र में उर्दू पैदा हुई। वास्तव में वह खड़ी बोली का ही मुसलमानी रूप है। उसके क्रियापद, अव्यय, मुहावरे, तद्धित, कृदन्त आदि हिन्दी व्याकरण के अत्यन्त निकट हैं।'' साहित्य को परिभाषित करते हुए शिवपूजन सहाय जी ने 'साहित्य' नामक अपने निबंध में लिखा है- ''साहित्य बड़ा ही व्यापक अर्थ रखने वाला एक गौरवपूर्ण शब्द है। यह विश्वजनीन भाव का द्योतक है, विश्वबंधुत्व का संदेशवाहक है, देश और जाति के जीवन का रस है, समाज की आंतरिक दशा का दिव्य दर्पण है, सभ्यता और संस्कृति का संरक्षक है। इसमें सहित का भाव है। अतएव यह अपने में सबकुछ समेटे हुए है, जो मानव जाति के जीवन के लिए हितकर, सुखकर

और श्रेयष्कर है।''

'हिन्दी में हास्य रस की कविता', 'हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य विनोद', 'हिन्दी कवियों का फाग वर्णन', 'हिन्दी साहित्य में मध्य भारत में अतीत और वर्तमान', 'हिन्दी साहित्य का अभ्युदय और उत्कर्ष', 'हिन्दी में हिन्दी और हिन्दुस्तानी', 'नाटक', 'वंगीय रंगमंच का इतिहास', 'बंगाल के संगीतज्ञ', 'हिन्दी साहित्य का तीर्थ निर्माण' 'प्रसाद की भविष्यवाणी', 'संस्कृत शिक्षा की उपेक्षा', 'बिहार के कॉलेजों में हिन्दी की पढ़ाई', 'आचार्य शुल्क की सर्वप्रथम मौलिक रचना', 'हिन्दी में अंग्रेजी साहित्य का इतिहास' आदि उनके प्रमुख साहित्यिक और सांस्कृतिक निबंध हैं। 'पन्द्रह अगस्त का यथार्थ-आत्म निरीक्षण का दिन', 'स्वतंत्रता की मनोवृत्ति', 'प्रजातंत्र और शिक्षा', 'प्रजातंत्री देश का सबसे पहला काम', 'प्रजातंत्र और साहित्य' आदि उनके प्रमुख राजनीतिक निबंध हैं, जिनमें एक लोकतांत्रिक देश की विशेषताओं और चुनौतियों का समग्र रूप से वर्णन हुआ है। 'सम्पादक के अधिकार' शीर्षक निबंध शिवपूजन सहाय का एक ऐसा निबंध है जिसमें सम्पादकीय विभाग के सामूहिक प्रयासों तथा जिम्मेवारियों का विस्तार से उल्लेख किया गया है। लेखक और प्रकाशकीय संबंधों पर भी सहाय जी के कुछ पठनीय निबंध हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिवपूजन सहाय हिन्दी के निबंधकारों में अग्रपांक्तेय हैं। अकादमिक शिक्षा बहुत नहीं होने के बावजूद, जीवन के संघर्षों से उन्होंने व्यापक अनुभव हासिल करते हुए अपने साहित्य को बहुआयामी और व्यापक फलक वाला बना पाने में पूरी कामयाबी हासिल की। उनके व्यक्तित्व की सरलता, सहजता, सरसता, एवं स्पष्टता का ही यह परिणाम है कि उनके निबंधो की भाषा में लालित्य के बावजूद मुहावरेदानी और एक खास किस्म की अनगढ़ता दिखती है। अनुप्रासिकता उनके भाषा का श्रृंगार है, जो कहीं भी प्रवाह को बाधित नही करती। वैचारिक स्तर पर भी सहाय जी के निबंधों में तथ्यपरकता और यथार्थबोध तो है ही, नवयुग के चिन्तन की स्पष्ट पगध्वनि भी सुनाई पड़ती है। शिवपूजन सहाय जी साहित्य जगत् के 'अजातशत्रु' माने गये हैं। राजनीतिक क्षेत्र में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद को उनकी लोकप्रियता सहजता, सौम्यता और विद्वता के कारण अगर 'देशरत्न' का गौरव प्रदान कर सुशोभित किया गया, तो शिवपूजन सहाय जी को साहित्यिक जगत् में महाप्राण निराला द्वारा प्रदान किया गया 'साहित्यभूषण' का विशेषण भी उनके व्यक्तित्व की अस्मिता और गरिमा के सर्वथा अनुकूल था।

डॉ॰ सुनील कुमार पाठक, राज्यपाल के जनसम्पर्क पदाधिकारी, आवास संख्या–जी॰–3,
ऑफिसर्स फ्लैट, भारतीय स्टेट बैंक के समीप, न्यू पुनाई चक, पटना–800023,
मो॰–9431283596, ई–मेल–skpathakpro@gmail.com

✧ ✧ ✧

शिवपूजन सहाय की ऐतिहासिक कहानियां

गणेश चंद्र राही

शिवपूजन सहाय की कहानियाँ उस दौर में लिखी गयी हैं जब हिंदी कहानी अपनी शैशव अवस्था में थी। ढेरों साहित्यकार इस प्रभात वेला में इस नई विधा को मांजने एवं संवारने में लगे थे। किशोरी लाल गोस्वामी, प्रेमचंद, माधव राव सप्रे, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, वृंदालाल वर्मा, गिरिजादत्त वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', पंडित चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' का नाम विनम्रता के साथ लिया जा सकता है। शिवपूजन सहाय ने छोटी-बड़ी कुल सोलह कहानियाँ लिखी हैं। लेकिन ये कहानियाँ भले ही कला एवं शिल्प की दृष्टि से कमजोर लगे लेकिन कहानी के विकास एवं परंपरा को समझने में निश्चित रूप से महत्वपूर्ण हैं।

शिवपूजन सहाय हिंदी के प्रतिभाशाली साहित्यक युग - निर्माता लेखक हैं। हिंदी भाषा के साधक, उन्नायक एवं साहित्य को साधारण आदमी की दृष्टि से देखनेवाले दृष्टा हैं। यद्यपि उनका साहित्य बहुत विशाल नहीं है। बहुत कम लिखा है। इसका कारण है कि उनके सामने सामाजिक कुरीतियां, राजनीति पाखंड, धर्म की विकृतियां, गांव में व्याप्त अंधविश्वास, ग्रामीणों की जड़ मानसिकता को दूर करना एवं करोड़ों अशिक्षित जनता को शिक्षित एवं जागरूक करने जैसे कई उद्देश्य थे। जिसके कारण उनका साहित्य सृजन की ओर कम ध्यान गया। वह संपूर्ण भारतीय समाज में परिवर्तन की लड़ाई कलम से लड़ रहे थे और पत्रकारिता उनका आधुनिक हथियार था। इसी व्यस्ततम कार्यों के बीच उनका साहित्य का सृजन हो पाता था। जिस काल में इनका लेखन कार्य हो रहा था, वह काल आधुनिक हिंदी साहित्य का निर्माण काल था। साहित्य में इन्होंने कहानी, उपन्यास, निबंध, जीवनी, एवं संस्मरण लिखा है। चूंकि इनका लेखन-क्षेत्र पत्रकारिता एवं पत्र-पत्रिकाओं का संपादन करना रहा है। यही कारण है कि इनका संपादकीय स्वरूप ही हिंदी-जगत में सबसे अधिक उभर का आता रहा और लेखकीय रूप हमेशा दबता चला गया। पत्र-पत्रिकाओं में सामयिक विषयों पर लिखे इनके सैकड़ों लेख, समय-समय पर दिया गया भाषण, पुस्तक - समीक्षा, टिपण्णी शिवपूजन सहायक-समग्र रचनावली के विभिन्न खंडों में संग्रहीत हैं।

इनके नाम से दस खंडों में प्रकाशित रचनावली से ही ज्ञात होता है कि इन्होंने कितना कुछ लिखा है। लेकिन यह सच है कि शिवपूजन सहाय को हिंदी साहित्य में उनके समकालीनों की तरह समुचित स्थान नहीं मिला। इनके साहित्यकार व्यक्तित्व को संपादकीय व्यकितत्व ने दबा दिया। फिर भी इनका जो लिखा है, वह अद्वितीय है। इनका समग्र लिखा साहित्य हिंदी नवजागरण की चेतना से पूर्ण है। इनके मन में हिंदी साहित्य के उत्थान एवं राष्ट्रीय-निर्माण का सपना रहा है। उनका चिंतन प्रगतिशील दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि इनकी कहानियों में हृदय और मस्तिष्क का संतुलन भी है।

शिवपूजन सहाय की कहानियां उस दौर में लिखी गयी हैं जब हिंदी कहानी अपनी शैशव अवस्था में थी। ढेरों साहित्यकार इस प्रभात वेला में इस नई विधा को मांजने एवं संवारने में लगे थे। किशोरी लाल गोस्वामी, प्रेमचंद, माधव राव सप्रे, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, वृंदालाल वर्मा, गिरिजादत्त वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', पंडित चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' का नाम विनम्रता के साथ लिया जा सकता है। शिवपूजन सहाय ने छोटी-बड़ी कुल सोलह कहानियां लिखी हैं। लेकिन ये कहानियां भले ही कला एवं शिल्प की दृष्टि से कमजोर लगे लेकिन कहानी के विकास एवं परंपरा को समझने में निश्चित रूप से महत्वपूर्ण हैं। वैसे इन्होंने कोई सुनियोजित तरीके से कहानी लेखन कार्य नहीं किया है। समय एवं परिस्थितियां उनकी लेखनी को पत्रकारितों के क्षेत्र में घसीट ले जाती थीं। उनके मन में जब भी कोई विचार, भाव एवं घटना का स्मरण होता, उस पर कहानी लिख देते। इस संबंध में शिवपूजन सहाय स्वयं एक जगह कहते है कि ''मैने कभी आगा-पीछा सोचकर कहानी नहीं लिखी। मन में उमंग-तरंग उठी, लिख डाली कहानी, चाहे वह कला से हीन हो या टेकनीक से शून्य। हां, कथावस्तु की कल्पना मैंने कभी नहीं की। देखे-सुने-पढ़े विषयों से ही घटना और चरित्र का मसाला जुटाता रहा। मेरी एक भी कहानी कल्पना से नहीं उतरी है। आंखें-देखी और कानों-सुनी घटनाओं से हृदय में जब जैसी भावों की अनुभूति हुई तब तैसे उदगार व्यक्त किया।'' और सबसे बड़ी आश्चर्य की बात तो यह है कि वियोगजन्य भावों से कविता एवं महाकाव्य का जन्म होना प्रचलित है। किंतु ये हिंदी साहित्य के पहले लेखक हैं जिन्होंने काल-कलवित अपनी पहली पत्नी के वियोग में पत्र लिखते-लिखते कहानी लिखने लगे। और ये इसी वियोगजन्य मन:स्थिति को कहानी लिखने की प्रेरणा मानते हैं। खैर। शिवूपजन सहाय जिस तरह कहानी के संबंध में कोई स्थित मानक तय नहीं किया था। वे किसी भी प्रकार के लोभ-लालच से सदैव दूर थे। उनमें नाम की प्रसिद्धि की भूख न थी। उनको नि:स्वार्थ भाव से साहित्य की सेवा करने में सुख मिलता था। उनमें हिंदी साहित्य में कोई बहुत बड़ा स्थान मिले, इसकी भी उनमें जरा सी भी लालसा न थी। यह नि:स्वार्थ भाव उस जमाने के लगभग सभी साहित्य साधकों का था। लेकिन आज के साहित्यकारों में इस प्रकार के भाव एवं सोच एक दुर्लभ चीज बन कर रह गयी है। इस संबंध में वे कहते है कि- ''जब मैंने कहानयिां लिखीं थीं, तब मन में रंच-मात्र भी यह अभिलाषा न थी कि कहानी लिखने में भी मुझे स्थान मिले। शायद उस युग के लेखकों में प्रतिष्ठा पाने की भावना जाग्रत न थी, अथवा पत्र-पत्रिकाओं में नाम से छपी रचना को देख लेने से ही संतोष करने की प्रवृति थी। पुरस्कार का नाम-निशान न था। पत्र-पत्रिकाओं की संख्या भी

अधिक न थी। संपादक प्राय: होनहार लेखकों को अपनाते थे। संपादक की कृपा को लेखक भी ईश्वर का वरदान समझता था। हिंदी साहित्य लेखन का यह माहौल बीसवीं सदी का है। हर साहित्यकार साधुभाव से लेखन करते थे। शिवपूजन सहायक उसी संत परंपरा के महान साधक हैं।

यहां हम शिवपूजन सहाय की ऐतिहासिक कहानियां पर विचार करेंगे। उनकी कहानियों में ऐतिहासिक कहानियां काफी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आधुनिक समय में इसकी प्रासंगिकता को लेकर चाहे जो भी सवाल उठाया जाए लेकिन इसके महत्व को ठुकराया नहीं जा सकता है। इनकी सभी ऐतिहासिक कहानियां राजपूत वीरों एवं वीरांगना नारियों के रूप, सौंदर्य, शौर्य एवं बलिदान की गाथा पर आधारित है। इन्होंने इन ऐतिहासिक कहानियों की कथावस्तु 'राजस्थान टॉड' पुस्तक पढ़कर जुटायी गयी है। इस संबंध में उन्होंने स्वीकार भी किया है कि खड़गविलास प्रेस वाला पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा और वेकंटेश्वर प्रेसवाला पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र का 'राजस्थान टॉड' पढ़ा तो 'मुंडमाल', 'विषपान' जैसी ऐतिहासिक कहानियां लिख डाली। 'मुंडमाल' और 'सतीत्त्व की उज्ज्वल प्रभा' एक ही कथा के दो भाग समझना होगा। दो घटना प्रसंगों को अलग- अलग कहानी का रूप दिया है। उनकी सबसे श्रेष्ठ ऐतिहासिक कहानी 'मुंडमाल' है। यह कहानी 1918 ई में 'आर्य-महिला' में प्रकाशित हुई थी। य़द्यपि यह कहानी 1916 में लिखी गयी है। यह कहानी औरंगजेब के अत्याचार, नारी के शीलहरण, राजपूत वीरों के पराक्रम, मातृभूमि प्रेम, त्याग एवं बलिदान को सामने लाती है। कहानी वातावरण निर्माण से शुरू होती है। जिसमें उदयपुर में दिल्ली के बादशाह औरंगजेब से लड़ने के लिए राणा राजसिंह के सरदार चूड़ावतजी अपने बहादुर सेना के साथ प्रस्थान करने की तैयार कर रहे हैं। चारों तरफ युद्ध के नगाड़े और बाजे बज रहे हैं। आकाश शंखनाद से गूंज रहा है। हर तरफ चहल-पहल है। वीरों में उत्साह का संचार हो रहा है। भुजाएं फड़क रही हैं। इधर चूड़ावतजी का विवाह हाड़ा-वंश की राजकुमारी से हुआ है। विवाह किए मुश्किल से चार दिन हुए हैं। उसके हाथ, पांव एवं अंगों में अभी भी विवाह के चिन्ह बचे हैं। उस परम सुंदरी का मोह चूड़ावतजी को सता रहा है। उसके कदम आगे नहीं बढ़ रहे हैं। महल की खिड़कियों की ओर उनका बार-बार ध्यान रूपवती हाड़ी-रानी पर जा टिक रहा है। वह अंदर से कमजोर हो रहे हैं। यह क्षत्रिय धर्म नहीं है। नवोढ़ा पत्नी का एक ओर आकर्षण एवं दूसरी ओर युद्ध की स्थिति और वापस न लौट पाने की उम्मीद ने भी चूड़ावत जी को असमंजस में डाल दिया है। नवोढ़ा पत्नी को परिस्थिति को समझने में देर नहीं लगी। उन्होंने पति को महाराणा प्रताप के पराक्रमों एवं दुश्मन की ओर बढ़े कदम को कभी पीछे नहीं वापस करनेवाले संकल्पों को याद दिलाया। चूड़ावतजी की उम्र उस समय मात्र अठारह वर्ष थी। हृदयहारिनी हाड़ारानी उसका मोह भंग कर क्षत्रिय धर्म का पालन करने का निवेदन करती है। युद्ध की तैयारी के पीछे का कारण था औरंगजेब का रूपनगर पर धावा बोलने आना। और रूपनगर की राजकुमारी प्रभावती से जबरन विवाह करना। यह बात चितौड़ के राजाओं की शान एवं मर्यादा के खिलाफ थी। इसे रोकने के लिए चूड़ावतजी जा रहे थे। पति के मन को डांवाडाल होते देखकर हाडी-रानी अनुनय करती है- '' प्राणनाथ! सत्य और न्याय की रक्षा के लिए लड़ने जाने के समय सहज सुलभ सांसारिक सुखों की बुरी वासना को मन में घर करने देना आपके समान प्रतापी क्षत्रिय कुमार का काम नहीं है। आप-आपाद मनोहर सुख

के फंदे में फंसकर अपना जातीय कर्तव्य मत भूलिए। सब प्रकार की वासनाओं और व्यसनों से विरक्त होकर इस समय केवल वीरत्व धारण कीजिए। मेरा मोह छोड़ दीजिए। भारत की महिलाएं स्वार्थ के लिए सत्य का संहार करना नहीं चाहतीं। आर्य-महिलाओं के लिए समस्त संसार की सारी संपत्तियों से बढ़कर सतीत्व ही अमूल्य धन है।'' हाड़ी-रानी उसे अपने कर्तव्य पथ पर से विचलित नहीं होने देने और क्षत्रिय नारियों के इतिहास का सत्य भी बताती है-'' जिस दिन मेरे तुच्छ सांसारिक सुखों की भोग-लालसा के कारण मेरी एक प्यारी बहन का सतीत्व-रत्न लुट जायेगा, उसी दिन मेरा जातीय गौरव अरावली शिखर के ऊँचे से गिरकर चूर-चूर हो जायेगा। लेकिन इतनी बातों को सुनने और घोड़े पर सवार होने के बाद भी चूड़ावतजी का ध्यान पत्नी के सौंदर्य से नहीं हटा। उन्होंने अपने एक सूचक से पत्नी से कोई चिन्ह मांग कर लाने को कहा। इस पर हाड़ी-रानी कटार से अपना सिर काट कर सूचक के हाथों में थमा देती है। वह जमीन पर धड़ाम से गिर पड़ती है। उधर चूड़ावतजी पत्नी का सिर गले में माला के रूप पहन लेते है। और प्रसन्न होकर युद्ध के लिए निकल पड़ते है। मुंडमाल कहानी की संक्षिप्त कथा बस इतनी सी है। यह कहानी नारी के वीरत्व एवं सतीतव को केंद्र में रख कर लिखी गयी है। जिसमें हाडा रानी के देश एवं जातीय गौरव की रक्षा के लिए महान बलिदान का राज छुपा है।

'सतीत्व की उज्ज्वल प्रभा' कहानी का रचनाकल 1916 है। लेकिन इसका प्रकाशन 1919 में 'लक्ष्मी' पत्रिका में हुआ है। यह कहानी का प्रसंग रूपनगर से जुड़ा है। मुंडमाल में इस प्रसंग का संकेत दिया हूँ। रूपनगर की राजकुमारी जिसे अपूर्व सुंदरता के कारण 'प्रभावती' नाम से प्रसिद्ध है। उसके इस रूप और सौंदर्य का नाम दिल्ली के बादशाह औरंगजेब के कानों तक पहुंच गया है। जिसे सुनकर उसका मन प्रभावती को पाने के लिए बेचैन हो उठा है। उसकी नींद उड़ गई है। गंगा की तरह निर्मल प्रभावती राठौर वंश की कन्या है। उनके पिता सामंत-राज राजा राज सिंह का एक सरदार है। रूपनगर उस समय औरंगजेब की सल्तनत के अधीन था। उसकी अधीनता वहां राजपूत वीरों ने स्वीकार कर ली थी। उनका खौलता हुआ देशभिमान का खून ठंडा हो गया था। जिससे राजपूतों की इस कुलीन कन्या पर वज्राघात होनेवाला था। बादशाह औरंगजेब के रूप से उन्मत्त हो उठा था। वह इससे जबरन विवाह करने अपने सैनिकों के साथ रूपनगर पर हमला करने आ रहा था। इसे रोकना जरूरी था। वहीं सबसे बड़ा प्रश्न प्रभावती के सतीत्व की रक्षा का था। मारवाड़ नरेश बादशाह के चापलूस बन गये थे। उनसे प्रभावती के सतीत्व की रक्षा की उम्मीद न थी। मेवाड एवं वहां बहू-बेटियां एक प्रकार से असुरक्षित हो गयी थीं। महाराणा राज सिंह का जब दरबार लगा था। उस समय एक ब्राम्हण प्रभावती का एक पत्र लेकर आया। उसने राजा को दिया और राज सिंह उस दीन-याचना से भरे पत्र को पढ़ कर बहुत भावुक हुए। उनकी आंखों से आंसू गिरने लगे। प्रभावती ने राज सिंह को पाणीग्रहण करने के लिए याचना की थी। क्षत्रिय कुल की हस कन्या के सतीत्व बचाने के लिए उन्होंने प्रार्थना की थी। उसके पत्र पढने के बाद सामंत राज सरदार चूड़ावतजी अपने वीर लड़ाके घुड़सवारों के साथ बादशाह की राह रोकने निकल पड़े। राज सिंह ने प्रभावती के निवेदन को स्वीकार कर लिया था। चूड़ावतजी उस युद्ध में मारे गये थे। शेष वापस लौटे राजपूत वीरों का उदयपुर में नागरिकों द्वारा भव्य स्वागत किया गया था। इस प्रकार राज सिंह ने

रानी के रूप में स्वीकार कर राजपूत कन्या का सतीत्व बचा लिया। खुशी के माहौल में राज सिंह और प्रभावती महल की खिड़की पर मुस्करा रहे थे। इस प्रकार प्रभावती की लाज बची। राजपूती खून की कन्या मलेच्छों के हाथ नहीं लगी।

तीसरी कहानी 'विषपान' है। इस कहानी का रचनाकाल 1916 है। जबकि यह कहानी 'लक्ष्मी' में 1918 में प्रकाशित हुई है। यह कहानी भी राजपूत कन्या के सतीत्व से जुड़ी है। राजा भीम सिंह जो एक सामंत-राज है, उसकी स्वर्गीय सौरभ से भरी अत्यंत रूपवान बेटी है कृष्णा कुमारी। इसके इस सौंदर्य की शीतल छांह का सुख लेने के लिए आतुर है जयपुर नरेश जगत सिंह। इसने कृष्णा को पाने क लिए उदयपुर में बहुत बड़ी सेना खड़ी कर दी है। लेकिन दूसरी ओर जगत सिंह का दुश्मन है मान सिंह। दोनों में काफी ईर्ष्या है। चिंता की बात तो यह है कि दोनों कृष्णा कुमारी को पाना चाहते हैं। राजा अजित सिंह कायर और नपुंसक हो गया है। वह इन दोनों से 'राजस्थान कमलिनी' की रक्षा कर पाने में असमर्थ है। मेवाड़ की भूमि मानो वीरों से रहित हो गयी है। अजित सिंह विरोधियों से मिला हुआ है। इधर लाचार बाप भीम सिंह बेटी की आबरू को लेकर बेहद परेशान एवं चिंतत है। भीम सिंह उस समय कटे वृक्ष की तरह भूमि पर धड़ाम से गिर पड़ता है जब राजा अजित सिंह कृष्णा कुमारी की दुश्मनों से रक्षा करने के वजाय राज्य की शांति एवं सम्मान के लिए उसकी हत्या करने का निर्णय लेता है। पिता तुल्य भीम सिंह की वेश्या के पुत्र जवन दास यह निर्णय सुनने के बाद कृष्णा के पास आता है। उसका चेहरा उदास है। उसकी माता एवं राज महल के सभी लोग काफी दुखी होते हैं। एक क्षत्रिय कुल की कन्या को जगत सिंह और मान सिंह जैसे स्वजातीय गिद्धों से बचाने वाला कोई वीर नहीं है। यह मेवाड़ के लिए दुर्भाग्य के अलावा और क्या हो सकता है। अपनी माता को बेहद चिंतित एवं रोते विलखते देख कर कृष्णा कुमारी कहती है- ''जननी ! तू वीर-माता और वीर-वधू होकर इस प्रकार क्यों अधीर हो रही है? राजपूत कन्या होकर मुझे मौत से डरने का क्या काम? जिस दिन मैंने राजपूत कुल में जन्म धारण किया, उसी दिन मेरे भाग्य विधाता ने यह अंकित कर दिया कि अकाल अथवा अपघात से एक दिन निश्चिय ही मरना पड़ेगा। राजपूतों की दु:ख भागिनी कन्याएं तो जन्म लेते ही नमक चटा कर मार डाली जाती थीं, किंतु न जाने मैं किस सुख की आशा में, इतने दिनों तक लाड़-प्यार से पाली गई थी।'' कृष्णा का तेजपुंज ज्वाला एक बार प्रज्वलित हो उठा। बुझते दीपक की लौ-सी सुंदर मुस्कान के बाद 'राजस्थान की कमलिनी' सदा के लिए मुर्झा गई। कृष्णा को विष का पहला प्याला दासी ने लाकर दिया और उदयपुर के कल्याण की कामना करते हुए पीने को कहा। लेकिन वह विष के पहले प्याले पीने के बाद मरती नहीं है। राजा अजित सिंह के आदेशानुसार उसे चार बार विष पीने के लिए दिया जाता है। अंतिम प्याला पीने के बाद उसकी कांतिमय देह भूमिसात हो जाती है। उसकी इस संसार की लीला समाप्त हो जाती है। और अजित सिंह दुश्मनों से अपने राज की इज्जत बचा लेता है। उसे किसी से युद्ध करना नहीं पड़ता। एक खिलती हुई कली को कुचलवा कर सदा के लिए उसने अपने माथे पर कायरता का कलंक लगा लिया।

तीनों ऐतिहासिक कहानियों में केंद्रीय तत्व नारी का सतीत्व है। उसकी अस्मिता की रक्षा का प्रश्न है। राज-घराने की बहू-बेटियां मुगलों के जमाने में कितनी असुरक्षित रहती थी, महलों में

किस तरह अपनी मान-मर्यादा के चलते मार दी जाती थी और कुल की रक्षा के नाम पर किस प्रकार किसी राजा के अंक में चली जाती थी, इन कहानियों से जाना जा सकता है। यह ठीक है कि भारतीय नारी अपने सतीत्व को लेकर सती हो जाती थी लेकिन पर पुरुष की अधीनता स्वीकार नहीं करती थी। उसकी देह को बादशाह औरंगजेब स्पर्श नहीं कर पाता है। इसी तरह जायसी के 'पदमावत' महाकाव्य में नागमती और पदमावती सती हो जाती हैं लेकिन सुल्तान की छाया भी उन तक नहीं पहुंच पाती। इसे एक पतिव्रता स्त्री का धर्म कह सकते हैं। इसी तरह झांसी की रानी अंग्रेजों के हाथों मारी गयी लेकिन अपने देशभक्ति पर आंच नहीं आने दी। हिंद-नारियों के सतीत्व को अमूल्य-धन एवं आभूषण माना गया है। ये वीरांगनाएं त्याग, प्रेम, आत्म-बलिदान के अलावे कठिन परिस्थितियों में अपने उज्ज्वल चरित्र की रक्षा प्राणों को देकर भी करना जानती हैं। शिवपूजन सहाय ने इन नारियों को इतिहास के पन्नों से बाहर निकाल कर साहित्य-जगत में लाकर

शिवपूजन सहाय की कहानियां नवजागरण काल में लिखी गयी है। जब भारतीय मनीषा अपने इतिहास के उन जीवंत, मूल्यवान एवं वीरत्व के मूल्यों की समीक्षा कर रही थी। उस समय ऐतिहासि कहानियाँ न के बराबर लिखी गयी है। हाँ, उपन्यासों, कविताओं, निबंधों, राजे-रजवाड़े की जीवनी एवं संस्मरणों के माध्यम से साहित्य में ऐतिहासिक कथाएं लिखी जा रही थीं। लेकिन यह भी एक कटु सत्य है कि आधुनिक हिंदी कहानी लेखन में ऐतिहासिक कहानियाँ लिखने की परंपरा शिवपूजन सहाय के बाद लगभग समाप्त हो गयी। इसका एक सीधा कारण तो यही जान पड़ता है कि ऐसी कहानियों की प्रासंगिकता रही नहीं। इसका सामयिक पाठक-वर्ग होता है, शिवपूजन सहाय ने कथा-साहित्य में ऐतिहासिक विषयवस्तु पर कहानी लिखने की परंपरा उसी तरह शुरू की जिस प्रकार प्रेमचंद ने यथार्थवादी कहानी लिखने की।

उनके चरित्र को और उज्ज्वल कर दिया। इन्हें नव-जीवन प्रदान किया। जो स्वतंत्रता आंदोलन में अंग्रेजों के खिलाफ लड़नेवाली महिलाओं के लिए प्रेरणा स्तंभ बनीं। जातीय गौरव और मातृभूमि के प्रति अथाह प्रेम इन कहानियों में भरा है। उन्होंने राजकुल की इन नारियों की पीड़ा को भी समझा। भारतीय राजपूत नारियों ने अपने कुल एवं मर्यादा को बचाने में महल के सुख-वैभव, प्रेम एवं ऐश्वर्य की कोई परवाह नहीं की। अपनी मातृभूमि के लिए बलिदान करने से नहीं चूकती यह कहानी हमारे भारतीय स्वाभिमान को जगाती है और गुलाम भारत की जनता में त्याग-बलिदान की प्रेरणा देती है। ऐसी आजादी की चेतना जगाने में ऐसी कहानियों समय की मांग थी। वहीं भारतीय नारी के सौंदर्य एवं शौर्य को सामने लाती है जो मुगल बादशाहों के खिलांफ हमेशा लोहा लेने को उद्धत रहीं।

आधुनिक कथा-साहित्य में कुलीन नारियों की जगह साधारण नारियों के दुख, पीड़ा, स्त्री-पुरुष की समानता एवं अधिकार, प्रेम एवं मानवता की चिंता अधिक है। मानव जीवन का यथार्थ आज की कहानियों की विशेषता है। समय के साथ साहित्य का चलना ही उसकी जीवंतता का सबूत होता है। लेकिन कभी-कभी अपने इतिहास को भी समझना जिससे अपने समय को नयी स्फूर्ति एवं चेतना को नवगति मिले। हाडा-रानी, प्रभावती एवं कृष्णा भले ही राजकुल उदभव कन्या हैं लेकिन मान-सम्मान एवं सतीत्व का सवाल हर काल की नारियों का एक ही रहेगा। दृष्टिकोण बदल सकता है। सामाजिक ढांचा में परिवर्तन हो सकता है। शासन और सत्ता भिन्न हो सकते हैं। लेकिन किसी नारी के अस्मत लूटनेवाले का हमेशा विरोध होगा। समाज में उसकी स्वीकृति नहीं मिलेगी। राजघराने की बेटियों एंव बहुओं की जिंदगी इन कहानियों से लगता है कभी सुखदायक नहीं रही। राजाओं ने कही अपनी राज की रक्षा एवं शांति व्यवस्था को बनाये रखने के लिए अपनी बहुओं एवं बेटियों का दुश्मनों के हाथों सौदा किया, कही उसको पाने व रक्षा के लिए सैकड़ों युद्ध लड़ते रहे। जयशंकर प्रसाद का नाटक ध्रुवस्वामिनी में रामगुप्त भी इस प्रकार का सौदा करता हैं। वह राज को बचाने के लिए राज्य पर धावा बोलने वाले दुश्मन को ध्रुवस्वाभिनी सौंपने को राजी हो जाता है जिसे वीर योद्धा चंद्रगुप्त को बचा लेता है।

शिवपूजन सहाय की कहानियां नवजागरण काल में लिखी गयी है। जब भारतीय मनीषा अपने इतिहास के उन जीवंत, मूल्यवान एवं वीरत्व के मूल्यों की समीक्षा कर रही थी। उस समय ऐतिहासि कहानियां न के बराबर लिखी गयी है। हां, उपन्यासों, कविताओं, निबंधों, राजे-रजवाड़े की जीवनी एवं संस्मरणों के माध्यम से साहित्य में ऐतिहासिक कथाएं लिखी जा रही थीं। लेकिन यह भी एक कटु सत्य है कि आधुनिक हिंदी कहानी लेखन में ऐतिहासिक कहानियां लिखने की परंपरा शिवपूजन सहाय के बाद लगभग समाप्त हो गयी। इसका एक सीधा कारण तो यही जान पड़ता है कि ऐसी कहानियों की प्रासंगिकता रही नहीं। इसका सामयिक पाठक-वर्ग होता है, शिवपूजन सहाय ने कथा-साहित्य में ऐतिहासिक विषयवस्तु पर कहानी लिखने की परंपरा उसी तरह शुरू की जिस प्रकार प्रेमचंद ने यथार्थवादी कहानी लिखने की। यद्यपि इनकी अंतिम कहानी 'कहानी का प्लॉट' इतिहास और यथार्थ को प्रस्तुत करती है। लेकिन भगजोगनी के माध्यम से भारतीय समाज का कठोर यथार्थ प्रकट हुआ है। इनकी ऐतिसाहिक कहानी मूड की कहानियां है। युग पराधीनता की चेतना से भरा था। देशवासियों में जोश भरनेवाली, महिलाओं में त्याग एवं बलिदान का तेज जगानेवाली कहानियों की सामयिक जरूरत थी। यह भारत जनता की आत्म परीक्षा का दौर था। जयशंकर प्रसाद के सभी नाटक इसका उदाहरण है। उनके सभी नाटक ऐतिहासिक विषयवस्तु पर आधारित हैं। उनमें ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथा के नायकों यथा- चंद्रगुप्त, समुद्र गुप्त, अजातशत्रु, सिंकदर, सेल्यूकश, कार्नेलिया, हैं तो हिंदी क काव्यों में राम, कृष्ण, अर्जुन, भीम, अभिमन्यु, कर्ण, राजा शिवि, महाराणा प्रताप, जैसे महान हस्तियों की वीरता का चित्रण हुआ है। कहने का तात्पर्य है कि हर विधा में ऐतिहासिक कथा एवं चरित्र का चित्रण अनिवार्य-सा दिखायी पड़ता है। लेकिन सबसे बड़ी चिंता की बात तो यह कि शिवपूजन सहाय की ऐतिहासिक कहानियों का निष्पक्ष मूल्यांन नहीं हुआ। राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में ये कहानियां कहां

तक सार्थक हैं, इस पर विचार-विमर्श नहीं किया गया। इसका एक कारण तो हिंदी आलोचना का एकांगी दृष्टिकोण रहा है। आधुनिक हिंदी कहानियों की ऐतिहासिक परंपरा एवं मूल्यांकन के क्रम में इनकी कहानियों की समुचित चर्चा तक नहीं की जाती है। यह साहित्य के इतिहास लेखकों की विडबना है। फिर भी मुंडमाल, कहानी का प्लाट और देहाती दुनिया ने उन्हें हिंदी साहित्य के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान दिलाया है। उनकी कोई परंपरा नहीं है। क्योंकि वह तो स्वयं परंपरा को जन्म देनवाले लेखकों में रहे हैं। आधुनिक समाज देशभक्ति की संवेदना से शून्य होता जा रहा है। हाडा-रानी जैसी तेजिस्वी नारियां इस देश के रत्न के समान है। सीता, उर्मिला, झांसी की रानी, जैसी त्याग एवं आत्मबलिदान की मूर्ति भारतीय संस्कृति के अमर कथा की तरह हैं। शिवपूजन सहाय अपने जमाने में इस प्रकार की कहानियां लिख कर देशवासियों को जाग्रत कर रहे थे। वह जीवन-मूल्य एवं धन के मूल्य का अंतर करना बता रहे थे।

शिवपूजन सहाय की अन्य कहानियों में भारतीय नारी के संघर्ष, पारिवारिक जीवन, यथार्थ पर जोर, प्रगतिशील दृष्टिकोण देखा जा सकता है। सामाजिक सुधार एवं भारतीय गरिमा की रक्षा भी इन सा माजिक कहानियों में मिलता है। वे ग्राम जीवन से आए थे। सदियों की ग्रामीण व्यवस्था की सड़ांस के स्वयं भोक्ता थे। सामंती समाज में नारियों की बदहाली का चित्रण 'कहानी का प्लॉट में' हुआ है। अनमेल विवाह, आर्थिक विषमता से पैदा हुई गरीबी, बेबसी, बेरोजगारी, अशिक्षा, अंधविश्वास, जड़ता के खिलाफ नयी दृष्टि व विचार इनकी कहानियों में मिलते हैं।

शिवपूजन सहाय की ऐतिहासिक कहानियों की भाषा काफी काव्यात्मक है। प्रसंगानुकूल कथा का वर्णन किसी काव्य से कम नहीं है। अलंकृत भाषा इन कहानियों को पढ़ते वक्त एक ओर जहां मन में उल्लास एवं जोश पैदा करती हैं, वहीं अतिशयता कथा को आच्छादित करने लगती है जिससे मुख्य कथा से ध्यान हटने लगता है और काव्यात्म सौंदर्य में मन रीझने लगता है। कहानियां मुगल काल के दिनों और युद्धों का वातावरण तैयार करने में सफल है। विशेषणों, अलंकारों, रूपकों की भरमार है। भाषा के इन निकुंजों में एवं सौंदर्य की सरिता में भाव बड़े दिव्य लगते हैं। फिर भी इतने भारी भरकम तत्सम शब्द युक्त वाक्यों के भावार्थ तक पहुंचने में अलंकृत शब्दावलियां बोझिल-सी लगती हैं। कहानी में भाषा का रचाव घनी सुंदर पुष्पित वृक्षों की तरह है। मन को मोहती है किंतु एक भाव को समझने के लिए लेखक विशेषणों की झड़ी लगा देता है। बावजूद यह हिंदी भाषा के परिमार्जन और विकास का भी काल है। खड़ी बोली साहित्य के क्षेत्र में अपनी पहचान के लिए संघर्ष कर रही थी। अंत में इतना ही कहना अलम समझता हूँ कि अपने देशकाल को जीवंत करतीं ये कहानियां हिंदी की धरोहर हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी भारतीय समाज एवं हिन्दी के पाठकों को दर्पण की तरह ऐतिहासिक सच्चाई दिखाती रहेंगी।

गणेश चन्द्र राही, ग्राम : डुमर, पोस्ट : जगन्नाथ धाम, जिला : हजारीबाग–825317, झारखंड
मो. : 9939707851

आचार्य शिवपूजन सहाय और उनका लोक साहित्यानुराग

डॉ. सत्यप्रिय पाण्डेय

आचार्य शिवपूजन सहाय सही अर्थों में लोक साहित्यानुरागी लेखक थे। उन्होंने न केवल लोक साहित्य के महत्व को समझा बल्कि अपने समकालीन लेखकों को प्रेरित किया कि वे लोकभाषा और लोक साहित्य का यथासंभव संवर्धन और संरक्षण करें। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के माध्यम से उन्होंने लोक साहित्य और लोक भाषा की न केवल श्रीवृद्धि की बल्कि उसका विपुल भंडार भी सुरक्षित एवं संरक्षित किया। उनकी चेतना में लोक प्रेम गहरे पैठा हुआ था वैसे ही जैसे त्रिलोचन ने तुलसी के बारे में कहा था- 'मेरी सजग चेतना में तुम रमें हुए हो।' सहाय जी ने ग्राम सुधार पर बल दिया, उसकी दुरवस्था को रेखांकित किया। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के बहाने ही सही, बिहार का यह सौभाग्य ही था कि शिवपूजन सहाय के रूप में उन्हें एक ऐसा रत्न मिला जिसने दुर्लभ साहित्य और उसकी पांडुलिपियों को सुरक्षित और संरक्षित करने का वीड़ा उठाया। उन्होंने बड़े मनोयोग से न केवल लोकभाषा के रचनाकारों की रचनाओं को खोजा बल्कि उसे परिषद् की विभिन्न भाषा योजनाओं के माध्यम से प्रकाशित किया। उनकी इस भाषा योजना की कड़ी में 'भाषा निबंधावली' के प्रकाशन जैसी महत्वपूर्ण योजना देखी जा सकती है जिसके अंतर्गत चतुर्दश भाषा निबंधावली, पंचदश लोकभाषा निबंधावली जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ शामिल हैं जो मूलत: लोकभाषाओं की श्री वृद्धि हेतु ही प्रकाशित किये गये हैं और जिसमें विविध लोकभाषाओं के लोकसाहित्य के माध्यम से उसकी क्षमता और रचनात्मकता

इस तरह से आचार्य शिवपूजन सहाय ने हिन्दी के साथ साथ लोकभाषाओं के महत्व को न केवल रेखांकित किया बल्कि उसके रचनाकारों का उत्साहवर्धन करते हुए उनकी रचनाओं को परिषद् के माध्यम से प्रकाशित किया और इस प्रकार लुप्त हो रही साहित्य की अमूल्य धरोहर को भावी पीढ़ियों को सौंपने का श्रेयष्कर कार्य किया। उनके बाद भी परिषद से लोक साहित्य की महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित होती रहीं जिनमें 'अंगिका संस्कार गीत' और 'मगही-भाषा और साहित्य' जैसी पुस्तकें शामिल हैं। इसे उन्हीं की संकल्पना के विकास क्रम के रूप में देखा जा सकता है। इस रूप में आचार्य शिवपूजन सहाय का योगदान अविस्मरणीय और अनुकरणीय है।

को दिखाया गया है। दरअसल यह कार्य एक लोक भाषा प्रेमी ही कर सकता था जो लोक साहित्य के मर्म को जानता समझता हो, उसके रस में आकंठ डूबा हो और उसकी पिपासा अतृप्त हो। चतुर्दश भाषा-निबंधावली पुस्तक के वक्तव्य में वे लिखते हैं- इस तरह विविध भारतीय भाषाओं और उपभाषाओं से थोड़ा बहुत परिचय प्राप्त करके हिन्दी पाठक भाषा तत्त्व के अनुरागी बनेंगे ही, यह भी देख सकेंगे कि सभी स्वदेशी भाषाओं के साहित्य में भारतीय संस्कृति की पुनीत धारा किस प्रकार अन्तः सलिला की भाँति प्रवाहित हो रही है।' परिषद् की ही 'प्रकीर्णक पुस्तक माला' योजना के प्रथम पुष्प के रूप में 'बांसरी बज रही है' पुस्तक का प्रकाशन हुआ जिसके संकलनकर्ता जगदीश त्रिगुणायत ने बड़े मनोयोग से मुंडा लोकगीतों का संकलन किया है। शिवपूजन सहाय जी उनके इस श्रम की सराहना करते हुए लिखते हैं कि- 'आदिवासी क्षेत्र में राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार और उस जनपद के लोकसाहित्य का उद्धार ही आपके जीवन का मुख्य व्रत एवं दृढ़ संकल्प है। संतोष का विषय है कि आप बरसों से वही काम कर रहे हैं, जो पहले विदेशी विद्वान किया करते थे। ऐसी प्रवृत्ति के लेखक ही हिंदी के अभावों की पूर्ति कर सकते हैं। आपके उत्साह और अध्यवसाय को भगवान सफल करें।' यह सच है कि भारत में लोक साहित्य के संकलन सम्पादन का कार्य सर्वप्रथम विदेशी विद्वानों ने ही किया जिसमें विलियम क्रूक्र और ग्रियर्सन जैसे विद्वानों का नाम लिया जा सकता है। बहुत बाद में इस ओर भारतीय विद्वानों की दृष्टि पड़ी चाहे वह रामनरेश त्रिपाठी हों, झबेरचंद मेघाणी हों, देवेन्द्र सत्यार्थी हों या बाद में इसी कड़ी में जुड़ने वाले श्री जगदीश त्रिगुणायत हों। भोजपुरी में यह कार्य कृष्ण देव उपाध्याय ने किया, दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह ने किया और मैथिली में राम इकबाल सिंह ने किया। सहाय जी ने इन सभी लेखकों की भूरि भूरि प्रशंसा की है, इसके प्रमाण हेतु उनका यह कथन देखें जिसमें वे लिखते हैं कि- 'बिहार की जनपदीय बोलियों में जो सरस करुण साहित्य बिखरा पड़ा है उसके संकलन में भी बिहार के कई साहित्य - सेवी संलग्न हैं। श्री राम इकबाल सिंह राकेश ने मैथिली और भोजपुरी लोकगीतों का संग्रह तथा सविधि सम्पादन करने में बड़ा सराहनीय प्रयत्न किया है। उनके दो संग्रह निकल चुके हैं- एक प्रयाग के सम्मलेन से और दूसरा पटना के ग्रंथमाला कार्यालय से। उनके पास लोकगीतों का अति वृहत संग्रह तैयार है, पर गुणग्राहक या चाहक कोई नहीं। मोतिहारी के पंडित गणेश चौबे ने भोजपुरी- ग्रामगीतों के अतिरिक्त लोकोक्तियों और मुहावरों तथा उपयोगी ग्रामीण शब्दों का भी विशाल संग्रह तैयार कर लिया है, पर वे भी प्रकाशक की ताक में पोथा लिए बैठे हैं। शाहाबादी श्री दुर्गाशंकर प्रासाद सिंह का 'भोजपुरी लोकगीत में करुण रस' नामक सुंदर ग्रन्थ भी प्रयाग के सम्मलेन से प्रकाशित हो रहा है। शाहाबाद के ठाकुर नंदकिशोर सिंह ने भी बड़े परिश्रम से भोजपुरी गीतों और कहावतों का संग्रह किया है, किन्तु उनको भी कोई प्रकाशक नहीं मिलता।' इस तरह से सहाय जी ने दिखाया कि कैसे लोक साहित्य को छापने के लिए प्रकाशक तैयार नहीं थे, उसकी उपेक्षा की जा रही थी जबकि वह हमारी अमूल्य धरोहर है। सहाय जी उसकी रक्षा के प्रति चिंतित थे और कृत संकल्प भी। लेकिन वे बिहार की लोकभाषाओं की उपेक्षा से अत्यंत क्षुब्ध थे और उन्होंने बड़े भारी मन से एक जगह लिखा है कि- 'भोजपुरी भाषा की जन्म भूमि बिहार ही है। इसके क्षेत्र का विस्तार बहुत दूर तक है मैथिली, मगही, अवधी आदि से इसके बोलनेवाले बहुत अधिक हैं। हिंदी साहित्य के इतिहासों में भोजपुरी भाषा का नाम लेने से उसी तरह परहेज किया गया है, जिस तरह देवरानी अपने जेठ का

नाम लेने से करती है। जैसे नई रोशनी से छत्तीस का नाता रखने वाली पत्नी अपने पति का नामोच्चार न कर केवल सर्वनाम से ही काम चलाती है, वैसे साहित्य के अथवा भाषा के इतिहासकार भी भोजपुरी भाषा का नामोल्लेख न कर 'पूरबी हिन्दी' से काम चलाते हैं। हमारे इतिहासकार 'पूरबी हिन्दी' के प्रसंग में 'बिहार' का नाम लेने से भी हिचकते हैं, केवल 'पूरबी' जिले कहकर पतिव्रत निबाह ले जाते हैं।' इस तरह से बिहार की लोकभाषाओं की उपेक्षा से सहाय जी को बड़ी पीड़ा थी किन्तु इसे उनकी प्रांतीयता या प्रांत भावना नहीं समझना चाहिए। इसका निराकरण करते हुए उन्होंने स्वयं कहा कि- यह भ्रम न होना चाहिए कि प्रांतीयता की प्रेरणा से ये बातें लिखी गयी हैं। मानस में सैकड़ों शब्द भोजपुरी के भी हैं किन्तु कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं पाया जाता कि 'मानस' पर किसी बिहारी भाषा का भी छींटा पड़ा है।' वैसे भी किसी लोक रचनाकार को किसी एक भाषा या लोकभाषा तक सीमित करके देखना, उसके मूल्याँकन को अधूरा और एकांगी ही बनाता है इसलिए अवधी और भोजपुरी की परस्पर श्रेष्ठता को साबित करने वाली क्षुद्र मानसिकता से मुक्त होकर ही किसी रचनाकार का यथेष्ठ मूल्यांकन हो सकता है अन्यथा इसको आधार बनाकर कुछ राजनीतिक पार्टियां प्रांतवाद और क्षेत्रवाद के नाम पर अपना उल्लू ही सीधा करेंगी, सहाय जी की दूरदर्शी दृष्टि इस खतरे को देख रही थी इसलिए उन्होंने दोनों लोकभाषाओं के बीच समन्वय स्थापित करने की कोशिश की है, जिस पर बात होनी चाहिए। यह सच है कि उस समय भोजपुरी की खासी उपेक्षा हो रही थी इसलिए उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि भोजपुरी के महत्व को हमें समझना चाहिए उसके प्रदेय को दरकिनार नहीं किया जाना चाहिए, वे मानस के हवाले से ही पुनः लिखते हैं कि- 'मानस' में भी भोजपुरी भाषा के शब्दों की भरमार है, पर भोजपुरी बिहार में जो पैदा हो गई। किन्तु उपेक्षित बिहार अपनी ही करनी का फल भोग रहा है, दूसरों का क्या दोष? ऐसी ही बात एक जमाने में हिंदी वालों के लिए भारतेंदु बाबू हरिश्चंद ने कही थी जब हिंदी वालों ने षडङ्यंत्र करके बालाबोधिनी पत्रिका बंद करवा दी थी तब उन्होंने बड़े खेद से लिखा था कि- 'इसके ना चलने का जो दुःख है वह तो कहने के बाहर है क्योंकि अपने लगाए विष वृक्ष और अपने अंक में ललित कुपुत्र का भी संसार को स्नेह होता है भला यह तो अमरलता और प्राण से भी अधिक प्रिय संतति थी। सरकार ने नये वर्ष से इसका लेना बंद किया, इसका कारण हमारी हिंदी है जो सर्वदा विरोधियों के हृदय में खटकती है। यह सच है कि बड़ों के नेत्र नहीं होते, केवल कान होते हैं अन्यथा हिंदी की यह दुर्दशा नहीं होती।' जाहिर है अंग्रेजों के कान भरने का काम हिंदी वालों ने ही किया होगा, जिसका संकेत भारतेंदु कर रहे हैं। सहाय जी ने भाषाओं के वर्गीकरण को लेकर की गयी गड़बड़ी की तरफ संकेत करते हुए लिखा है कि- केवल अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी को ही 'पूरबी हिन्दी' नाम दिया गया तथा भोजपुरी छाँटकर निकाल दी गई, ऐसा कहना असंगत प्रतीत होता है। स्पष्टतः अवधी आदि के साथ पूरबी हिन्दी में भोजपुरी भी सन्निविष्ट है। हिन्दुस्तानी की तरह पूरबी हिन्दी भी विदेशियों का दिया हुआ उपहार है। असल छूट गया, नकल पकड़ गया। बाहर के बायन में जो स्वाद है, घर के मालपुए में कहाँ? परिषद् की अन्य मूल्यवान कृतियों के अतिरिक्त 'हिंदी साहित्य और बिहार' नामक एक बड़ी ही मूल्यवान पुस्तक सहाय जी की संकल्पना और उनके अथक प्रयास से प्रकाश में आ सकी जिसकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम है। इस पुस्तक ने बिहार के रहने वाले और बिहार के

इतर के कवियों की महत्वपूर्ण रचनाओं को प्रकाश में लाने का महनीय कार्य किया है। इसके प्रथम खंड में आदिकालीन कवियों (सिद्धों की) रचनाओं को संकलित किया गया है और दूसरे खंड में मध्यकालीन बिहार के कवियों की रचनाएं संकलित हैं। तीसरे खंड में आधुनिक कालखंड की रचनाओं को संकलित किया गया है। लोक साहित्य की दृष्ट से भी यह अत्यंत मूल्यवान कार्य है क्योंकि इसमें बहुत से लोक कवियों को जगह दी गयी है जिनकी रचनाएं बड़ी ही महत्वपूर्ण एवं दुर्लभ हैं। इसके दूसरे खंड में ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली, भोजपुरी और खड़ीबोली के कवियों की रचनाएँ संकलित हैं। इस पुस्तक के संकलन और सम्पादन का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए सहाय जी इसके प्रथम खंड के वक्तव्य में लिखते हैं कि- 'वैदिक काल से आधुनिक काल तक बिहार में विविध भाषाओं के साहित्य की सृष्टि होती आ रही है। संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश, मगही, मैथिली, भोजपुरी आदि के अतिरिक्त अंग्रेजी, फारसी, उर्दू, बंगला आदि भाषाओं के साहित्य की रचना भी बिहार में हुई है। पर आज तक उसकी खोज और रक्षा का कोई संगठित प्रयत्न नहीं किया गया। अब देश के स्वतंत्र हो जाने पर यह अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि समाज की विशिष्ट प्रतिभाओं की लुप्तप्राय विभूतियों के उद्धार का प्रयत्न किया जाय।' इसी पुस्तक के तीसरे खंड में संकलित अंग्रेजी और हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान् लेखक अमरनाथ झा के लेख का एक अंश देखें जिसमें वे लिखते हैं कि- ग्राम-साहित्य साहित्य का एक बहुत बड़ा अंग है। कोई भी साहित्य जीवित नहीं रह सकता है यदि उसका मौलिक सम्बन्ध जन साधारण से न हो, परन्तु यदि किसी देश अथवा समाज की यथार्थ झलक कहीं मिलती है तो वह तीसरे प्रकार के साहित्य में। यह साहित्य बहुधा मौखिक हुआ करता है।' इस तरह से सहाय जी ने साहित्य की दुर्लभ और बहुमूल्य सामग्रियों को प्रकाश में लाने का कार्य किया और उसे सुरक्षित और संरक्षित किया। इस कार्य के द्वारा उन्होंने आगामी साहित्यिक पीढ़ी के लिए नवीन शोधों और खोजों की संभावनाओं के अनंत द्वार खोले जिसके उन्मुक्त गगन में आने वाली साहित्यिक प्रतिभाएँ खुल कर सांस ले सकीं और अपने चिंतन का विस्तार कर सकीं। सहाय जी बराबर इस बात पर जोर देते थे कि अब समय आ गया है कि पुरानी साहित्यिक सामग्रियों को खोजा जाय, उनका संकलन किया जाय तथा उनका आलोचनात्मक विवेचन भी किया जाय जिससे साहित्यिक समीक्षा का नभ विस्तृत हो सके, वे लिखते हैं- हिन्दी में अब साहित्यिक शोध कार्य बड़ी लगन से होने लगा है। साहित्यिक विषयों के सम्बन्ध में अनुसंधान करने वाले विद्वानों को प्रामाणिक शोध-सामग्री कहीं एकत्र नहीं मिलती क्योंकि अधिकांश शोध - सामग्री विभिन्न स्थानों में बिखरी पड़ी है। यदि समग्र उपलब्ध सामग्री का पूरा विवरण प्रकाशित कर दिया जाय तो शोध - सम्बन्धी कठिनाइयाँ बहुलांश में दूर हो सकती हैं।' इस तरह से उन्होंने बहुत सी प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण भी प्रकाशित किया जिसके कई खंड प्रकाशित हुए तथा जिसमें हिंदी के साथ साथ विविध लोकभाषाओं के शताधिक ज्ञात एवं अज्ञात कवियों का बड़ा ही व्यवस्थित विवरण प्रकाशित हुआ है जो कि सरोज सर्वेक्षण एवं शिवसिंह सरोज जैसा ही महत्वपूर्ण संग्रह है। परिषद् ने हिंदी के महत्वपूर्ण रचनाकारों की ग्रंथावलियों का भी प्रकाशन किया जिसमें 'अयोध्याप्रसाद खत्री स्मारक ग्रन्थ' जैसी दुर्लभ कृति शामिल है। इसकी भूमिका में वे लिखते हैं- हिंदी में ग्रंथावलियों की संख्या कम है। ऐसे संग्रहालयों की संख्या कम है, जिनमें लब्धकीर्ति लेखकों की सभी रचनाएँ इकठ्ठी मिल सकें।

शोधकर्ताओं को सामग्री संकलन के लिए इधर-उधर भटकना पड़ता है। किन्तु, ग्रंथावली प्रकाशन का महत्व अब समझा जाने लगा है। आशा है कि अब इस दिशा में बराबर प्रगति होती रहेगी।' शिवपूजन सहाय जी के लोकभाषा एवं लोकसाहित्य प्रेम का एक और दृष्टांत देखिये जिसे उन्होंने अपने 'विभूति' कहानी संग्रह की 'मानमोचन' कहानी के माध्यम से दिखाया है। इसमें उन्होंने ब्रजभाषा, फारसी, खड़ीबोली और ठेठ लोकभाषा का परस्पर संवाद आयोजित किया है जिसमें सभी भाषाएँ अपनी शक्ति और सामर्थ्य का बखान करती हैं और अंत में मुकुंद नामक पात्र कहता है कि- देहातों में बहुत सी ऐसी ठेठ कविताएँ प्रचलित हैं, जिनकी भाषा बिलकुल सीधी-सादी और टकसाली है पर भाव चुभते हुए हैं। एक देहाती दोहा कितना सादा और कैसा भावपूर्ण है-

सोना लेने पिउ गये, सूना हो गया देस।

सोना मिला न पिउ फिरे, रूपा हो गये केस।।

इस तरह से आचार्य शिवपूजन सहाय ने हिन्दी के साथ साथ लोकभाषाओं के महत्व को न केवल रेखांकित किया बल्कि उसके रचनाकारों का उत्साहवर्धन करते हुए उनकी रचनाओं को परिषद् के माध्यम से प्रकाशित किया और इस प्रकार लुप्त हो रही साहित्य की अमूल्य धरोहर को भावी पीढ़ियों को सौंपने का श्रेयष्कर कार्य किया। उनके बाद भी परिषद से लोक साहित्य की महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित होती रहीं जिनमें 'अंगिका संस्कार गीत' और 'मगही-भाषा और साहित्य' जैसी पुस्तकें शामिल हैं। इसे उन्हीं की संकल्पना के विकास क्रम के रूप में देखा जा सकता है। इस रूप में आचार्य शिवपूजन सहाय का योगदान अविस्मरणीय और अनुकरणीय है।

सन्दर्भ :

1. चतुर्दश भाषा निबंधावली - बिहार राष्ट्रभाषा परिषद
2. पंचदश लोकभाषा निबंधावली - बिहार राष्ट्रभाषा परिषद
3. शिवपूजन सहाय रचनावली - खंड - 3, परिषद
4. बाँसरी बज रही है - श्री जगदीश त्रिगुणायत, परिषद
5. हिंदी साहित्य और बिहार - भाग - 1, 2, 3, परिषद
6. प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण, खंड - 2, परिषद
7. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रन्थ - परिषद
8. The National Identity of the Hindu Traditions, by – Vasudha Dalmia
9. विभूति - पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय, दरभंगा।

डॉ. सत्यप्रिय पाण्डेय, लोकसाहित्य विमर्शकार एवं असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
श्याम लाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, मो. : 8750483224

हिन्दी नवजागरण के पुरोधा : शिवपूजन सहाय

राजेन्द्र परदेसी

शिवपूजन सहाय जिस प्रकार अपने कहानी लेखन में श्रृंगार और अलंकार से यथार्थवादी जीवनदृष्टि और भाषा की सादगी की ओर उन्मुख हुए तथा अपने गद्यलेखन में हास्य-व्यंग्य का पुट दिया उसी प्रकार उन्होंने अपने निबंध लेखन में अपना चिंतन बड़ी विशदता से प्रस्तुत किया है। ग्रामोद्धार-विषयक उनकी दो पुस्तकें 'ग्राम-सुधार' और 'अन्नपूर्णा के मन्दिर में' भी निबंध साहित्य के अन्तर्गत विचारणीय है। शिवपूजन सहाय महात्मा गांधी के ग्राम-केन्द्रित रचनात्मक कार्यक्रमों से भी प्रभावित रहे-'देहात ही देश का दिल है' निबंध इसका प्रमाण है।

हिंदी देश की वह भाषा है जिसके माध्यम से हमारे प्राय: सभी संतों, सुधारकों, नेताओं और साहित्यकारों ने अपने विचारों और सिद्धान्तों का उन्मुक्त भाव से प्रचार किया है। फिर वह चाहे देश के किसी भी प्रांत के निवासी क्यों न रहे हों।

ब्रज भाषा की प्राचीनतम परम्पराओं को छोड़कर खड़ी बोली में उत्कृष्टतम गद्य के सृजन का जो सूत्रपात हुआ था उससे ही हिन्दी के आधुनिकतम रूप का निर्माण हुआ है। भाषा को मानक स्वरूप में स्थापित कराने में कर्मठ पत्रकार, साहित्य-सेवी एवं राष्ट्रभाषा के उन्नायक आचार्य शिवपूजन सहाय का योगदान अविस्मरणीय है।

शिव पूजन सहाय का जन्म बिहार के भोजपुर अंचल के एक गांव उनवांस में एक साधारण किसान परिवार में विक्रम संवत 1950 की श्रावण कृष्ण त्रयोदशी (9 अगस्त 1893) को हुआ था। उनवांस गांव से अब एक पक्की सड़क बक्सर रेलवे स्टेशन को जाती है, जो गांव से 15 किलोमीटर उत्तर गंगा तट पर स्थित जिला मुख्यालय बन गया है, इनके पिता बागीश्वरी सहाय आरा के जमींदार हरिहर प्रसाद के पटवारी थे। माता श्रीमती राजकुमारी देवी बक्सर के पास धनहा गांव की थी।

शिवपूजन सहाय दस वर्ष की उम्र में पिता के साथ गांव से आरा जनवरी 1903 में आ गये। जहाँ कायस्थ जुबली एकेडमी में

पांचवी कक्षा में उनको प्रवेश दिलाया गया। उन्होंने सन् 1912 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की उसके बाद 'हिन्दी भूषण' की उपाधि भी प्राप्त की। जीविकोपार्जन हेतु जिस विद्यालय से मैट्रिक में उत्तीर्ण हुए थे उसी में सन् 1914 में हिन्दी अध्यापक की नौकरी करने लगे, पर वहाँ अधिक दिनों तक टिके न रह सके। सन् 1920 में नौकरी से त्याग-पत्र देकर राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल हो गये।

उन दिनों आरा की नागरी प्रचारिणी सभा हिन्दी के बहुश्रुत विद्वानों एवं समर्पित सेवकों का एक महत्वपूर्ण केन्द्र थी। शिव पूजन सहाय का साहित्य प्रेम भी उन दिनों अंकुरित होने लगा था। आरा से ही निकलने वाली साहित्यिक मासिक पत्रिका 'मनोरंजन' के प्रथमांक में उनका लेख 'परोपकार' छपा। इससे उनके साहित्यिक पौधा को पनपने के लिए मिट्टी खाद और पानी भी सहज ही मिल गया। कालान्तर में अध्यापन के साथ शिवपूजन सहाय आरा के रईस देवेन्द्र कुमार जैन द्वारा प्रकाशित त्रिवेणी, प्रेमकली, प्रेम पुष्पांजलि तथा सेवाधर्म का संपादन का दायित्व भी निभाने लगे।

सन् 1921 में नौकरी से त्याग-पत्र देने के पश्चात् शिवपूजन सहाय आरा से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'मारवाड़ी'-सुधार का सम्पादन कार्य देखने लगे। तत्पश्चात् सन् 1923 में अपने साहित्यिक गुरू पं. ईश्वरी प्रसाद शर्मा के आग्रह पर वे कोलकत्ता के 'मतवाला' मासिक पत्र के संपादक-मंडल में शामिल हुए और पत्रिका को नई दिशा और पहचान दिलाई। 'मतवाला' का प्रथम अंक 26 अगस्त 1923 को निकला और बाजार में आते ही धूम मच गई। इसके अतिरिक्त शिवपूजन सहाय ने आदर्श, उपन्यास तरंग, समन्वय, मौजी, गोलमाल, माधुरी, गंगा, बालक आदि पत्र-पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया।

शिवपूजन सहाय की ख्याति और विद्वता से प्रभावित होकर राजेन्द्र कॉलेज, छपरा के प्रबंधक-मंडल ने उन्हें बिना एम.ए. की डिग्री हासिल किये ही महाविद्यालय में हिन्दी प्राध्यापक के पद पर नियुक्त कर लिया जहाँ वे सन् 1938 से सन् 1949 तक कार्यरत थे। इसी बीच सन् 1946 में वे स्वेच्छा से अवकाश लेकर पुस्तक भण्डार पटना से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'हिमालय' का सम्पादन करने लगे। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् ने भी आपको सन् 1949 में परिषद् का मंत्री नियुक्त किया।

सम्पादक के रूप में शिवपूजन सहाय जहाँ अन्य साहित्य-सर्जकों के माध्यम से हिन्दी को संवारने और निखारने में रत रहे, वहीं अपनी लेखनी से मौलिक सृजन द्वारा भी हिन्दी को समृद्ध किया है।

शिवपूजन सहाय ने अपने सृजन के शुरू के एक दशक में जितने भी आदर्श मूलक ललित निबंध या गल्प लिखे, उनमें उनकी भाषा साधना के प्रारम्भिक चरण के रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी 'मारवाड़ी-सुधार' में प्रकाशित कहानियाँ आख्यायिकाएँ उप-शीर्षक से प्रकाशित हुई है। सर्वप्रथम रचित कहानी 'तूती-मैना' को उन्होंने गल्प की संज्ञा दी है, बंगला में गल्प का प्रयोग छोटी कहानी के अर्थ में होता है। यह एक काल्पनिक कथा है जो गद्य-काव्य शैली में रचित है। बसंत-ऋतु में एक राजकुमार आखेट के क्रम में एक लहलही लता-सी तन्वी वन्य

सुन्दरी से मिलता है, जो एक ऋषि आश्रम में पली है। ऋषि के अनुमति से परिणीता बनकर राजकुमार के साथ राजमहल में जाकर रह जाती है–गल्प की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है–

'जो तूती शून्यारण्य में कुहुकती थी, जिसके कुन्तल कलाप को पन्नगी परिवार समझकर मयूर माला अपने चोचों से धीरे-धीरे बिखेरती थी, जिस सुगी के दिये हुए अनारों को फोड़-फोड़कर..... जिसकी हथेलियों से ललाई, आँखों से लुनाई और ओठों से मधुराई ले लेकर प्रकृति मधुभक्षिका ने अपने वन्य कुसुमकुंज पुंजरूपी छत्रों में भर दिया था।'

सन् 1922 में भूमिका में वह स्वयं लिखते हैं - शैलीगत परिमार्जन परिष्कार का जो अनुपात प्रथम संस्करण में दिखता है। वह बाद में प्राय: स्थिर हो जाता है।

विभूति की पहली दस कहानियों में जो प्रथमत: महिला महत्व शीर्षकांतर्गत संकलित हुई थी। उसमें 'मुंडमाल' कहानी सर्वाधिक प्रशंसित एवं लोकप्रिय सिद्ध हुई।

इसके कथासूत्र से जुड़ी उनकी दूसरी कहानी है-'सतीत्व की उज्जवल प्रभा' इसी ऐतिहासिक प्रसंग से जुड़ी हुई एक और कहानी है 'विषपान'। इन तीनों कहानियों की कथावस्तु जेम्सटॉड की प्रसिद्ध पुस्तक 'ऐनल्स ऑफ राजस्थान' से ले ली गई है। जिसमें मुगलों के विरूद्ध राजपुतों के शौर्य की प्रेरक गाथाएँ अंकित है। 'मुंडमाल' और 'सतीत्व की उज्जवल प्रभा' दोनों कहानियों का कथा सूत्र एक है।

'खोपड़ी के अक्षर' अपेक्षा या लंबी कहानी है और इसका कथा विस्तार एक लघुउपन्यास के आकार की मांग करता है। इसका प्रकाशन 'उपन्यास तरंग' नामक मासिक पत्रिका में हुआ था। 'कुंजी' ठीक इसके विपरीत लेखक की सबसे छोटी कहानी है। शिल्पगत कसाव की दृष्टि से सफलतम कहानियों में से एक है।

'मानलोचन' कहानी का स्वरूप संवाद-शैली में एक निबंध का है, जिसमें पति-पत्नी खड़ी और ब्रजभाषा काव्य की तुलनाकर सोदाहरण तर्क-वितर्क से एक-दूसरे की श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयास करते हैं और कहानी का अंत नोक-झोंक से मधुरालिंगन के समझौते में होता है।

'कहानी का प्लाट' उसी अंचल की कहानी है जिसमें पलकर लेखक बने थे। यह वही अंचल है जिसमें शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनिया' बसी है। शिल्प का जैसा संश्लिष्ट एवं कलात्मक प्रयोग 'कहानी के प्लाट' में मिलता है। उनकी अन्य कहानियों में नहीं मिलता। नाटकीय विडंबना का ऐसा शैल्पिक प्रयोग की जैसी तेज धारा इस कहानी में दृष्टिगोचर होती है वह अद्‌भुत है।

आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास में अक्सर प्रसाद और प्रेमचन्द से निस्सृत दो विशिष्ट धारा की चर्चा होती है। कहानी की विधा में शिवपूजन सहाय की दोनों श्रेष्ट रचनाएं-'मुंडमाल' और 'कहानी का प्लाट' क्रमश: इन दो धाराओं की श्रेष्ट कृतियों के रूप में सदा स्मरणीय रहेंगी।

इसमें कोई संदेह नहीं। प्रेमचन्द के युग में ही शिवपूजन सहाय ने हिन्दी उपन्यास को एक नयी दिशा देने का प्रयास किया था। उनके उपन्यास 'देहाती दुनिया' (सन् 1926) में प्रचलित रूढ़ियों को तोड़ने का साहसिक कदम उठाया गया है। किन्तु इनके उपन्यास का सही मूल्यांकन सन् 1950 के आसपास हुआ। जब आंचलिक उपन्यास अस्तित्व में आये। इस प्रकार शिवपूजन सहाय ने आंचलिक उपन्यास विधा को एक संबल प्रदान करने में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

शिवपूजन सहाय के निबंधों की चर्चा की जाय तो साहित्य, हिंदी साहित्य में कुछ चिंत्य अभाव', आचार्यो का आर्ष प्रयोग आदि विशेष उल्लेखनीय है।

शिवपूजन सहाय जिस प्रकार अपने कहानी लेखन में श्रृंगार और अलंकार से यथार्थवादी जीवनदृष्टि और भाषा की सादगी की ओर उन्मुख हुए तथा अपने गद्यलेखन में हास्य-व्यंग्य का पुट दिया उसी प्रकार उन्होंने अपने निबंध लेखन में अपना चिंतन बड़ी विशदता से प्रस्तुत किया है। ग्रामोद्वार-विषयक उनकी दो पुस्तकें 'ग्राम-सुधार' और 'अन्नपूर्णा के मन्दिर में' भी निबंध साहित्य के अन्तर्गत विचारणीय है। शिवपूजन सहाय महात्मा गांधी के ग्राम-केन्द्रित रचनात्मक कार्यक्रमों से भी प्रभावित रहे-'देहात ही देश का दिल है' निबंध इसका प्रमाण है।

हिन्दी नवजागरण के पुरोधा शिवपूजन सहाय को सन् 1954 में उनके राष्ट्रभाषा के अवदान के लिए बिहार राष्ट्रभाषा परिपद् की ओर से 15 सौ रूपये का वयोवृद्ध साहित्यकार सम्मान दिया गया। जिसे उन्होंने अपनी पत्नी के नाम से साहित्यिक गोष्ठी के आयोजनार्थ साहित्य सम्मेलन को समर्पित कर दिया।

हिन्दी की दीर्घकालीन सेवा के लिए भारत सरकार ने इनको सन् 1960 में 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया, पटना नगर निगम की ओर से सन् 1961 में आपका नागरिक अभिनंदन किया गया। भागलपुर विश्वविद्यालय ने इनको सन् 1962 में डी.लिट् की मानद उपाधि प्रदान की।

हिन्दी के समर्पित साधक शिवपूजन सहाय 21 जनवरी 1963 को सारे हिन्दी प्रेमियों को छोड़कर चले गये। परन्तु हिन्दी के लिए उनका गौरवशाली अवदान हिन्दी प्रेमियों की स्मृति में सदैव अक्षुण रहेगा।

डॉ. राजेन्द्र परदेसी, 44–शिव विहार, फरीदी नगर, लखनऊ–226015
मो. : 09415045584, ई–मेल : rajendrapradesi66@gmail.com

✧ ✧ ✧

साहित्यिक पत्रकारिता के सिरमौर पद्मभूषण आचार्य शिवपूजन सहाय

डॉ. ध्रुव कुमार

आचार्य शिवपूजन सहाय हिंदी के उन गिने चुने पत्रकारों में अग्रणी स्थान रखते हैं जिनके कारण हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता को एक नई ऊँचाई मिली। लगभग 42 वर्षों के अपने साहित्यिक जीवन में उन्होंने अनेक पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया और इस दौरान उन्होंने भाषा परिवर्तन, भाषा परिष्कार, वर्तनी और शैली के अनेक मानदंड स्थापित किए।

"देहाती दुनिया" के माध्यम से हिंदी साहित्य को प्रथम आंचलिक उपन्यास देने वाले आचार्य शिवपूजन सहाय ने उपन्यासकार, कहानीकार, साहित्यिक पत्रकारिता, संस्मरण लेखन, समीक्षा - आलोचना व संपादन कला से जिस अतुल साहित्य संपदा को समृद्ध किया, वह हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अपनी बहुविध रचनाओं की सृजनशीलता से हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि में उनका अतुलनीय योगदान है। वे हिंदी के गिने-चुने शीर्ष साहित्यकारों में शामिल हैं, जिन्होंने अपना सब कुछ न्योछावर कर हिंदी साहित्य की समृद्धि के लिए दिन - रात एक कर दिया। साहित्य सृजन के लिए वे पटना, कलकत्ता, बनारस लखनऊ, भागलपुर, दरभंगा, छपरा आदि शहर-शहर घूमते रहे। उन्होंने अपने कर्ममय साहित्यिक जीवन में बहुत पापड़ बेले, लेकिन साहित्य सेवा के जिस अनुष्ठान का संकल्प उन्होंने लिया, उसमें जीवन के अंतिम दिवस तक लगे रहे। उनका जीवन एक ऐसे कर्मयोगी का जीवन था, जिन्होंने अनवरत कर्मरत रहने का अपना जीवन-लक्ष्य निर्धारित कर लिया हो। अनेक पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के संपादन के जरिए उन्होंने भाषा परिष्कार, वर्तनी और शैली के जो मानदंड प्रस्तुत किए, वे आज भी उतने ही महत्वपूर्ण है, जितने कि उन दिनों थे।

उनका जन्म बिहार के शाहाबाद जनपद के उनवांस नामक गांव में 9 अगस्त 1893 को एक सामान्य किसान परिवार में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव के विद्यालय में हुई और उसके उपरांत 1903 में आरा के कायस्थ जुबली एकेडमी नामक विद्यालय में उनका दाखिला कराया गया। वहां से उन्होंने 1912 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। माना जाता है कि छात्र अवस्था में ही उनका झुकाव लेखन की ओर हो गया था और वे अपनी रचनाएं उन दिनों 'शिक्षा', 'लक्ष्मी', 'मनोरंजन' और 'पाटलिपुत्र' आदि बिहार की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थी। मैट्रिक की परीक्षा करने के पश्चात 1914 में उन्होंने आरा के टाउन स्कूल में अध्यापन का कार्य प्रारंभ किया लेकिन 1920 में महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन के शुरू होते ही उन्होंने राष्ट्रीय स्कूल के अध्यापक पद से त्यागपत्र देकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े।

आचार्य शिवपूजन सहाय हिंदी के उन गिने चुने पत्रकारों में अग्रणी स्थान रखते हैं जिनके कारण हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता को एक नई ऊंचाई मिली। लगभग 42 वर्षों के अपने साहित्यिक जीवन में उन्होंने अनेक पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया और इस दौरान उन्होंने भाषा परिवर्द्धन, भाषा परिष्कार, वर्तनी और शैली के अनेक मानदंड स्थापित किए।

उनके संपादन में यह बाल पत्रिका राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हुई। 1939 में उन्होंने पुस्तक भंडार से अवकाश ग्रहण कर छपरा के राजेंद्र कॉलेज में हिंदी के प्राध्यापक हो गए। लेकिन इनके अंदर का संपादक और पत्रकार शिक्षण कार्य से संतुष्ट नहीं हुआ और 1946 में एक वर्ष का अवकाश लेकर पटना चले आए और पुस्तक भंडार द्वारा प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'हिमालय' का संपादन किया। हिमालय के संपादन के दौरान उनके द्वारा लिखी गई टिप्पणियों पर साहित्य जगत में खूब चर्चा होती और हलचल मची रहती। राजेंद्र कॉलेज छपरा से अवकाश ग्रहण करने के बाद 1950 में शिवपूजन सहाय जब पटना लौटे तो उन्हें बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन ने अपनी शोध प्रधान त्रैमासिक पत्रिका 'साहित्य' का दायित्व सौंपा।

साहित्यिक पत्रकरिता और रचनात्मक लेखन की कला में उनका योगदान हिंदी साहित्य के लिए भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। एक पत्रकार के रूप में अपने साहित्यिक जीवन का प्रारंभ करके उन्होंने साहित्य की प्राय: सभी विधाओं को अपनी सृजनशीलता से समृद्ध किया।

आचार्य शिवपूजन सहाय वस्तुत: पत्रकार ही थे। उनके पत्रकारीय जीवन की शुरुआत 1921 में आगरा से प्रकाशित होने वाले ''मारवाड़ी सुधार'' मासिक पत्र के संपादन के साथ शुरू हुआ। दो साल के उपरांत उन्होंने अपने साहित्यिक गुरु ईश्वरी प्रसाद शर्मा की प्रेरणा से सन् 1923

में कोलकाता पहुंचे और वहां 'मतवाला- मंडल' में सम्मिलित हो गए। इस मंडल में उन दिनों मिर्जापुर के महादेव प्रसाद सेठ, नवजादिक लाल श्रीवास्तव, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला शामिल थे। 'मतवाला' से इनके संपादन प्रतिभा का अच्छा-खासा विकास हुआ। कोलकाता प्रवास में उन्होंने मतवाला के अतिरिक्त मौजी, आदर्श, गोलमाल, उपन्यास-तरंग और समन्वय आदि कई पत्रों के संपादन में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। कलकत्ता में इनके नाम का यश इतना फैला कि उन्हें लखनऊ से ''माधुरी'' में संपादन कार्य में सहयोग के लिए बुलावा आ गया और वे 1925 में लखनऊ पहुंचे। लेकिन अगले साल फिर वापस कोलकाता पहुंचकर 'मतवाला - मंडल' में शामिल हो गए। लखनऊ में उनकी मुलाकात मुंशी प्रेमचंद से हुई। प्रेमचंद भी माधुरी के संपादन में सहयोग कर रहे थे। मुंशी प्रेमचंद, शिवपूजन सहाय की संपादन कला से बहुत प्रभावित हुए और उन्हें अपने अप्रकाशित उपन्यास 'रंगभूमि' के मुद्रण, संपादन और प्रूफ संशोधन का कार्य सौंप दिया। वस्तुतः रंगभूमि उपन्यास की छपाई का कार्य शिवपूजन सहाय के नेतृत्व में ही हुआ। मतवाला के बाद शिवपूजन सहाय ने भागलपुर के समीप सुल्तानगंज से प्रकाशित होने वाली 'गंगा' नामक साहित्यिक पत्रिका के संपादन का कार्यभार संभाला। इसके उपरांत पुस्तक भंडार के संचालक आचार्य रामलोचन शरण बिहारी के निमंत्रण पर उनके प्रकाशनों के संपादन और वितरण में सहयोगी के रुप में दरभंगा के लहेरियासराय चले गये। यहां कई वर्षों तक उन्होंने कार्य किया। इस बीच पुस्तक भंडार के प्रकाशन के कार्यों के संबंध में उनका कई बार काशी भी आना-जाना हुआ और इस दौरान बनारस के कई सुप्रसिद्ध साहित्यकारों से उनका संपर्क हुआ। इस संपर्क का परिणाम यह हुआ कि उन्हें काशी से प्रकाशित मासिक पत्र जागरण के संपादन - प्रकाशन का दायित्व मिला। काशी में उन दिनों प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, विनोद शंकर व्यास आदि अनेक साहित्यकार सक्रिय थे जिनके साथ शिवपूजन सहाय का संपर्क और सहयोग बढ़ता गया। प्रेमचंद से तो वे लखनऊ से ही परिचित थे। काशी से वे 1933 में 'जागरण' का दायित्व विनोद शंकर व्यास को सौंप कर वापस दरभंगा (लहेरियासराय) लौट गए। इस बार लहेरियासराय में उन्होंने पुस्तक भंडार की ओर से प्रकाशित होने वाले बाल पत्रिका 'बालक' का संपादन कई वर्षों तक अत्यंत कुशलतापूर्वक किया।

उनके संपादन में यह बाल पत्रिका राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हुई। 1939 में वे पुस्तक भंडार से अवकाश ग्रहण कर छपरा के राजेंद्र कॉलेज में हिंदी के प्राध्यापक हो गए। लेकिन इनके अंदर का संपादक और पत्रकार शिक्षण कार्य से संतुष्ट नहीं हुआ और 1946 में एक वर्ष का अवकाश लेकर पटना चले आए और पुस्तक भंडार द्वारा प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'हिमालय' का संपादन किया। हिमालय के संपादन के दौरान उनके द्वारा लिखी गई टिप्पणियों पर साहित्य जगत में खूब चर्चा होती और हलचल मची रहती। राजेंद्र कॉलेज छपरा से अवकाश ग्रहण करने के बाद 1950 में शिवपूजन सहाय जब पटना लौटे तो उन्हें बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन ने अपनी शोध प्रधान त्रैमासिक पत्रिका 'साहित्य' का दायित्व सौंपा। इसके संस्थापक-संपादक के रूप से शुरू होकर

अपने जीवन के अंतिम क्षण तक उन्होंने 'साहित्य' का संपादन किया। इस पत्रिका ने शोध और शिक्षा के क्षेत्र में जो नए मानदंड प्रस्तुत किए वह हिंदी जगत में आज भी अतुलनीय है।

'देहाती दुनिया' उपन्यास के अतिरिक्त उन्होंने ग्राम सुधार, बिहार का विहार, विभूति, अर्जुन, भीष्म, दो घड़ी, मां के सपूत, अन्नपूर्णा के मंदिर में, महिला महत्व, बालोद्यान और' आदर्श परिचय' कृतियों की भी रचना की। उन्होंने अपने जीवन के तमाम उतार-चढ़ाव और प्रस्ताव के बावजूद जितना प्रचुर साहित्य का सृजन किया उसे देख-सुन कर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। सौभाग्य है कि उनकी तमाम कृतियों और रचनाओं को बिहार हिंदी राष्ट्रभाषा परिषद ने 'शिवपूजन रचनावली' नाम से चार खंडों में प्रकाशित किया है। उनके सर्जनात्मक साहित्य का एक रूप उन ग्रंथों के संपादक के रूप में भी मिलता है जिसका संपादन उन्होंने समय-समय पर किया। इन महत्वपूर्ण ग्रंथों में द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, राजराजेश्वरी ग्रंथावली, राजा कमलानंद सिंह ग्रंथावली, राजेंद्र अभिनंदन ग्रंथ, आत्मकथा, रजत जयंती स्मारक ग्रंथ, बिहार की महिलाएं और सेवा धर्म के नाम विशेष महत्वपूर्ण है। इनमें द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को सन 1933 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से समर्पित किया गया था और रजत जयंती स्मारक ग्रंथ का प्रकाशन पुस्तक भंडार, लहेरियासराय की रजत जयंती के अवसर पर सन 1942 में किया गया था। इसे पुस्तक भंडार के संचालक आचार्य रामलोचन शरण को उनके जीवन की 'स्वर्ण जयंती' पर समर्पित किया गया था। इसी प्रकार राजेंद्र अभिनंदन, भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए किया गया था। वहीं उनकी आत्म-कथा को पुस्तकाकार प्रकाशित होने से पूर्व उसके संपादित अंश हिमालय में भी छपे। वास्तव में आचार्य शिवपूजन सहाय हिंदी के दधीचि पुरुष थे।

उनकी साहित्यिक सेवाओं के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए 1960 में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि प्रदान की। उन्हें 1962 में भागलपुर विश्वविद्यालय ने डी.लिट. की उपाधि से विभूषित किया, तो 1961 में पटना नगर निगम ने 'नागरिक सम्मान' आयोजित कर उनके साहित्य - कर्म का अभिनंदन करते हुए अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की।

उनका निधन 21 जनवरी 1963 को पटना में हुआ था।

डॉ. ध्रुव कुमार, लेखक – पत्रकार व्योम, पी. डी. लेन, महेंद्रु, पटना 800006
मो : 9304455515, ईमेल : dhrub20@gmail-com

सामाजिक सरोकारों के अग्रणी साहित्यकार : शिवपूजन सहाय

डॉ. (श्रीमती) काकोली गोराई

साहित्य सामाज का दर्पण है। साहित्य, व्यक्ति के परिवेश में व्याप्त प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बनाने, दुःख के क्षणों में सांत्वना देने और सुख के क्षणों मे खुशी को बढ़ाने का काम करके व्यक्ति और उसके परिवेश की अभिव्यक्ति का न केवल एक दृढ़ आधार बनता है बल्कि एक व्यक्ति को साहित्य से और व्यक्ति के माध्यम से साहित्य को सामाज से जोड़ने का काम करता है। आचार्य शिवपूजन सहाय का साहित्य व्यक्ति और उसके परिवेश के चित्रण का एक उत्ष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। ध्यातव्य है कि इसके मूल में भी सामाजिक सरोकार हैं।

साहित्य, सामाजिक सरोकारों का ही प्रतिफल है। सामाजिक सरोकार विषय के अन्तर्गत साहित्य और समाज दो क्षेत्र हैं और सरोकार एक ऐसा कारक है जो इन दोनो क्षेत्रों को आपस मे जोड़ता है। शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से- 'सामाजिक' का अर्थ- समाज से जुड़ा होना है। 'सरोकार' का अर्थ- प्रयोजन, वास्ता, पहलु, संदर्भ, आयाम, सम्बन्ध तथा परिणाम आदि से है। प्रत्येक साहित्यकार समाज का एक अंग है। समाज की परिस्थितियों के साथ उसका भावात्मक सरोकार होता है। साहित्यकार समाज के प्रति जितना अधिक संवेदनशील होता है, उसका सामाजिक सरोकार उतना ही गहरा होता है। समाज और साहित्य का मौलिक सम्बन्ध है। साहित्य जब-जब सामाजिक संदर्भों से जुड़ता है, समाज के सरोकारों का सच्चा विश्लेषण करता है, वह जनमानस के लिए प्रेरणादायी बनता है। सामाजिक सरोकार का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है, क्योंकि सामाजिक संदर्भ से किसी वस्तु का आकलन किया जाता है। समाज के व्यक्तियों की भावनाओं, आकांक्षाओं एवं संघर्षों को रूपायित करना और अवांछित तत्त्वों का प्रतिकार करना साहित्यकार का दायित्व होता है। उसकी सृजनशीलता ही सामाजिक सरोकार का रूप ग्रहण करती है तथा लेखक की रचनात्मक शक्ति सामाजिक समस्याओं और विसंगतियों को दूर करती है।

इस प्रकार के सामाजिक सरोकार असल में वो सामाजिक मुद्दे होते हैं जो साहित्य में किसी रचना अथवा कृतिविशेष की विषय

वस्तु बनते हैं और प्रस्तुत विषय वस्तु के आधार पर लेखक अथवा साहित्यकार अपने विचार अथवा अर्थपूर्ण सन्देश को समाज अथवा समाज की इकाई व्यक्ति तक पहुँचाता है, या पहुँचाने का प्रयास करता है। ''सहित्यकार द्रष्टा भी है और सृष्टा भी। वह आँखें खोलकर समाज को देखता है और पुनः उसके शोधन का उपाय करता है। अपनी कल्पना की विलक्षण शक्ति से वह भविष्य का निर्माण करता हैं, समाज का मार्ग-दर्शन करता है। वह अपनी कल्पना से समाज को आदर्श की ओर प्रेरित करता है। समाज साहित्य से प्रेरणा और जीवन ग्रहण करता है।'' इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि साहित्य और समाज का सम्बन्ध स्थापित करने वाले वो सभी विषय सामाजिक सरोकारों के दायरे में आते हैं जो साहित्य में किसी रचना अथवा कृति के सृजन का आधार बनकर सामाजिक चेतना और समाज में मानवीय सरोकारों के प्रति चेतना का उद्देश्य अथवा लक्ष्य पूरा करते हैं।

साहित्य सामाज का दर्पण है। साहित्य, व्यक्ति के परिवेश में व्याप्त प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बनाने, दु:ख के क्षणों में सांत्वना देने और सुख के क्षणों मे खुशी को बढ़ाने का काम करके व्यक्ति और उसके परिवेश की अभिव्यक्ति का न केवल एक दृढ़ आधार बनता है बल्कि एक व्यक्ति को साहित्य से और व्यक्ति के माध्यम से साहित्य को सामाज से जोड़ने का काम करता है। आचार्य शिवपूजन सहाय का साहित्य व्यक्ति और उसके परिवेश के चित्रण का एक उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। ध्यातव्य है कि इसके मूल में भी सामाजिक सरोकार हैं।

आचार्य शिवपूजन सहाय (1893-1963), रचनाकार के रूप में हिंदी जगत् को प्रचुर मात्रा में पठनीय साहित्य प्रदान किए है। आम आदमी का जीवन्त दस्तावेज प्रस्तुत करने वाला इनका साहित्य, जीवन की गहरी पकड और प्राकृतिक सुषमा के साथ, शिल्प की सहज सूक्ष्मता और जीवन्तता के अद्‌भुत संयोजन के कारण अपना एक अलग और विशिष्ट अस्तित्व रखता है। उनके साहित्य में व्यक्ति की संवेदना का बारीकी के साथ चित्रण किया गया है। जीवन का यथार्थ एक सामाजिक सत्य के रूप में तो हमारे सामने आया ही है, उसने साहित्य को भी बहुत शक्ति दी है।

शिवपूजन जी ने अपना सम्पूर्ण साहित्य आम आदमी के जीवन से प्रेरित होकर लिखा है। उन्होंने जितने बड़े फलक को लेकर घटनाओं, दुर्घटनाओं, पात्रों, सांस्कृतिक रूढ़ियों, क्रान्तियों और विवेचनाओं को एक स्थल पर रखकर चित्रित किया है वह उनके सक्षम शिल्पी होने का ही परिचायक है। उन्होंने 'देहाती दुनियाँ (1926)' उपन्यास में समूचे भारतीय जीवन की तबदीलियों, विसंगतियों, कठोर सच्चाइयों और प्रतिक्रियाओं से सीधा साक्षात्कार करने का ईमानदारी से प्रयास किया है।

उनका उपन्यास 'देहाती दुनियाँ' सामंती शोषण का जीवंत दस्तावेज है। उन्होंने इस उपन्यास में सामंती-व्यवस्था के प्रतिनिधि बाबू रामटहल सिंह के दमन एवं जुल्म के साथ-साथ उनकी चारित्रिक पतनशीलता को भी बखूबी उजागर किया है। उन्होंने कई स्थलों पर पुलिस के आततायी शोषक रूप की झाँकी प्रस्तुत की है। आम जनता की रक्षक पुलिस में भ्रष्टाचार का आलम यह कि सरबजीत सिंह जैसे जमींदार एक निर्धन ब्राह्मण किसान की हत्या करके भी कानून

से बच जाते हैं। कहना न होगा कि पुलिस का यह आततायी शोषक रूप आज भी है। सारे दावों के बावजूद पुलिस आज भी अपना मानवीय चेहरा विकसित नहीं कर पाई है। उन्होंने अपनी रचनाओं में धर्म के नाम पर होने वाले शोषण एवं धार्मिक पाखंडों को भी उजागर किया है। 'देहाती दुनियाँ' में उन्होंने रामसहर के मंदिर के ढोंगी एवं धूर्त पुजारी पसुपत पाँडें एवं उनके पुत्र गोबरधन को केन्द्र में रखकर इस समस्या की पड़ताल की है।

शिवपूजन जी ने, सदियों से उपेक्षा का दंश झेल रहे गाँवों की बदहाली एवं उनकी बेहतरी के उपायों पर भी अपनी रचनाओं 'ग्राम-सुधार (1947)' एवं 'अन्नपूर्णा के मंदिर में (1950)' में विस्तार से विचार किया है। उनका मानना है कि गाँवों में बुनियादी सुविधाओं का घोर अभाव है, सदियों से उपेक्षित रहने के कारण उनमें बहुत सी कुरीतियाँ, विकृतियाँ घर कर गई हैं। उन्होंने गाँवों की बदहाली का विस्तार से चित्रण करने के साथ-साथ गाँवों की बेहतरी के लिए ग्राम-सुधार की विस्तृत योजनाएँ भी प्रस्तुत की हैं। उन्होंने गाँवों की उन्नति के लिए अच्छे रास्ता को आवश्यक मानते हैं। अच्छे रास्तों के अभाव में अफसर, नेता, समाज-सुधारक, व्यापारी आदि नहीं पहुंच पाते और इस तरह गाँवों का संबंध देश-दुनिया से कट जाता है। गाँवों की दुर्दशा के लिए उन्होंने शिक्षा को उत्तरदायी माना है। वे गाँवों में पर्याप्त स्कूलों के पक्षधर हैं, इससे शिक्षा का प्रचार बढ़ेगा और लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होंगे। पशुधन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ होते हैं। अत: पशुओं की रक्षा एवं वृद्धि के लिए ग्राम-सुधार योजनाओं के तहत जंगल रक्षा के साथ-साथ बाग-बगीचे लगाने की भी आवश्यकता हैं।

एक सजग रचनाकार होने के नाते उन्होंने बाल-विवाह के प्रश्न पर विचार किया। 'हतभागिनी चंद्रतारा' में बाल-विवाह से पैदा होनेवाली विडंबनाओं को रेखांकित करते हुए उसके औचित्य पर सवालिया निशान लगाए हैं। साथ ही इससे पैदा होनेवाली विडंबनओं को भी रेखांकित किया है।

बीसवीं सदी में हिंदी नवजागरण की चेतना को आगे बढ़ाने में अहम भूमिका निभानेवाले शिवपूजन जी के साहित्य में गहरे सामाजिक सरोकारों की बखूबी अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने अपने समय के समाज की विसंगतियों को देखा-परखा है, चाहे वह स्त्रियों की बदहाली का प्रश्न हो अथवा शोषण के विविध रुपों का। उन्होंने कई प्रसंगों में विधवा-समस्या, दहेज-प्रथा की पड़ताल की है। वे सामाजिक सुधारों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के कारण, स्त्री-शिक्षा के हिमायती हैं। उन्होंने अपनी कहानियों (मुण्डमाल, सतीत्व की उज्ज्वल प्रभा, विषपान एवं शरणागत-रक्षा) के माध्यम से भारत के गौरवशाली अतीत के कई पहलुओं का उद्‌घाटन भी किया। साम्प्रदायिकता के मुद्दे से उनका साहित्य भी अछूता नहीं है।

दरअसल, शिवपूजन जी का साहित्य सामाजिक सरोकारों से ही बनता है। इन सरोकारों में घर-परिवार, रिश्ते-नाते, शोषण, गरीबी ही नहीं, त्रासद-विसंगतियाँ, राजनीतिक-छल, आतंक और पर्यावरण पर संकट जैसे कितने ही मुद्दे शामिल दिखाई देते हैं। उन्होंने हजारों पृष्ठ गद्य लिखा जिसमें उपन्यास, कहानी, संपादकीय टिप्पणियाँ, यात्रा, डायरी, संस्मरण, पुस्तक समालोचना, साहित्यिक निबंध, व्यंग्य-विनोद, राष्ट्रभाषा की समस्या पर विचार, बालोपयोगी साहित्य, जीवनी,

व्याकरण अर्थात समस्त विषयों पर लिखा। शिवपूजन जी की अधिकांश उपलब्ध रचनाएं उनके जीवन काल में ही बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा शिवपूजन रचनावली के चार खंडों में प्रकाशित की गई। प्रकाशित शिवपूजन रचनावली के अतिरिक्त भी उनकी पर्याप्त रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में आज भी बिखरी पड़ी हैं। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र शायद ही बचा हो, जहाँ शिवपूजन जी की दृष्टि न गई हो। उनका साहित्य, सामाजिक सरोकारों की प्रतिबद्धता के चलते ही समाज के साथ संवाद की स्थिति को निरंतर सुदृढ़ करता है। वह समाज की पीड़ा, उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम बना है और इसीलिए सामाजिक सरोकारों का अनुभव होता है। इन सरोकारों में कितनी गहराई और व्याप्ति है, इनमें कितने नए आयाम जुड़े हैं तथा इसका रंग कितना चटख हुआ है, समय-समय पर इसकी पहचान जारी है।

स्पष्ट है कि शिवपूजन जी के रचना-संसार में काफी विविधता है। हिंदी नवजागरण की चेतना के वाहक शिवपूजन कई बार सीधे-सीधे सरस्वती संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी के उत्तराधिकारी जान पड़ते हैं। ऐसा इसीलिए भी है क्योंकि आचार्य द्विवेदी के बाद शिवपूजन ही वह शख्सियत हैं जिन्हें हिंदी जगत भाषा परिष्कर्ता एवं संपादक के रूप में स्वीकार करता है। उन्होंने अपने रचनात्मक लेखन से हिंदी को समृद्ध किया और हिंदी की सीमाओं एवं आवश्यकताओं पर विस्तार से विचार करते हुए, इसकी समृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया। कहना ना होगा कि यह उनकी विशिष्टता का सूचक है।

'किसी राष्ट्र या जाति में संजीवनी शक्ति भरने वाला साहित्य ही है। इसलिए यह सर्वतोभावेन संरक्षणीय है। सब कुछ खोकर भी यदि हम इसे बचाये रहेंगे, तो इसी के द्वारा हम सब कुछ पा भी सकते हैं।' (आचार्य शिवपूजन सहाय)

'अत: कहा जा सकता है कि आचार्य शिवपूजन सहाय ने भारतीय दर्शन, धर्म, संस्कृति आदि को आत्मसात किया और शाश्वत जीवन मूल्यों को तलाशने में सफल रहे है। उसमें युग सन्दर्भों के अनुकूल जीवन सत्य की पकड़, ऊधर्वगामी चेतना और अमानवीय तत्त्वों से टकराने की ताकत है। इस प्रकार इनका सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों के प्रति सरोकार देखते ही बनता है।'

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. गगनांचल, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, आजाद भवन, नई दिल्ली - 110002, 2. हरिगंधा, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला - 134113, 3. नया ज्ञानोदय, (अनूप स्मृति) आचार्य शिवपूजन सहाय, महापंडित राहुल सांत्यायन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सितम्बर 2017, 4. शोध प्रबन्ध, साहित्य के सामाजिक सरोकारों, आनन्द प्रकाश 'आर्टिस्ट', भिवानी, हिंदी जर्नल- 'IJCRT' (खंड-1, अंक-2, फरवरी 2013, ISSN 2320-2882)।, 5. शोध प्रबन्ध, हिंदी नवजागरण और शिवपूजन सहाय का साहित्य, मृगेन्द्र कुमार, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ (श्रीमती) काकोली गोराई, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जामताड़ा कॉलेज,
जामताड़ा, झारखंड–815351, मोबाइल : 9417132797, ई–मेल : kakoligorai@gmail.com

शिवपूजन सहाय : नवजागरण के अग्रदूत

डॉ. अंजु कुमारी

इतने सशक्त सबल नारी पात्रें का सृजन कर शिवपूजन सहाय ने नारी-नवजागरण का सार्थक प्रयास किया है। बेमेल-विवाह का बहिष्कार तथा विधावा पुनर्विवाह का प्रखर स्वर इनके कथा साहित्य में हमें देखने को मिलता है। शिवपूजन सहाय अपने साहित्य में स्त्री के आदर्श रूप की स्थापना करते हैं। यह उनका स्त्री के प्रति वैचारिक आग्रह था। नवजागरण कालीन अधिकांश लेखकों ने स्त्री की आर्दश छवि को ही अपने लेखन में गढ़ा। इनका समय सामाजिक पुनरूत्थान और सुधार का था। इस कारण इनके लेखन में बदलाव की अपेक्षा सुधार की प्रवृति ही देखी जाती है।

हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत राष्ट्रवादी पत्रकारिता के सजग शोधक भाषा उन्नायक और मानवतावादी मूल्यों के पोषक साहित्य मनीषी शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य जगत के अमूल्य निधि है। इन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य के किसी एक विशेष क्षेत्र या विधा पर काम नहीं किया। उनका कार्य क्षेत्र व्यापक था। वे समाज सुधार सांस्कृतिक पुर्नजागरण और राष्ट्रीय जागरण के तंत्रों से जुड़े हुए थे। उन्होंने साहित्य की विधाओं में भी किसी एक विधा तक अपने को सीमित नहीं किया। उपन्यास, कहानी, निबंध, जीवनी, संस्मरण, बाल साहित्य तथा व्यंग्य विनोद आदि विविध विधाओं पर लेखनी चलाकर साहित्य सेवा का प्रशंसनीय कार्य किया। उनका रचनात्मक साहित्य गुणवत्ता और परिमाण दोनों दृष्टियों से बहुआयामी है। उनके दृष्टि प्रसार को देखकर आश्चर्य होता है। उन्होंने साहित्य संस्कृति भाषा, समाज-सुधार, धर्म और राष्ट्रीय समस्या पर सर्वाधिक लेख लिखे।

शिवपूजन सहाय का साहित्यिक जगत में पदार्पण उस समय हुआ जब भारत गुलाम था। हमारा देश दोहरे गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा था। एक ओर अंग्रेजों की औपनिवेशिक गुलामी तथा दूसरी ओर अशिक्षा, बेकारी, जातीयता, वर्ग भेद, अज्ञानता की मानसिक बेड़ियों की गुलामी देश की त्रासदी थी। शिवपूजन सहाय का संपूर्ण साहित्य इन वाह्य एवं आंतरिक बेड़ियों की मुक्ति की अग्रिम कड़ी साबित हुई। इन्होंने अपने साहित्य द्वारा नारी अस्मिता, नारी सशक्तिकरण, हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार तथा ग्राम्य जीवन में सुधार इन मुददो को शामिल किया करते हुए नवजागरण का आगाज किया।

हिन्दी नवजागरण में स्त्री-सशक्तिकरण एक प्रमुख मुद्दा बनकर उभरता है। शिवपूजन सहाय के उपन्यास कहानियों तथा निबंधों में स्त्री-की दशा में सुधार का एक सराहनीय प्रयास हमें दृष्टिगोचर होता है। उनकी प्रमुख कहानी **'मुंडमाल'** हो या कहानी का **'प्लॉट'** स्त्री सशक्तिकरण का नया पाठ हम आसानी से देख सकते हैं। 'मुडमाल' में जहाँ चूड़ावत जी, जो उदयपुर के वीर राजा है उनकी नवोढ़ा पत्नी की वीरता की कहानी है जिसमें नारी सशक्तिकरण की बात की गई है, वहीं कहानी का **'प्लॉट'** में शिवपूजन सहाय ने भगजोगनी की शादी पति की मृत्यु के बाद उसके सौतेले बेटे से कराकर विधवा पुनर्विवाह के संबध में अपनी पक्षधरता का निर्वहन किया है। अपनी कहानियों में ही नहीं अपने उपन्यास तथा निबंधों में भी शिवपूजन सहाय ने नारी को सशक्त बनाने की अनेक स्थितियों का वर्णन किया है। 'देहांती दुनिया' जो उनका प्रमुख उपन्यास है उसमें हम, बुधिया' सुगिया जैसे सशक्त नारी पात्रों को देखते हैं। 'बुधिया' रामटहल की रखैल है फिर भी उसके घर में उसकी ब्याहता पत्नी महादेई के साथ रहने तथा अपने अधिकार की माँग करने में तनिक भी परहेज नहीं करती। वही सुगिया अपने बेमेल पति से जोड़ी बिठाने की शिकायत करते हुए कहती है, ''न जाने इसके साथ मेरे दाना-पानी का मेल जुटाते समय भगवान का कपार क्यों नहीं फट गया उनसे भेंट होती तो मैं जांत उठाकर उनके कपार पर पटक देती।

इतने सशक्त सबल नारी पात्रों का सृजन कर शिवपूजन सहाय ने नारी-नवजागरण का सार्थक प्रयास किया है। बेमेल-विवाह का बहिष्कार तथा विधवा पुनर्विवाह का प्रखर स्वर इनके कथा साहित्य में हमें देखने को मिलता है। शिवपूजन सहाय अपने साहित्य में स्त्री के आदर्श रूप की स्थापना करते हैं। यह उनका स्त्री के प्रति वैचारिक आग्रह था। नवजागरण कालीन अधिकांश लेखकों ने स्त्री की आर्दश छवि को ही अपने लेखन में गढ़ा। इनका समय सामाजिक पुनरूत्थान और सुधार का था। इस कारण इनके लेखन में बदलाव की अपेक्षा सुधार की प्रवृति ही देखी जाती है। उपन्यास तथा कहानियों में ही नहीं बल्कि अपने निबंधों में भी नारी जागरण की बात करते हैं। 'स्त्री-शिक्षा' के प्रति शिवपूजन सहाय का परंपरागत दृष्टिकोण ही उनके निबंध 'विद्या पढ़ना सीखो' में देखा जा सकता है।

''यदि तुम सच्ची विद्या पढ़ना चाहती हो तो सीता के प्रति, अनुसूया देवी के उपदेशों को पढ़ो।'' इस प्रकार इस निबंध में शिवपूजन सहाय की परंपरा के प्रति आस्था को देख सकते हैं। भारतीय संस्कृति की गहरी आस्था के साथ नव-जागरण का आगाज इनके साहित्यिक जीवन की अद्‌भुत विशेषता है। आज 'स्त्री विमर्श एक प्रमुख साहित्यक मुद्दा बना हुआ है, उसका आगाज करीब सौ साल पहले शिवपूजन सहाय ने अपने साहित्य में किया।

नारी-नवजागरण के साथ भाषिक-नवजागरण लाने का प्रभावी प्रयास शिवपूजन सहाय ने किया। इनका समस्त जीवन हिन्दी-सेवा की कहानी है। इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग हिन्दी भाषा में उन्नति एवं उसके प्रचार-प्रसार में व्यतीत किया है। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद नामक हिन्दी की दो प्रसिद्ध संस्थाएँ इनकी कीर्ति कथा के अमूल्य स्मारक के रूप में है। आचार्य शिवपूजन सहाय हिन्दी की कई पत्रिकाओं 'शिक्षा', 'लक्ष्मी', 'मनोरंजन', 'पाटलीपुत्र', 'मतवाला', 'आदर्श', 'लक्ष्मी', 'समन्वय', 'माधुरी', 'गंगा', 'जागरण', 'बालक-साहित्य' आदि के संपादन कार्य से जुड़े रहे। इस तरह शिवपूजन सहाय ने हिन्दी भाषा और साहित्य के नए प्रतिमान स्थापित किए। वह सदैव ही हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में स्थापित रहेगी। नि:स्वार्थ हिन्दी सेवा और साहित्यिक अवदान के लिए शिवपूजन सहाय की ख्यातिसाहित्य में अमिट है। डॉ० विद्यानिवास मिश्र के अनुसार ''उनमें भारतेन्दु जैसी हिन्दी की

चिंता और हिन्दी के लिए वातावरण बनाने के निमित विनोदप्रियता है, श्याम सुंदर जी जैसा संकल्प है कि हिन्दी भाषा को संपन्न बनाना है। अच्छे वैचारिक वांग्मय से शुक्ल जी जैसी साहित्य इतिहास की अस्वादकता और सूक्ष्म दृष्टि है और द्विवेदी जी जैसा आचार्यत्व है।''

शिवपूजन सहाय ने अपनी लंबी साहित्य साधना के दौरान हिन्दी भाषा को प्रचुर पठनीय साहित्य दिया। इनके सर्जन क्षेत्र में अनेक गद्य विद्याए आती है। इन्होंने कहानी, उपन्यास, सस्मरण, जीवनी लिखकर हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्विकी है। इनके साहित्य में संभावनाओं के जो द्वार एक के बाद एक खुलते दिखाई देते हैं वे वास्तव में क्रांतिकारी परिवर्तन के सूचक है। इनका समस्त साहित्य समाज के इर्द-गिर्द घूमता है। समाज में घटित होने वाली घटनाओं और परिस्थितियों को आधार बनाकर इन्होंने साहित्य रचना की। हिन्दी नवजागरण मे सहाय जी का विशेष योगदान है। इन्होंने समाज के कई ऐसे अनसुलझे प्रश्नों जैसे स्त्री विमर्श, हिन्दी का अस्तित्व बोध, आँचलिकता को साहित्य द्वारा उठाया, जिन पर बात करना उस समय सबके बस की बात नहीं थी। इनके द्वारा रचित कहानियों में समाज के विभिन्न पक्षों के संबंध में इनका चिंतन-मनन स्पष्ट दिखाई देता है। समाज के इर्द-गिर्द जो भी विसंगतियाँ उन्हें दिखाई दी निर्भीकता से उन्होंने उनका वणर्न किया। स्त्री-शिक्षा पर इन्होंने बहुत बल दिया। प्रेमचंद ने जिस प्रकार अपने समय के समाज की नब्ज पहचान कर साहित्य रचना की ठीक वैसे ही सहाय जी ने भी की। इनके साहित्य में लोक ज्ञान और व्यवहार की पैनी समझ दिखती है।

शिवपूजन सहाय जी का साहित्य संसार व्यापक फलक वाला तो है ही साथ ही इसमें राष्ट्रप्रेम के उच्चभाव को स्थापित करने का सार्थक प्रयास दिखता है। इसमें समाज को पीछे ढकेलने वाली विद्रुपताओं, गरीबी, पैसे का बोलबाला आदि का पर्दाफास करने की अपूर्व क्षमता है। सच कहे तो इनका साहित्य वक्त की नजाकत और जीवन की गहरी समझ को भी पाठक के भीतर तक उतार देता है। शिवपूजन सहाय के व्यक्तित्व एवं उनके रचना संसार पर हम विहॅगम दृष्टि डालते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि उनका व्यक्तित्व जहाँ बहुमुखी है वहीं उनका रचना संसार बहुआयामी है। अपने साहित्यिक विमर्श द्वारा इन्होंने नवजागरण का सार्थक प्रयास किया है। अत: समाज में जागरण लाने वाले साहित्यकार में जब हम भारतेन्दु का नाम लेते हैं पुनर्जागरण का शंखनाद करनेमें महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम लेने में संकोच नहीं करते तो ऐसे में हिन्दी को स्थापित करने में अपनी पत्रकारिता द्वारा आँचलिकता की प्रथम परिभाषा गढ़ने में 'देहाती दुनिया' द्वारा जो प्रथम पहल इन्होंने किया, साहित्यिक नवजागरण के इनके योगदान को अगर हम भूल जाए तो यह बेमानी होगी।

संदर्भ

1. संकल्प त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका: आचार्य शिवपूजन सहाय और उनकी संपादन कला। 2. वक्तव्य पृष्ट-66 ''शिवपूजन सहाय प्रतिनिधि संकलन संपादक मंगलमुर्ति। 3. संवेद: पत्रिका नवम्बर अंक 19 संपादक किशन कालजयी। 4. मंगलमूर्ति: शिवपूजन सहाय रचना वली खण्ड-2 अनामिका पब्लिसर्श डिस्ट्रीब्युटर । 5. निर्मला जैन निबंधों की दुनिया शिवपूजन सहाय, वाणी प्रकाशन।

डॉ. अंजु कुमारी, वैशाली महिला महाविद्यालय, हाजीपुर, बाबा साहब भीमराव अंबेदकर, बिहार, विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, मो. : 8226933658, ई–मेल : anjukumari69189@gmail.com

शिवपूजन सहाय की कहानियों में नारी

डॉ. रवीन्द्र पाठक

भारत के राजपूताना इतिहास में राजस्थान के हाड़ावंश की हाड़ा-रानी, रूपनगर की राजकुमारी प्रभावती, मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह की पुत्री कृष्णाकुमारी का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। इन स्त्रियों ने अपने राज्य की मर्यादा की रक्षा के लिए अद्‌भुत त्याग और समर्पण का परिचय दिया था। हाड़ा रानी के अदभुत प्राणोत्सर्ग को आचार्य शिवपूजन सहाय ने 'मुंडमाल' नामक कहानी में अत्यंत ओजपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है।

आचार्य शिवपूजन सहाय ने कहानी लेखन उस दौर में शुरू किया था जब हिंदी कहानी अपनी शैशवावस्था में थी। इनकी पहली कहानी थी- 'हठभगत जी' जिसका रचनाकाल 1911 ई. है। कालांतर में इनकी कहानियाँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं यथा-साहित्य-समालोचक, उपन्यास-तरंग, सरोज, मारवाड़ी-अग्रवाल, मनोरमा, पाक्षिक जागरण आदि में छपती रहीं। इनका पहला कहानी-संग्रह 1925 ई. में 'महिला-महत्व' के नाम से प्रकाशित हुआ था। इसमें इनकी दस कहानियाँ संकलित थीं। बाद में इसे 'विभूति' के नाम से भी प्रकाशित किया गया। विभूति के तृतीय संस्करण (1941 ई.) में छह कहानियाँ और जोड़ दी गईं।

आचार्य शिवपूजन सहाय ने साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा कहानियाँ बहुत कम लिखी हैं। इनकी मात्र सोलह कहानियाँ ही उपलब्ध हैं जिसमें एक 'बुलबुल और गुलाब' ऑस्कर वाइल्ड की कहानी का अनुवाद है। कहानी कला की दृष्टि से इनकी कहानियाँ उतनी उत्कृष्ट नहीं हैं। हाँ, 'मुंडमाल', 'कहानी का प्लाट' आदि कुछ कहानियों में कथानक अपेक्षाकृत सुगठित और प्रभावी है। अन्य कहानियों में कथानक में सुसंगठन का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस बात को सहाय जी ने 'विभूति' की भूमिका में स्वयं स्वीकार भी किया है- ''इन कहानियों में कोई कला या

चमत्कार नहीं है। इनमें से अधिकांश की रचना उस समय हुई थी, जिस समय हिंदी-संसार में 'कला' का विशेष प्रवेश नहीं हुआ था।..... ये केवल आत्मतुष्टि के लिए लिखी गई थीं।''[1]

आचार्य शिवपूजन सहाय की अधिकतर कहानियों के प्रधान पात्र नारियाँ हैं। ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने नारी पात्रों को केंद्र में रखकर ही कहानियों की सृष्टि की है। कहानियाँ ऐतिहासिक हो या सामाजिक, उनमें नारियों के विविध चरित्र और रूप सामने उभरकर आए हैं।

एक ओर इन्होंने अपनी कहानियों में इतिहास की उन वीरांगनाओं को पात्र के रूप में चुना जिन्होंने अपनी और अपने देश की शान के लिए सर्वस्व समर्पित कर आत्मगौरव और देशगौरव का परिचय दिया। तो दूसरी तरफ इन्होंने समाज की उन साधारण स्त्रियों को अपनी कहानी का विषय बनाया जो सामाजिक विविध विडंबनाओं की शिकार हैं।

भारत के राजपूताना इतिहास में राजस्थान के हाड़ावंश की हाड़ा-रानी, रूपनगर की राजकुमारी प्रभावती, मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह की पुत्री कृष्णाकुमारी का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। इन स्त्रियों ने अपने राज्य की मर्यादा की रक्षा के लिए अद्‌भुत त्याग और समर्पण का परिचय दिया था। हाड़ा रानी के अदभुत प्राणोत्सर्ग को आचार्य शिवपूजन सहाय ने 'मुंडमाल' नामक कहानी में अत्यंत ओजपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है।

उदयपुर के महाराणा राजसिंह के सरदार चूड़ावत जी अपनी अद्‌भुत वीरता और शौर्य के लिए संपूर्ण भारत में ख्यात थे। उस समय रूपनगर के राठौर वंश की राजकुमारी पर औरंगजेब की कुदृष्टि हो गई थी। वह जबरदस्ती उनसे विवाह करना चाहता था। राजकुमारी उदयपुर के महाराणा राजसिंह से शरणा मांगती है। उसी की रक्षा के निमित सरदार चूड़ावत जी को औरंगजेब के खिलाफ जंग के लिए जाना था। वे जंग के लिए सज-धज कर तैयार थे, किंतु उनका मन अपनी नई नवेली दुल्हन हाड़ारानी में अँटका हुआ था। चार दिन पहले ही उनका विवाह हुआ था। उन्हें इस युद्ध से लौटकर आने की कोई संभावना नहीं दिखती थी, क्योंकि औरंगजेब की विशाल सेना से लोहा लेना आसान काम नहीं था। यों तो चूड़ावत जी ऐसे वीर थे जो परिणाम की चिंता कभी नहीं करते थे, परंतु हाड़ा-रानी का मोहपाश उन्हें विचलित सा करता जान पड़ता है। उनका मन रानी की ओर बरबस खींचा जा रहा था। झरोखे पर बैठी हाड़ा रानी चूड़ावत जी के मानसिक उद्वेलन को समझ लेती है। वह सोचती है- ''मेरे प्राणेश्वर का मन मेरे में ही लगा रहेगा, तो विजय-लक्ष्मी किसी प्रकार उनके गले में जयमाल नहीं डालेगी। उन्हें मेरे सतीत्व पर संकट आने का भय है। कुछ अंशों में यह स्वाभाविक भी है।''[2]

रानी हाड़ा अभी विचारमग्न ही थी कि चूड़ावत जी का अंतिम संवाद लेकर उनका एक सेवक आता है। वह कहता है- ''चूड़ावत जी चिह्न चाहते हैं-दृढ़ आशा और अटल विश्वास का।..... उन्होंने कहा है, ''तुम्हारी ही आत्मा हमारे शरीर में बैठकर इसे रणभूमि की ओर लिए

जा रही है, हम अपनी आत्मा तुम्हारे शरीर में छोड़े जा रहे हैं।''[3]

रानी को लगता है कि जबतक प्राणेश्वर का ध्यान इस शरीर पर रहेगा तबतक वे पूर्ण समर्पण से युद्ध नहीं कर पाएँगे, इसलिए वह सेवक से कहती हैं- ''अच्छा खड़ा रह, मेरा सिर लिए जा।''[4] इस प्रकार हाड़ा रानी अपना सिर काटकर उसे समर्पित कर देती हैं। सरदार चूड़ावत वही मुंडमाल पहनकर रणभूमि की ओर प्रस्थान करते हैं।

इसी प्रकार 'विषपान' नामक कहानी में उदयपुर की राजकुमारी महाराणा भीमसिंह की पुत्री कृष्णाकुमारी देशहित में अपना जीवन समर्पित कर देती है। उसकी सुंदरता और गुणशीलता की प्रसिद्धि इतनी अधिक थी कि उसे 'राजस्थान कमलिनी' की संज्ञा दी गई थी। उससे विवाह करने के लिए जयपुर के महाराजा जगतसिंह और जोधपुर के महाराजा मानसिंह में प्रतिद्वंद्विता हो गई। पठान अमीर खाँ जो बाद में मानसिंह का खैरख्वाँह बन गया था, उसने इस प्रतिद्वंद्विता को खत्म करने के लिए उदयपुर के महाराजा पर उनके मातहत अजित सिंह के माध्यम से यह संदेश भेजा कि या तो राजकुमारी कृष्णा का विवाह मानसिंह से कर दिया जाए या कृष्णाकुमारी को मरवा दिया जाए, नहीं तो उदयपुर की बर्बादी निश्चित है। अजित सिंह अमीर खाँ से मिला हुआ था और उसने भीमसिंह को अमीर खाँ का इतना खौफ दिखाया कि वे देशहित में अपनी पुत्री का बलिदान करने पर मजबूर हो गए। कृष्णाकुमारी की हत्या के लिए भीमसिंह का सौतेला भाई अंत:पुर में तलवार लेकर घूम रहा था। जब इस बात की खबर राजकुमारी कृष्णावती को लगती है तो वह अपने चाचा जवनदास के सामने नतमस्तक हो जाती है। जवनदास उसके इस व्यवहार से भावविह्वल हो जाते हैं। उनकी तलवार हाथ से छूटकर गिर जाती है। कृष्णाकुमारी विष पीकर देश के लिए अपना बलिदान दे देती है। कहानी में कृष्णाकुमारी अपनी शोक-संतप्त माता को समझाते हुए कहती है- ''जननि! तू वीर माता और वीर-वधू होकर इस प्रकार क्यों अधीर हो रही है। राजपूत कन्या होकर मुझे मौत से डरने का क्या काम है? जिस दिन मैंने राजपूत कुल में नारी-जन्म धारण किया, उसी दिन मेरे भाग्य में विधाता ने यह अंकित कर दिया कि 'अकाल अथवा अपघात मृत्यु एक दिन निश्चय ही मरना पड़ेगा।''[5]

एक अन्य कहानी 'सतीत्व की उज्ज्वल प्रभा' में आचार्य शिवपूजन सहाय ने प्रभावती के सतीत्व की रक्षा की कहानी को अपना विषय बनाया है। इसी के दूसरे पक्ष को 'मुंडमाल' नामक कहानी में अभिव्यक्त किया गया है। इसमें प्रभावती रूपनगर के राठौर वंश की राजकुमारी थी उसकी सुंदरता से प्रभावित होकर औरंगजेब उसे बलात् हस्तगत करना चाहता था। प्रभावती ने उदयपुर के महाराणा राजसिंह को पति के रूप में वरण कर उनसे अपनी रक्षा की याचना करती है। महाराणा राजसिंह और उनके सरदार चूड़ावत जी मिलकर उसके सतीत्व की रक्षा करते हैं। इस प्रकार इसमें प्रभावती के शौर्य की गाथा तो नहीं, परंतु महाराणा राजसिंह और चूड़ावत जी को औरंगजेब के विरुद्ध अपने अद्भुत शौर्य के प्रदर्शन का निमित्त जरूर बनती है।

ऐतिहासिक कहानियों की कड़ी में आचार्य शिवपूजन सहाय ने एक और ऐतिहासिक कहानी लिखी है जो उपर्युक्त कहानियों से भिन्न मिज़ाज़ की है। यह भी नारी प्रधान कहानी ही है और पठान-सम्राट अलाउद्दीन की पृष्ठभूमि को लेकर लिखी गई है। अलाउद्दीन अपनी कई बेगमों के साथ आखेट के लिए जाता है और जंगल में ही शिविर लगाकर कुछ दिन वहाँ रहता है। एक दिन अलाउद्दीन की अनुपस्थिति में बेगमों के मन में जलक्रीड़ा का उल्लास जगा। वे सब एक सरोवर में जलविहार करने चली गईं। इसी बीच तेज तूफान आया और सभी बेगमें और उनकी तीमारदारिनें अपनी-अपनी जान लेकर भागीं। सभी आ गए परंतु अलाउद्दीन की नई बेगम खेमें में नहीं पहुँची। बेगमों को ढूँढने गए घुड़सवारों के सरदार को नई बेगम एक झाड़ी में अस्तव्यस्त और नग्नावस्था में मिलती है। सरदार के मिलने से बेगम आश्वस्त और निशंक हो जाती है। उसके पौरुष को देखकर नई बेगम का नारीत्व या कहिए कि वासना जाग उठती है। वह सरदार से प्रणय-निवेदन करती है। कहानीकार के शब्दों में-

''उसमें पुरुषत्व की उत्कट गंध थी। बेगम विह्वल हो उठी। बोली-''मैं सर्दी से जकड़ रही हूँ, कोई ऐसी तदवीर करो कि सेहत हासिल हो।''

सरदार-''मैं फौरन चकमक से आग जलाता हूँ।''
बेगम-''आग तो खुद मेरे दिल में धधक रही है।''
सरदार-''तो ताबेदार को जो हुक्म हो, बजा लाए।''
बेगम-''मुझे अपनी गोद में लेकर प्रेम करो।''
सरदार-''(आश्चर्यचकित होकर) मुझे अपनी जान का खतरा है।''
बेगम- यों भी तुम खतरे से बच नहीं सकते।''[6]

सरदार द्वारा भयवश मना करने पर भी बेगम के हठ और आवेग के आगे वह हार मान जाता है। दोनों प्रेमालिंगन में बंध जाते हैं। तदनंतर दोनों शिविर में लौटते हैं। नई बेगम के मिल जाने से अलाउद्दीन भी बहुत खुश होता है। एक दिन नौकाविहार के समय बेगम न चाहते हुए भी भावावेश में सरदार के साथ अपने प्रणय-प्रसंग को प्रकट कर देती है। फलतः सरदार और नई बेगम दोनों को कारावास में कैद कर दिया जाता है। कारावास काल में उनकी वासना प्रेम में परिणत हो गई। संतरियों की मिली भगत और बेगम के प्रभाव से दोनों कारावास से भागने में सफल हो जाते हैं। दोनों भागकर मेवाड़ के राणा हमीर की शरण में जाते हैं और हमीर अलाउद्दीन का मुकाबला करते हुए शरणागत की रक्षा करते हैं। हालाँकि अंततः सरदार भी उस युद्ध में हमीर की तरफ से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार यह कहानी सल्तनत काल में बादशाहों के बेगमों की स्थिति और उनके प्रेम-प्रसंगों को आधार बनाकर लिखी गई है। बादशाहों के हरम में कई बेगमें होती थीं और उनके ज्ञात-अज्ञात कई प्रेम-प्रसंग होते थे। आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा रचित कहानी 'दुखवा मैं कासे

कहूँ मोरी सजनी' भी शाहजहाँ के हरम की एक ऐसी ही बेगम की कहानी है जिसमें प्रेम-प्रकट हो जाने पर बेगम हीरे की अंगूठी चाटकर जान दे देती है।

इन ऐतिहासिक कहानियों के अलावे आचार्य शिवपूजन सहाय ने कुछ सामाजिक कहानियाँ भी लिखीं हैं जिसमें तत्कालीन भारतीय समाज में स्त्रियों की दयनीय दशा को दिखाया गया है। इन कहानियों में 'वीणा', प्रायश्चित, 'कहानी का प्लाट', 'हतभागिनी चंद्रप्रभा' तथा 'खोपड़ी के अक्षर' आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

'वीणा' में आचार्य शिवपूजन सहाय ने वीणा बजाने और गाने में निपुण 'वीणा' नामक एक विधवा नवयुवती के दुखद अंत की कहानी कही है। यह भारतीय समाज में विधवाओं की दयनीय दशा को दिखाती है। जो स्त्रियाँ अपनी युवावस्था में वैधव्य की मार झेलती हैं उन्हें अपने दुर्भाग्य से ही नहीं लड़ना पड़ता, बल्कि उन्हें लंपट पुरुषों की कुदृष्टि से भी बचना पड़ता है। यह कहानी आत्मकथात्मक शैली में रचित है। इसमें कहानी का नायक वीणा के मधुर गायन और वीणावादन तथा उसके दिव्य सौंदर्य से अत्यंत प्रभावित है। उसकी वासना इतनी बढ़ जाती है कि वह एक गुंडे की तरह छूरे के बल पर उसे नौकाविहार के लिए ले जाता है। वीणा उसे धिक्कारती है- ''रे नीच! तू धोखा देकर मेरे साथ अब बलात्कार करना चाहता है? क्या तू नहीं जानता कि हिंदू-विधवा का जीवन एकांतिक उपासना पर अवलंबित है? क्या तू नहीं जानता कि मुझ अबला का अनाथ-नाथ यहाँ भी मौजूद है? तेरे जैसे दैत्य के दृष्टि-दोष से दूषित यह देह अब हिंदू समाज के योग्य नहीं रही।''[7] इतना कहकर वीणा गंगा में कूदकर अपनी जान दे देती है। बाद में कहानी के नायक को भी अपने कृत्य पर अफसोस होता है। वह भी गंगा में छलांग लगा देता है।

इस भाव की दूसरी सामाजिक कहानी 'प्रायश्चित' है जिसमें कहानी के नायक की पत्नी एक अंग्रेज द्वारा बलात्कार किए जाने पर उसी की पिस्तौल से अपने आप को गोली मार लेती है। यह कहानी भी आत्मकथात्मक शैली में रचित है जिसमें लेखक और उसकी पत्नी मुख्य पात्र हैं। लेखक प्रयाग के जगदीश-मंदिर के दर्शन के उपरांत ट्रेन से लौट रहा था। ट्रेन में काफी भीड़ थी इसलिए लेखक अपनी पत्नी और बूढ़ी नौकरानी को जनाना डिब्बे में बैठाकर स्वयं उसके बगल वाले डिब्बे में बैठ जाता है। आधी रात में जब एक स्टेशन पर गाड़ी रुकती है तब लेखक अपनी पत्नी का हाल-समाचार लेने के लिए जनाने डिब्बे में जाता है। परंतु जनाना डब्बा अंदर से बंद था। उसने खिड़की खटखटाई। अंदर से एक गोरा उसे डपटकर भगाने की कोशिश करता है। असल में जनाने डब्बे से एक-एक कर सारी औरतें अलग-अलग स्टेशनों पर उतर गई थीं और लेखक की पत्नी अकेली रह गई थी। बूढ़ी नौकरानी भी लेखक को खोजने के क्रम में कहीं खो गई थी या किसी स्टेशन पर छूट गई थी। लेखक की पत्नी को अकेला पाकर गोरा उसे बंधक बना लेता है और उसके साथ बलात्कार करता है।

लेखक उस जनाना डिब्बे में किसी प्रकार घूसने में कामयाब हो जाता है। जबकि लेखक की पत्नी को अपने पति को सामने देखकर खुशी होती है, परंतु गोरे द्वारा बलात्कृत होने के कारण वह अपने आप को अपने पति के योग्य नहीं समझती। वह अपने पति से कहती है-''यह दलित कुसुम अब आपके पूज्य चरणों पर चढ़ाए जाने योग्य नहीं है। इस प्रवंचनापूर्ण संसार के रचयिता के प्रति मैं बड़ी कृतज्ञ हूँ, जिसकी दया से अंतिम समय में आपके दर्शन प्राप्त हो गए।''[8] वह गोरे का पिस्तौल छीनकर स्वयं को गोली मार लेती है।

हालाँकि जिस अपराध की सजा कहानी की नायिका ने अपने आपको दिया है वह अपराध उसका है ही नहीं। अपराध तो उस गोरे का है जिसने उसका मानमर्दन किया। परंतु दकियानूसी भारतीय समाज में बलात्कार का दोषी स्त्री को ही माना जाता है और स्त्रियाँ भी बलात्कार के बाद अपने को अपवित्र मान लेती हैं और उन्हें लगता है कि अब उन्हें जीने का कोई अधिकार नहीं। शायद इसी तथ्य की ओर लेखक ने संकेत किया है।

आचार्य शिवपूजन सहाय की सर्वाधिक चर्चित कहानी 'कहानी का प्लाट' है। इसमें लेखक ने तत्कालीन भारतीय समाज की कई विडम्बनाओं को उजागर करने का प्रयास किया है। यथा-बेमेल विवाह, गरीबी, बेटी बेचने की समस्या, दहेज की समस्या आदि। इस कहानी में उन्होंने एक गरीब घर में पली-बढ़ी लड़की 'भगजोगनी' को अपनी कहानी का विषय बनाया है। यह कहानी कई मायनों में उनकी अन्य कहानियों से अलग है। अन्य कहानियों में शिवपूजन सहाय जी ने जो नारियों का आदर्श प्रस्तुत किया उससे यह बिलकुल भिन्न एवं अपने तत्कालीन ग्रामीण परिवेश के लिए क्रांतिकारी भी है। भगजोगनी की परवरिश अत्यंत दारिद्र्यपूर्ण स्थिति में होती है। गरीबी के कारण उसका विवाह उससे बहुत अधिक उम्र के व्यक्ति से कर दिया जाता है। अपने पहले पति की मृत्यु के बाद भगजोगनी अपने ही सौतेले बेटे से विवाह कर लेती है। लेखक कहानी के अंत में लिखता है-''भगजोगनी आज जीती है। आज वह पूर्ण युवती है। उसका शरीर भरा-पूरा और फूला-फला है। उसका सौंदर्य उसके वर्तमान नवयुवक पति का स्वर्गीय धन है। उसका पहला पति इस संसार में नहीं है। दूसरा पति है-उसका सौतेला बेटा।''[9]

उपर्युक्त कहानियों के अतिरिक्त सहाय जी द्वारा लिखित कुछ ऐसी कहानियाँ भी हैं जिनमें नारी के प्रेमिका रूप की विवृति हुई है। 'हतभागिनी चंद्रतारा', खोपड़ी के अक्षर' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'हतभागिनी चंद्रतारा' एक ऐसी कहानी है जिसमें अभागी चंद्रतारा विवाहित होकर भी अपने पति के प्रेम के लिए तरसती रहती है, क्योंकि उसकी माता उसका गौना ही नहीं होने देती है। माँ को लगता है कि बेटी की विदाई के बाद वह अकेली रह जाएगी। कहानी के अंत में एक मेले में तारा और उसके पति वंशलोचन का मिलन होता है, परंतु यह मिलन बड़ी मार्मांतक स्थिति उत्पन्न कर देता है। असल में मेले में जब किसी युवक की मृत्यु के समाचार से अफरा-तफरी मच जाती है तो तारा भी उसे देखने जाती है और वहीं उसे पता चलता है कि जिसके विरह में वह इतने वर्षों से

व्याकुल है वह उसके सामने मृत पड़ा है। मुलाकात भी हुई तो ऐसी। वह इस सदमें को बर्दाश्त नहीं कर पाती और वहीं वह भी ढेर हो जाती है। ''कौन जानता था कि श्मशान-घाट की सैकत-शैय्या ही 'तारा' और 'लोचन' की पुष्पशैय्या होगी? किसको मालूम था कि गंगा का पवित्र पुलिन ही तारा और लोचन का मिलन-मंदिर होगा? कब ऐसी आशा थी कि जिसके प्राण विरहानल-ज्वाला में जल रहे थे, उसकी स्थूल काया एक ही चिता की अग्नि में भस्मीभूत होगी?''[10]

इस कहानी में मुख्य रूप से बाल-विवाह की विडम्बना को प्रस्तुत किया गया है।

'खोपड़ी के अक्षर' में आचार्य शिवपूजन सहाय ने एक ऐसे आधुनिक और पढ़ी-लिखी लड़की को विषय बनाया है जिसके हृदय में अपने घर काम करने वाले मुंशीजी के पुत्र के प्रति अव्यक्त प्रेम छिपा रहता है। वह इसे चाहकर भी प्रकट नहीं कर पाती, लेकिन जब मुंशीजी के बेटे का विवाह अन्यत्र हो जाता है तब अचानक एक दिन उसका प्रेम प्रकट होता है। परंतु इस प्रेम को मंजिल नहीं मिल सकती थी। इसके लिए बहुत देर हो चुका था।

इस प्रकार आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपने समय के अनुसार अपनी कहानियों में स्त्रियों के विविध रूपों को दिखाने का प्रयास किया है। कहानी कला की दृष्टि से इनकी कहानियाँ भले ही शिथिल मालूम होती हैं, परंतु जिन उद्देश्यों को लेकर इन्होंने कहानी की रचना की है उसमें ये सफल हुए हैं। इनकी कहानियों की एक और विशेषता यह है कि ये किसी न किसी सूक्ति, काव्य-पंक्ति, शेर आदि से शुरू होती हैं और बीच-बीच में भी भावानुसार काव्य-पंक्तियाँ आती रहती हैं। ये काव्य-पंक्तियाँ और शायरियाँ अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू के प्रसिद्ध कवियों और शायरों से ली हुई होती हैं। कहीं-कहीं स्वरचित भी जान पड़ती हैं।

संदर्भ :

1. विभूति, शिवपूजन सहाय, पृ. 03, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, (तृतीय संस्करण) 1941, 2. उपरिवत्, पृ. 10, 3. उपरिवत्, पृ. 10, 4. उपरिवत्, पृ. 10, 5. उपरिवत्, पृ. 44-45, 6. उपरिवत्, पृ. 230, 7. उपरिवत्, पृ. 75, 8. उपरिवत्, पृ. 117, 9. उपरिवत्, पृ. 212, 10. उपरिवत्, पृ. 107

डॉ. रवीन्द्र पाठक, राजकीयकृत रामधारी उच्च विद्यालय, रजवाडीह, मेदिनीनगर, पलामू, झारखंड–822118

आचार्य शिवपूजन सहाय और उनका हिन्दी प्रेम

प्रदीप कुमार शर्मा

हिन्दी के श्रेष्ठ लेखकों में शुमार आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपनी रचनाओं में जन सुबोध भाषा का प्रयोग किया है। उनके लेखन पर डा. परमानंद श्रीवास्तव ने कहा है 'वह सच्चे अर्थों में जनता के लेखक हैं। जनता के जीवन शक्ति को चरितार्थ करने वाले लेखक हैं। वे उनके लिए लिखते हैं जो पढ़े लिखे नहीं हैं।'

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था 'आचार्य शिवपूजन सहाय विनय और शील के मूर्तिमान रूप थे। साहित्य सेवा उनके स्वभाव था। कालिदास ने जिसे 'कांचन - पद्म - धर्मिता' कहा है वह पूर्णरूप से उनमें मिलती थी -- दृढ़, उज्जवल और कोमल।'

आज जब हम अपनी मातृभाषा का अनादर करके एक ऐसी भाषा को अपने गले से लगाए हुए हैं जो हमें हमारी अपनी ही संस्कृति व परंपरा से काटने पर आमादा है। अंग्रेजीयत की आड़ी तीरक्षी बोली चाली परायेपन का अहसास कराती है। ऐसे में हिन्दी के साधक और सेवक के रूप में आचार्य शिवपूजन सहाय जिन्होंने मातृभाषा के समग्र विकास के लिए जिंदगी भर संघर्ष किया। हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए आजीवन समर्पित रहे। ऐसे महान विभूति का हम आदर पुर्वक सच्चे हृदय से उनका जन्मोत्सव मना रहे हैं।

हिन्दी की बुराई वे न तो देखना चाहते थे और ना ही सुनना चाहते थे। पटना से निकलने वाली एक त्रैमासिक पत्रिका में एक बार उन्होंने कहा था 'राष्ट्रभाषा की क्षति अहिन्दी भाषियों से कम लेकिन इसको बिगाड़ने का काम हिन्दी के जन्म स्थान उत्तर भारत में ही हो रहा है। अपने एक भाषण में उन्होंने एक और बात कही थी वह आज के संदर्भ में बिल्कुल सत्य है। उन्होंने कहा था साहित्य की जगह गत दो तीन दशकों से अखबार में लगातार सिकुड़ता जा रहा है। ऐसे निर्भिक साहित्यकार का जन्म बिहार के आरा जिला स्थित गांव उनवास में 9 अगस्त 1893 को हुआ था।

जो बात उन्होंने 1943 - 62 के बीच कभी कही थी। साहित्य के साथ ऐसा भेदभाव

जो उन्होंने तब देखा कमोबेस वह आज भी बरकरार है। बहुत से ऐसे अखबार हैं जो अपनी पेजों पर साहित्य को स्थान नहीं देते। वे यह कहकर अपना पल्ला झाड़ लेते हैं कि साहित्य पढ़ने वाला पाठक वर्ग है ही नहीं जबकि उसी के समकक्ष दूसरे अखबार अपने साहित्य पेज पर प्रत्येक सप्ताह के किसी एक दिन साहित्य परिशिष्ट निकालते हैं।

इससे होता यह है कि नए लिखने वालों को सप्ताह में एक बार नकारात्मक खबरों के बीच से साहित्य पढ़ने का मौका मिलता है। उत्तर भारत के कुछ ऐसे अखबार हैं जो अपने संस्करण में मनमर्जी साहित्य पेज लगाते हैं। जब मन हुआ तब और चुनाव के समय में तो बिल्कुल ही नहीं। ऐसे में उस क्षेत्र विशेष के साहित्यानुरागी अपने आपको उपेक्षित महसूस करते हैं।

साहित्य में कुछ लिखकर अखबारों में छपने हेतु भेजने की उनकी अभिरूचियां कुंठित हो जाती हैं। उनका लिखा सामने नहीं आ पाता। स्थानीय अखबारों के संस्करण अपने सर्कुलेशन को बढ़ाने के लिए साहित्य की जगह राजनीति का घमासान छापते हैं। यही नहीं हिन्दी के बहुत से ऐसे विद्वान भी हैं जो लिखते तो हैं हिन्दी में लेकिन साहित्यिक गोष्ठियों में फर्राटे के साथ दो लाईन हिन्दी तो पूरा वक्तव्य अंग्रेजी बोलते देखे जाते हैं।

इन दिनों हिन्दी साहित्य में तो एक नया ही प्रचलन चल पड़ा है जो हिन्दी को भारी नुकसान करता दिखता है। वह यह है कि हिन्दी साहित्य लेखन में अंग्रेजी शब्दों का भी समावेश धड़ल्ले से हो रहा है और इसमें खुब खाद पानी डाल रहे हैं आज के नए लिखने वाले युवा और साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं से इन्हें खुब वाहवाही भी मिल रही है। इसमें कुछ पुराने साहित्यकार भी शामिल हैं। हिन्दी के माथे पर जो खुबसुरत बिन्दी लगा हुआ है उसमें एक धब्बे के समान दिखता है।

हिन्दी साहित्य में संस्कृत, उर्दू और फारसी शब्दों का मिलन पढ़ते हुए मन को सुकुन देता है लेकिन अंग्रेजी शब्दों का घुलना मिलना हिन्दी साहित्य में कंकड़ पत्थर की तरह दांतों को सिहराता है। आचार्य शिवपूजन सहाय जी भी कहते थे 'अरबी और फारसी का आगमन कभी अरब और फारस से हुआ होगा मगर उर्दू तो सोलहों आना भारत की ही उपज है।'

हिन्दी के श्रेष्ठ लेखकों में शुमार आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपनी रचनाओं में जन सुबोध भाषा का प्रयोग किया है। उनके लेखन पर डा. परमानंद श्रीवास्तव ने कहा है 'वह सच्चे अर्थों में जनता के लेखक हैं। जनता के जीवन शक्ति को चरितार्थ करने वाले लेखक हैं। वे उनके लिए लिखते हैं जो पढ़े लिखे नहीं हैं।'

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था 'आचार्य शिवपूजन सहाय विनय और शील के मूर्तिमान रूप थे। साहित्य सेवा उनके स्वभाव था। कालिदास ने जिसे 'कांचन - पद्म - धर्मिता' कहा है वह पूर्णरूप से उनमें मिलती थी -- दृढ़, उज्जवल और कोमल।'

संधार्शों से वे कभी विचलित नहीं हुए। वे बड़े स्वाभिमानी और मनस्वी थे। वे सच्चे हृदय से किसी भी धर्म का सम्मान करते थे। यही नहीं वे अपने से छोटों का भी उसी प्रकार सम्मान देते थे। वे सच्चे अर्थों में महान इंसान। सादगी की मूर्ति थे। अहंकार उनमें रंचमात्र भी न था। हिन्दी के समग्र विकास के लिए आजीवन समर्पित रहे। हिन्दी का सर उन्होंने झुकने नहीं दिया। जहां कहीं भी उन्होंने हिन्दी के प्रति अन्याय होते देखा। पुरजोर उसका विरोध किया। यही नहीं जो लोग साहित्य का संवद्धन करने में लगे हुए थे। उनका उन्होंने हमेंशा उत्साह बढ़ाया। ऐसे थे आचार्य शिवपूजन सहाय।

साहित्य लेखन में उनकी यह विशेषता थी कि वे व्याकरण सम्मत सरल भाषा का प्रयोग करते थे। इनकी कहानियों में आंचलिकता का स्पर्श देखने को मिलता है। ठेठ गंवइ भाषा का प्रवाह है। हिन्दी के शाब्दिक आडंबरों से बाहर निकलकर आम आदमी के लिए लिखते थे। वे सहज उनकी कहानियों को पढ़ सके। इनकी कहानी पांड़ेजी का प्रपंच, मैला आंचल, बलचलमा और देहाती दुनिया खुब पढ़े गए।

आचार्य शिवपूजन सहाय जी दिल के बहुत मुलायम और ईमानदार प्रवृति के व्यक्तित्व थे। वे कभी अपने मातहतों से ऊंची आवाज में बात नहीं करते थें और न ही कभी उनपर काम का बोझ डालते थे। जब कभी किसी से कोई गलती हो जाती तो वे उसे बिना एक शब्द बोले उसमें सुधार कर देते थे। साहित्य परिषद् के संचालन के समय वे सबसे पहले अपने कार्यालय में आते और सबसे बाद में जाते। साहित्य संपादन का कार्य भी एक बार वे अस्पताल में भर्ती के समय लेटे लेटे लिख दिया था।

हिन्दी तो उनकी इतनी विशुद्ध थी कि उनकी लेखनी में एक कोमा, डैश या बिन्दु विसर्ग तक नहीं छुटता था। ऐसे मुर्धन्य लेखक थे शिवपूजन सहाय जी। वे पुराने पीढ़ी के बुजुर्ग साहित्यकार थे। उनसे मिलने वाले जवान, प्रौढ़ साहित्यकार उनकी विनम्रता, सज्जनता व शिष्टता से प्रभावित हुए बिना न रहते थे। वे नए लिखने वाले युवा लेखकों को सदा प्रोत्साहित करते थें।

वे उम्र में निराला जी से बड़े थे लेकिन निराला जी से उनका व्यावहार सहज मित्र जैसा था। और वे उनका बहुत आदर भी करते थे। एक बार राम विलास शर्मा ने निराला पर उनसे संस्मरण लिखने को कहा तो वे इस कारण इंकार कर दिए थे कि वे उनपर जो कुछ भी लिखेंगे। सच्चाई लिखेंगे और उनके सच लिखने से तत्कालिन समय के साहित्यिक जगत में भुचाल आ सकता था।

शायद निराला जी के साथ अन्य साहित्यकारों का जो कटु अनुभव था वह आचार्य शिवपूजन सहाय का देखा भाला था जो अक्षरश लिखने पर हो सकता था बखेड़ा खड़ा हो जाता। इसी कारण से वे निराला जी पर कभी नहीं लिखा। शिवपूजन सहाय निराला जी के बारे में लिखते हैं निराला जी ऐसे इंसान थे कि यदि उनके सामने कोई दीन हीन अवस्था में आ जाता तो उनके पास जो कुछ भी रहता उसे वे तुरत उतारकर दे दिया करते थे। अगर उनके पास खाने की भी कुछ चीज

रहती तो वे उसे अपने सामने पड़ने वाले किसी दीन हीन को देने में जरा भी नहीं चुकते थे। दीन हीन ही नहीं वे अपने कई साहित्यकार मित्रों की आर्थिक मदद भी की थी।

आचार्य शिवपूजन सहाय जी निराल जी के बारे में लिखते हैं। कलकत्ता के विवेकानन्द सोसायटी से जब हिन्दी मासिक 'समन्वय' का प्रकाशन शुरू हुआ तो निराला जी को उसका संपादक बनाया गया था। निराला जी कलकत्ता आ गए. यहां रहते हुए वे सादगी पुर्ण सन्यासी का जीवन बिताते थे। यहां से उनको जो तनख्वाह मिलती थी उसे भी वे किसी जरूरत मंद के मांगने पर तुंरत देकर फक्कड़ हो जाते थे। उनके इसी सहृदयता के कारण कितने ही लोग निराला जी को ठगा भी लेकिन वे कभी उसका बूरा नहीं माने। उनके करीब के बहुत से लोगों ने उनका खुब फायदा भी उठाया।

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान शिवपूजन सहाय ने रचनात्मक भूमिका निभाई थी। अपनी देशभक्ति पुर्ण लेखों से भारतीय जनमानस को झकझोर दिया था। अपनी ओजपूर्ण लेखों के कारण वे आचार्य कहे जाने लगे थे। हिन्दी की सेवा करने के कारण निराला जी उन्हें जब कभी पत्र लिखते थे तो उनके नाम के साथ 'हिन्दी भूशण' लिखना न भुलते थे।

हजारी प्रसाद द्विवेदी उनके बारे में लिखते हैं 'सहाय जी विनय और शील की मुर्ति थे। अहंकार उनमें रंचमात्र भी न था। स्वाभिमान उनमें कुट कुटकर भरा था। उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया लेकिन हिन्दी का सर झुकने नहीं दिया। जहां कहीं भी हिन्दी का अपमान होते देखा। उसका डटकर विरोध किया। वहीं जो लोग हिन्दी साहित्य की सेवा में तन मन धन से अर्पित थे। वे लोग उनके आदर के पात्र थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं ऐसे हिन्दी सेवी को सच्चे अर्थों में अजातशत्रु कहा जा सकता है।

आचार्य शिवपूजन सहाय भारतेन्दू हरिशचंद्र जी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पूज्य बाबूराव पराड़कर जी, प्रेमचंद जैसे समकालिन साहित्यकारों के साथ भी रह चुके थे बल्कि काशी में जब प्रेमचंद सरस्वती प्रेस चला रहे थे। उसमें इन्होंने सहयोग भी किया था। वे लिखते हैं कि प्रेमचंद बहुत ही हंसोढ़ और मजाकिया प्रवृति के व्यक्तित्व थे। उनकी 'हंस' और 'जागरण' पत्रिका में आचार्य शिवपूजन सहाय अपनी रचनाएं भी छपने हेतू भेजते थे।

खुब लिखने पढ़ने के कारण दिन पर दिन उनकी आंखें कमजोर होने लगी थी। फिर भी उन्होंने लिखना पढ़ना नहीं छोड़ा। जिंदगी के आखिरी क्षणों तक वे लिखते पढ़ते रहे। हिन्दी की सेवा करते रहे। आजीवन कठिन संघर्ष अपार थकान और निस्सीम वेदना को छुपाकर हिन्दी की सेवा करने वाले कर्मठ योगी को कोटि कोटि नमन।

प्रदीप कुमार शर्मा, हो. नं.–4, भोजपुर कॉलोनी, बारीडीह बस्ती, जमशेदपुर–831017 (झारखंड)
मो. : 8092231276, ई–मेल : pradipsharmajsr@gmail.com

✧ ✧ ✧

आंचलिक उपन्यास के जनक आचार्य शिवपूजन सहाय

सुनीता रानी राठौर

हिंदी के गद्य साहित्य में आपका एक विशिष्ट स्थान है। आपकी भाषा बड़ी सरल व सहज है। आपने मुहावरों के संतुलित प्रयोग से लोक रुचि को स्पर्श करने की चेष्टा की है। आपकी शैली भी ओज गुण संपन्न है। भाषा शैली आपकी आज भी नई प्रतीत होती है जो आप को कालजयी बनाती है।

आप सदा हिंदी साहित्य जगत में देदीप्यमान तारा की भांति दीप्तिमान होते रहेंगे।

बिहार की साहित्यिक भूमि पर महान साहित्यकारों के मध्य आचार्य शिवपूजन सहाय जी अग्रणी स्थान रखते हैं। 9 अगस्त 1893 को गाँव उनवांस जिला शाहाबाद, बिहार में आपका जन्म हुआ और 21 जनवरी 1963 को पटना में देहावसान।

आपने अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को साहित्य साधना में समर्पित किया। सामाजिक जीवन का शुभारंभ हिंदी शिक्षक के रूप में किया और साहित्य के क्षेत्र में पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से पदार्पण किया। असहयोग आंदोलन के प्रभाव से आपने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दी। आप अपने समय के बहुत ही लोकप्रिय और सम्मानित व्यक्ति रहे। सामाजिक सरोकारों में भी अग्रणी रहे।

साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में सन् 1960 में आप 'पद्मभूषण' से सम्मानित हुए। हिंदी साहित्य में कहानी, उपन्यासकार, पत्रकार और संपादक के रूप में अहम भूमिका निभाई।

सन 1910 से 1960 तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में सारगर्भित लेख लिखते रहे। आपने हिंदी पत्र और पत्रकारिता की स्थिति पर गंभीर टिप्पणियां भी प्रस्तुत की।

आपकी 'देहाती दुनिया' (1926 ई.) जो प्रयोगात्मक चरित्र प्रधान औपन्यासिक कृति है बहुत ही चर्चित हुई। 'देहाती दुनिया' को हिंदी का पहला आंचलिक उपन्यास माना गया।

आप मुख्यत: गद्य के लेखक थे। 'ग्राम सुधार', 'वे दिन वे लोग', 'स्मृति शेष'

आदि कृतियां भी चर्चित रही। आप की कहानियां शिक्षा, लक्ष्मी, मनोरंजन, पाटलिपुत्र आदि पत्रिका में प्रकाशित होते थे। स्वतंत्रता के बाद आप 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद' के संचालक तथा बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन की ओर से प्रकाशित 'साहित्य' नामक शोध समीक्षा प्रधान त्रैमासिक पत्र के संपादक रहे।

जागरण, हिमालय, माधुरी, बालक आदि कई प्रतिष्ठित पत्रिकाओं और पुस्तकों का भी संपादन किया। पुस्तकों में 'राजेंद्र अभिनंदन ग्रंथ' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आपकी रचनाएं विभिन्न विषयों से संबंध रखती है और उनकी विधाएं भी भिन्न-भिन्न है।

'बिहार का बिहार' रचना बिहार प्रांत का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत करती है।

'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद' (पटना) ने आप की विभिन्न रचनाओं को अब तक चार खंडों में 'शिवपूजन रचनावली' के नाम से प्रकाशित किया है।

हिंदी के गद्य साहित्य में आपका एक विशिष्ट स्थान है। आपकी भाषा बड़ी सरल व सहज है। आपने मुहावरों के संतुलित प्रयोग से लोक रुचि को स्पर्श करने की चेष्टा की है। आपकी शैली भी ओज गुण संपन्न है। भाषा शैली आपकी आज भी नई प्रतीत होती है जो आप को कालजयी बनाती है।

आप सदा हिंदी साहित्य जगत में देदीप्यमान तारा की भांति दीप्तिमान होते रहेंगे।

बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् के वार्षिकोत्सव (1956) के अवसर पर निबंध गोष्ठी में उपस्थित (बाएं से) : सुहैल अजीमाबादी (उर्दू), पं. केदारनाथ शर्मा 'सारस्वत' (संस्कृत), करतार सिंह दुग्गल (पंजाबी), लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' (अध्यक्ष), शिवपूजन सहाय (परिषद्-निदेशक), छगनलाल जैन (असमिया), प्रो. पृथ्वी नाथ पुष्प (कश्मीरी), एवं डा. बजरंग वर्मा।

सुनीता रानी राठौर, पूर्व अध्यापिका, ग्रेटर नोएडा (उत्तर प्रदेश) गृह नगर : पटना (बिहार)

आचार्य शिवपूजन सहाय के निबंधो में पत्रकारिता का स्वरूप

अमित कुमार मिश्रा

आचार्य शिवपूजन सहाय के निबंधों और विभिन्न पत्रिकाओं के संपादकीय लेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट पता चलता है कि वे जितने चिंतित राष्ट्रभाषा और हिन्दी साहित्य के विकास को लेकर थे, उससे कम पत्र-पत्रिकाओं को लेकर भी नहीं। उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं की महत्ता को समझा। यह महसूस किया कि साहित्य और भाषा के निर्माण में उसकी कितनी बड़ी भूमिका होती है। यही कारण है कि वे अपने समय की पत्र-पत्रिकाओं की सतर्कतापूर्वक समीक्षा करते रहे। उसके गुण और दोषों को उजागर करते रहे। जिससे कि पत्र-पत्रिकाओं का स्वरूप निखारा जा सके। पूरे हिन्दी साहित्य में इस तरह का कार्य आचार्य शिवपूजन सहाय जैसे कुछ विरले साहित्यकारों ने ही किया है।

आचार्य शिवपूजन सहाय जैसे बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकारों के होने से ही किसी भी भाषा और साहित्य को विश्व स्तरीय ख्याति प्राप्त होती है। आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपने समय की पत्रकारिता को समग्रता से प्रभावित तो किया ही, उसके स्वरूप निर्धारण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। वे कई साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादन-कार्य से जुड़े रहे। कई महत्वपूर्ण ग्रंथों का संशोधन, संपादन भी उन्होंने किया। अपने समय की पत्रकारिता के प्रति वे वैसे ही सजग रहे, जैसे भाषा और साहित्य के प्रति। आज जिस तरह की पत्रकारिता की जा रही है उसे आचार्य शिवपूजन सहाय के पत्रकारिता संबंधी मतों से मांज कर चमकाया जा सकता है और पत्रकारिता पर लगे हुए कलंक को धोया जा सकता है। अपने समय में निकलने वाले दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, हर तरह के पत्र-पत्रिकाओं के स्वरूप, भाषा-शैली, छपाई, शुद्धि, सामाजिक सरोकार आदि पर आचार्य शिवपूजन सहाय ने गंभीरतापूर्वक चिंतन-मनन किया है।

बिहार से निकलने वाली पत्रिकाओं के स्वरूप पर विचार करते हुए आचार्य शिवपूजन सहाय ने जो लिखा वह न सिर्फ उस समय प्रासंगिक था बल्कि आज भी उसकी प्रासंगिकता जस-की-तस बनी हुई है। उन्होंने लिखा था -

''बिहार के हिन्दी पत्रों की दशा किसको मालूम नहीं है। सब लोग जानते हैं कि

बिहार के हिन्दी पत्र कैसे अच्छे निकलते हैं। दुनिया में देखा-देखी उन्नति भी होती है, प्रतिद्वंदिता का भाव जोर पकड़ता है, पर बिहार के पत्र तो दूसरे को सरपट दौड़ते देखे दुलकी भी नहीं मारते। न टाइप साफ, न छपाई शुद्ध, न भाषा आकर्षक, न विराम-चिन्हों का ठिकाना, न विषयों का चुनाव ठीक, न सामग्री-संकलन सुन्दर - यूं ही यत्र-तत्र लेख और संवाद बिखरे पड़े हैं, मानों इधर-उधर का कूड़ा बटोर कर एक जगह रख दिया हो।'' 1

स्पष्ट तौर पर हम देख सकते हैं कि आचार्य शिवपूजन सहाय पत्रकारिता के प्रति कितने सतर्क थे। किसी भी रचना को उठाकर जैसे-तैसे पत्रिका में प्रकाशित मात्र कर देने से पत्रकारिता की जिम्मेदारी पूरी नहीं हो जाती है। आज भी अधिकांश पत्रिकाओं में यह सहज ही देखने को मिल जाता है कि कुछ भी लिख कर भेज दी गई हो यदि वह टूटी-फूटी भाषा में भी हो तब भी उसे बगैर पढ़े, बगैर संशोधित किए छाप दी जाती है। आचार्य सहाय की दृष्टि सिर्फ साहित्यिक पत्रिकाओं पर ही नहीं जमी थी बल्कि वह दैनिक पत्रों की भी समीक्षा किया करते थे। उनका मानना था कि पत्र-पत्रिकाओं की भाषा से समाज को भाषा सीखने में, अर्जित करने में काफी मदद मिलती है। इसलिए उनकी भाषा परिमार्जित होनी आवश्यक है। अपने समय में निकलने वाले बिहार की पत्रिकाओं को देखकर उन्हें काफी दु:ख पहुंचता था। उनके दु:ख का कारण यही था कि पत्रिकाओं की छपाई स्पष्ट नहीं थी और भाषा के स्वरूप पर भी ध्यान नहीं दिया जाता था।

''बिहार के हिन्दी पत्रों की दशा देखकर बड़ा क्षोभ, बड़ी ग्लानि और लज्जा होती है। पहले तो बिहार में कई अच्छे थे, पर अभाग्यवश वे सदा चल ना सकें।'' 2

उनका मानना था कि कितना भी सुंदर लिखा गया हो, पत्र-पत्रिका यदि उसे करीने से सजाकर प्रस्तुत नहीं कर पा रही है तो निश्चित रूप से वह साहित्य पाठक पर अपना संपूर्ण प्रभाव डालने में सफल नहीं हो सकेगा। इसके लिए जरूरी है कि बार-बार पाठ का संशोधन, परिमार्जन कुशल व्यक्ति के द्वारा किया जाए और छपाई की भूलें कम से कम हो। 'हिन्दी के दैनिक पत्र' शीर्षक निबंध में उन्होंने लिखा है -

''अच्छे से अच्छे लेख, उत्तमोत्तम टिप्पणियां, बढ़िया से बढ़िया समाचार और आवश्यक से आवश्यक चित्र भी अगर साफ-सुथरे न छपें - धुंधले अक्षर हो - टूटे-फूटे और उल्टे सीधे टाइप लगे हो - पांत-की-पांत बीच में से गायब हो - अक्षरों और मात्राओं में पूर्ण सहयोग हो, तो संपादन-संबंधी सारा परिश्रम व्यर्थ है।'' 3

यहां स्पष्ट तौर पर आचार्य शिवपूजन सहाय संपादन-कर्म के सभी दायित्वों को उजागर कर देते हैं। किसी भी रचना का संपादन इतना सहज नहीं होता है कि उसे सीधे टाइप कर के छाप दिया जाए। संपादन-कर्म की जिन बारीकियों को आचार्य शिवपूजन सहाय ने यहां उल्लेखित किया है उसकी आवश्यकता उस समय की पत्रकारिता से कहीं अधिक आज की पत्रकारिता को है। अंग्रेजी के अखबार 'स्टेट्समैन और पायनियर' का उदाहरण वे बार-बार दिया करते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि हिन्दी में भी वैसे हीं शुद्ध और परिमार्जित भाषा में पत्रों का प्रकाशन हो तभी हिन्दी भाषा परिष्कृत और परिमार्जित हो सकेगी। उनकी चिंता, भाषा के स्वरूप को लेकर सदैव

बनी रही थी। उन्होंने लिखा है –

''स्टेट्समैन और पायनियर के विज्ञापनों तक में बिन्दु-विसर्ग की गलती नहीं पाई जाती, तो हम भी क्यों न ऐसी चेष्टा करें कि हमारे हिन्दी पत्रों में भी वैसी ही शुद्धता रहे।'' 4

अब यह देख कर खुद ही विचार करने वाली बात है कि कहां हमारी भाषा का एक साधक यह चाहता था कि हमारे पत्रों में छपने वाले विज्ञापन तक परिष्कृत भाषा और प्रभावशाली शब्दों में छपे और कहां उसी भाषा और साहित्य की ऐसी दुर्गति हो चली है कि पूरा-का-पूरा अखबार हिन्दी और अंग्रेजी के काम चलाऊ शब्दों से भर दिया जाता है। ऐसा नहीं है कि शिवपूजन सहाय पत्र-पत्रिकाओं की दशा और उसके स्वरूप पर आलोचना करते थे, टीका-टिप्पणी लिखते थे और उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता हो। साहित्य का वह दौर ही ऐसा था कि पत्र-पत्रिकाओं के संचालन-संपादक आलोचकों का सम्मान करते थे और उनके द्वारा सुझाए गए कमियों को दूर करने का प्रयत्न करते थे। एक उदाहरण से यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि कैसे शिवपूजन सहाय की आलोचना के बाद पत्रिकाओं की दशा में सुधार किया गया था।

1927 ई० में आचार्य शिवपूजन सहाय ने साप्ताहिक 'हिन्दू-पंच' में अपने लिखे लेख 'बिहार के हिन्दी पत्र' में लिखा था –

''राजेन्द्र बाबू के चरणरेणु-कण भी शिरोधार्य करने की पात्रता मुझमें नहीं है, फिर भी निर्भय होकर कहे बिना रहा नहीं जाता कि 'देश' के संपादन से बिहार के साप्ताहिक गौरव की रक्षा नहीं हो रही है। और राजनीतिक जागृति के काम में भी वह अपनी श्रेणी के प्रतिष्ठित पत्रों में पिछड़ा हुआ है। यदि राजेन्द्र बाबू चाहे तो यूपी के 'प्रतापी' प्रताप की तरह 'देश' को भी बिहार की एक जबरदस्त संस्था बना सकते हैं।'' 5

अब इसी के साथ एक दूसरे कथन पर दृष्टि डालनी होगी, जहां यह स्पष्ट हो सकेगा कि आचार्य सहाय की उक्त आलोचना के बाद उस पत्र के स्वरूप में क्या परिवर्तन लक्षित हुआ। स्वयं आचार्य शिवपूजन सहाय ने 1931 में 'हिंदी के साप्ताहिक पत्र' शीर्षक से 'हंस' में लिखे गए अपने आलेख में यह स्वीकार किया कि –

''जब से वर्मा जी (बाबू बद्रीनाथ वर्मा) संपादक हुए हैं, तब से 'देश' की दुर्दशा का अंत हो गया है। इस तरह 'देश' बड़े सराहनीय ढंग से संपादित हो रहा है, छपाई-सफाई भी अच्छी है, केवल फ्रू-संशोधन की कुछ त्रुटियां अब तक रह गयी हैं, जिनके कारण कभी-कभी भाषा-संबंधी भूलों का संदेह भी उत्पन्न हो जाता है।'' 6

इन दोनों कथनों को एक साथ मिलाकर देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य शिवपूजन सहाय ने पहले वाले लेख में 'देश' पत्रिका की खामियों की ओर इशारा किया था, उनमें काफी हद तक सुधार किया गया। और विशेष प्रशंसनीय तो यह है कि दूसरे लेख में भी आचार्य शिवपूजन सहाय ने उन सुधारों की प्रशंसा करने के साथ ही जो त्रुटियां विद्यमान रह गई थी उस ओर इशारा करने में कोताही नहीं की। मजे की बात यह है कि जिस 'देश' की आलोचना आचार्य शिवपूजन सहाय ने इतनी खुलकर की; कई लेखों में की, उसके संचालक तत्कालीन राजनीति के

प्रभावशाली व्यक्तित्व स्वयं डॉ. राजेन्द्र प्रसाद थे। इससे उस समय की पत्रकारिता और आलोचना के स्तर का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

पत्र-पत्रिकाओं के क्षेत्र में शिवपूजन सहाय के समय का हिन्दी जगत काफी समृद्ध रहा है। लेकिन उन पत्र-पत्रिकाओं में एक ऐसी पत्रिका की आवश्यकता आचार्य शिवपूजन सहाय बड़े व्याकुलता से महसूस कर रहे थे जो अपने समय के पत्र-पत्रिकाओं की समीक्षा करते हुए उसके गुण-दोष को समान रूप से तटस्थ होकर उजागर कर सके।

''हिन्दी संसार में पत्र-पत्रिकाओं की संख्या बहुत अधिक है। उस संख्या के कभी न्यूनता भी होती है तो शीघ्र ही नयी वृद्धि से उसकी पूर्ति हो जाती है। इसलिए पत्र-पत्रिकाओं का संख्या-बल कभी विशेष घटने नहीं पाता। ऐसी स्थिति में एक ऐसे स्वतंत्र साप्ताहिक पत्र की आवश्यकता अनुभूति होती है, जो प्रति सप्ताह सभी पत्र-पत्रिकाओं की गतिविधि का निरीक्षण-परीक्षण करता रहे।''7

इसके साथ ही आचार्य शिवपूजन सहाय ने इस तथ्य पर भी बल दिया कि यह कार्य सरल नहीं है। ऐसा स्वीकारने के पीछे यह कारण उनके सामने स्पष्ट रहा कि अपने समकालीन पत्र-पत्रिकाओं के दोष को उजागर करना सरल कार्य नहीं है। लेकिन आचार्य सहाय बड़े से बड़े प्रभावशाली पत्र-प्रकाशकों के पत्रों की आलोचना कर यह भी साबित कर दिया कि यह कार्य जितना भी कठिन हो नामुमकिन नहीं है। हां, यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि उस समय की परिस्थिति ने उन्हें इतना बल दिया था कि 'देश' जैसे पत्र की आलोचना करने से भी वे नहीं चूके, जिसके प्रकाशन का दायित्व स्वयं डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के हाथों में था। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद एक तो भारतीय राजनीति के इतने प्रभावशाली व्यक्तित्व और उस पर आचार्य शिवपूजन सहाय उनके कृपापात्र। आज के समय में किसी पत्र-पत्रिका की आलोचना कहीं देखने को मिलती ही नहीं है। इस कार्य को शिवपूजन सहाय कठिन तो मानते ही हैं लेकिन कठिन से ज्यादा दायित्व-पूर्ण भी।

''सामयिक साहित्य का तात्पर्य यहां आधुनिक पत्र-पत्रिकाएं है। पत्र-पत्रिकाओं की गति-विधि का निरीक्षण-परीक्षण करना बहुत कठिन काम है। कठिन ही नहीं, संकटापन्न और भयावह भी है - दायित्वपूर्ण तो है ही।'' 8

आचार्य सहाय ने कई जगहों पर यह इंगित किया है कि स्तरहीन पत्र-पत्रिकाएं राष्ट्रभाषा के विकास में अवरोधक है। इससे साहित्य की महत्ता घटती है और पाठकों तक गलत शिक्षा का प्रभाव भी फैलता है। इसलिए पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में बहुत अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है।

''कुछ पत्र-पत्रिकाओं को देखकर मन में सहसा यह भाव उदित होता है कि उसका अस्तित्व अनावश्यक है - ये राष्ट्रभाषा के कलंक हैं।''

हर युग में स्कूल-कॉलेजों से निकलने वाले पत्र-पत्रिकाओं का बहुत अधिक महत्व रहा है। ये पत्र-पत्रिकाएं अनेक प्रतिभाओं को उभरने का अवसर प्रदान करते रहे हैं। प्रायः अनेक

प्रतिभा-संपन्न साहित्यकारों के विषय में यह सुनने को मिल जाता है कि उनकी अमुक पहली रचना विद्यालय/महाविद्यालय की पत्रिका में छपी थी। उनके महत्व पर प्रकाश डालते हुए आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा -

''इन सब पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त हाई-स्कूलों और कॉलेजों से निकलने वाले मासिक और त्रैमासिक पत्रों में भी हिन्दी-विभाग की रचनाएं देखने से पता लगता है कि अनेक होनहार लेखक और कवि भविष्य के लिए तैयार हो रहे हैं।'' 9

आचार्य शिवपूजन सहाय के निबंधों और विभिन्न पत्रिकाओं के संपादकीय लेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट पता चलता है कि वे जितने चिंतित राष्ट्रभाषा और हिन्दी साहित्य के विकास को लेकर थे, उससे कम पत्र-पत्रिकाओं को लेकर भी नहीं। उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं की महत्ता को समझा। यह महसूस किया कि साहित्य और भाषा के निर्माण में उसकी कितनी बड़ी भूमिका होती है। यही कारण है कि वे अपने समय की पत्र-पत्रिकाओं की सतर्कतापूर्वक समीक्षा करते रहे। उसके गुण और दोषों को उजागर करते रहे। जिससे कि पत्र-पत्रिकाओं का स्वरूप निखारा जा सके। पूरे हिन्दी साहित्य में इस तरह का कार्य आचार्य शिवपूजन सहाय जैसे कुछ विरले साहित्यकारों ने ही किया है।

संदर्भ सूची :

1. सहाय, शिवपूजन - बिहार के हिन्दी पत्र, शिवपूजन रचनावली, (तीसरा खण्ड)- संपादक, शिवपूजन सहाय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, नवीन संस्करण 2014 विक्रमाब्द, पृ.-315., 2. वहीं। 3. सहाय, शिवपूजन - हिन्दी के दैनिक पत्र, शिवपूजन रचनावली, (तीसरा खण्ड)- संपादक, शिवपूजन सहाय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, नवीन संस्करण 2014 विक्रमाब्द, पृ.-322., 4. वहीं, पृ.-323, 5. सहाय, शिवपूजन - बिहार के हिन्दी पत्र, शिवपूजन रचनावली, (तीसरा खण्ड)- संपादक, शिवपूजन सहाय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, नवीन संस्करण 2014 विक्रमाब्द, पृ.-316., 6. सहाय, शिवपूजन - हिन्दी के साप्ताहिक पत्र, शिवपूजन रचनावली, (तीसरा खण्ड)- संपादक, शिवपूजन सहाय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, नवीन संस्करण 2014 विक्रमाब्द, पृ.-331., 7. सहाय, शिवपूजन - हमारे सामयिक साहित्य की गतिविधि, शिवपूजन रचनावली, (तीसरा खण्ड)- संपादक, शिवपूजन सहाय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, नवीन संस्करण 2014 विक्रमाब्द, पृ.-336., 8. वहीं।, 9. सहाय, शिवपूजन - बिहार की साहित्यिक प्रगति, शिवपूजन रचनावली, (तीसरा खण्ड)- संपादक, शिवपूजन सहाय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, नवीन संस्करण 2014 विक्रमाब्द, पृ.- 270.

अमित कुमार मिश्रा, हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।
मो. : 9304302308, ई-मेल : amitraju532@gmail.com

बहुआयामी कलमकार आचार्य शिवपूजन सहाय

डॉ. मंजुला

'देहाती दुनिया' के लेखक के रूप में उन्हें प्रथम आंचलिक उपन्यासकार माना जाना चाहिए। हालांकि आंचलिक उपन्यासकार के रूप में दो नाम चर्चित हैं - फणिश्वर नाथ रेणु (मैला आंचल) और रामदरश मिश्र (पानी के प्राचीर), किन्तु 'देहाती दुनिया' की आंतरिक बनावट से आंचलिकता ही प्रदर्शित होती है। इसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के ग्राम्य जीवन का चित्रण है। इसकी कथा ग्यारह अध्यायों में विभक्त है, जो अलग-अलग उपशीर्षकों के द्वारा अभिव्यक्त है।

बिहार के स्वनाम धनी, बिहार का गौरव आचार्य शिवपूजन सहाय के व्यक्तित्व और कृतित्व पर यदि आज हमें कहना हो, तो टी0 एस0 इलियट की इन पंक्तियों का उपयोग करना अतिशयोक्ति नहीं कही जाएगी-

''प्रकाश कैसे फैलता है-
खुले मैदान में -गलियों को छोड़कर
(वृक्ष की) शाखाओं से छनकर-
अपराहन की अंधियारी घिरी छाया में-
उष्ण धुंधले (वातावरण) में -
प्रकाश की किरणें पूरे पत्थर से टकराकर
इस वातावरण में लीन हो जाती है।''

इलियट की उपरोक्त पंक्ति आज साहित्येतिहास के गलियारे की प्रखर और अखण्ड ज्योति आचार्य जी के संबंध में उपयुक्त लगती है।

आचार्य शिवपूजन सहाय जी ज्ञानी पुरूष थे। वे सत्यवादी, सदाचारी, ईमानदार और संवेदनशील परोपकारी व्यक्ति थे। उनकी लेखनी व्याकरण सम्मत थी। कहा जाता है कि प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद जैसे प्रसिद्ध लेखक उनसे व्याकरण संबंधी अशुद्धियों को दूर करने के लिए सहयोग लेते थे। आतिथ्य सत्कार, मिलनसार, बालकों तथा विधवाओं के प्रति अधिक सजग-संवेदनशीलता उनके स्वभाव के आभूषण थे।

सहाय जी के जीवन की कुछ विशिष्ट बातें जो हमें अधिक प्रभावित करती हैं उनकी चर्चा प्रासंगिक होगी। जहाँ तक इनके

जीवन-वृत्त का सवाल है, इनका जन्म 1893 ई0, सावन त्रयोदशी, बुधवार को हुआ था। इनकी राशि का नाम हंसराज था। इनका जन्म स्थान शाहाबाद जिले के बक्सर सब डिविजन के अंदर उनवांस नाम गाँव (जिसे उनकी डायरी में) 'रामनगर' भी कहा गया है, में हुआ था। इनके बचपन का नाम 'भोलानाथ' और 'मौनीबाबा' भी था। स्वयं उन्होंने कहा है-..... मैं बचपन में बहुत कम बोलने के कारण, घर के लोगों में, मौनी बाबा के नाम से पुकारा जाता था। सन् 1903 में इन्हें आरा के प्रसिद्ध के0 जे0 एकेडमी (कायस्थ जुबली एकेडमी) वर्तमान में टाउन स्कूल नाम से चर्चित विद्यालय में नामांकन हुआ। मैट्रिक पास करने के बाद उन्हें 16 वर्ष की आयु न होने के कारण विश्वविद्यालय में पढ़ने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। 1914 में इन्होंने अपने ही स्कूल में अध्यापक की नौकरी कर ली। सन् 1939 में विश्वविद्यालय के डिग्रियों के नहीं रहने के बावजूद आप राजेन्द्र कॉलेज, छपरा में हिंदी के प्राध्यापक बन गये। 1942 के आसपास राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना) में मंत्री पद पर आसीन हुए और साहित्य की अनवरत सेवा की। आचार्य जी साहित्य में बिहार के साहित्य-सेवियों को एकत्र करते हुए 'बिहार का साहित्यिक इतिहास' लिखने की पहल की, किन्तु दुर्भाग्यवश इस कार्य को अपने जीवन में वे कर नहीं सकें। इनके जीवन से संबंधित एक कहानी यह भी चर्चित है कि वो अपना हस्ताक्षर हिन्दी में करते थें। इस कारण उन्हें लम्बे समय तक स्टेट बैंक से वेतन नहीं मिल सका था। उन दिनों स्टेट बैंक हिन्दी में हस्ताक्षर स्वीकार नहीं करता था और आचार्य जी अंग्रेजी में हस्ताक्षर करने को तैयार नहीं थे। कालांतर में सरकार के द्वारा हिन्दी की स्वीकार्यता के आश्वासन पर उन्होंने वेतन लेना प्रारंभ किया। इस प्रकार हिन्दी के आत्म सम्मान के प्रति वे सजग दिखते हैं। इन्होंने पत्र-पत्रिकाओं के संपादक, अभिनंदन-ग्रंथों के आयोजक, अनेक पुस्तकों के लेखक, प्रसिद्ध साहित्यकारों के पाण्डुलिपि-शोधक एवं साहित्यिक संस्थाओं के संरक्षक के रूप में अपनी भूमिका दर्ज की है। उनकी लेखनी में सरलता के साथ-साथ सहज प्रवाह था। जिस तरह रेणु जी 'मैला आंचल' में कोई कहानी-कथा गढ़ने की कोशिश नहीं करते हुए देखे जाते हैं, उसी प्रकार सहाय जी भी अपनी कहानियों या उपन्यासों में सायास कुछ भी नहीं करते हैं। 'कहानी का प्लॉट' कथा की इतिवृत्यात्मकता स्वत: प्रसूत है। 'वे दिन वे लोग' के पात्रों की क्रियाओं ने ही कहानी रच दी है।

आचार्य जी ने 'अधिकार से अधिक कर्त्तव्यों को', 'माँग से अधिक काम को' महत्त्व दिया था। उन्होंने स्पष्ट वक्ता के रूप में अपनी बात हर मंच पर रखी। समय के बदलते रुख को देखकर वो कहा करते थें - ''लोग कहते हैं, यह युग की माँग है। मैं कहता हूँ यह मांग का युग है।'' वे शिक्षक को तपस्वी मानते थें और विद्या को तप। उनका विचार था कि विद्या के लिए तपना पड़ता है।

'देहाती दुनिया' के लेखक के रूप में उन्हें प्रथम आंचलिक उपन्यासकार माना जाना चाहिए। हालांकि आंचलिक उपन्यासकार के रूप में दो नाम चर्चित हैं - फणीश्वर नाथ रेणु (मैला आंचल) और रामदरश मिश्र (पानी के प्राचीर), किन्तु 'देहाती दुनिया' की आंतरिक बनावट से आंचलिकता हीं प्रदर्शित होती हैं इसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के ग्राम्य जीवन का चित्रण है। इसकी कथा ग्यारह अध्यायों में विभक्त है, जो अलग-अलग उपशीर्षकों के द्वारा अभिव्यक्त है। 'माता का आंचल', 'बुधिया का भाग्य', 'ननिहाल का दाना-पानी', 'दारोगा जी का चोरमहल', 'गोबरधन का कच्चा चिट्ठा', 'चारों धाम', 'रंग में भंग', 'पांडेजी का प्रपंच', 'मंहगे चने', 'ब्रह्मपिचास का देवघर' और 'नमक का बदला' -ये ग्यारह शीर्षक है। ध्यान देने योग्य बात है कि

शीर्षक का चयन हो या इसके अंतर्गत देश-काल का चित्रण-उपन्यास का कोई दो अध्याय एक क्रम में नहीं है। 'माता का आंचल' में यदि ग्रामीण बालकों का चित्रण है, तो 'बुधिया का भाग्य' में जमींदारों की कुकृत्यों का उद्घाटन। फिर चौथे अध्याय में हमें दारोगा के रूप में एक सदाचारी व्यक्ति दिखता है, तो पांचवें अध्याय में दुराचारियों का दर्शन पाठकों को होता है। इसी तरह सभी अध्यायों में अलग-अलग दृष्टांत है और इन दृष्टांतों के कथा का कोई एक केन्द्रीय भाव नहीं है। सभी दृष्टांत स्वयं अपने साध्य के साथ उपस्थित होते हुए मालूम पड़ते हैं। कथानक का यह बिखराव भी 'देहाती दुनिया' को आंचलिकता का दर्जा दिलाने में सक्षम है। हाँ यह बात और है कि इस रचना में चित्र और चित्रकार दोनों ही दिख जाते हैं। इस उपन्यास के द्वितीय संस्करण (सन् 1954) के वक्तव्य में आचार्य जी ने कहा है कि 'आज से लगभग पच्चीस साल पहले यह उपन्यास देहाती भाइयों के मनबहलाव के लिए निकला था।' हमें याद होना चाहिए कि 'मैला आंचल' का प्रथम संस्करण भी 1954 में निकला था। 'देहाती दुनिया' की भाषा को जरा गौर से देखें - ''मेरे दिल अब न बहुरेंगे। भगवान ने मेरी किस्मत में न जाने क्या लिखा है। जब से आई हूँ, चिड़िया का एक पूत भी आंगन में आने नहीं पाता। न सास, न देवर, न गोतिनी, कोई भी तो नहीं -न आगे नाथ, न पीछे पगहा।'' (सुगिया का स्वकथन) फिर आगे देखें - हे सूरज बाबा! तुम्हीं प्रतच्छ देवता हो। तुम्हीं हाथ का हाथ फल देते हो। मनबहाल को कोढ़ी कर दो। उसके बीसों नँह गलकर चू जायें ..... वह पानी बिना तरस-तरस कर मरे। उसके पिल्लू पड़ जायँ। .....। इसी तरह देहाती बारात का चित्रण देखिये- ''हम बाबूजी के साथ पालकी पर मूसन तिवारी के एक भतीजे की बारात में जा रहे थें। साथ में एक लदुआ टटू पर बाबू रामटहल सिंह के दरबान घूरन सिंह भी थें। उनके पीछे-पीछे खेदु बहंगीदार। पालकी के कहार हुँ: हाँ: करते अपनी बोली बोलते चले जाते।'' यदि वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो यहाँ कहार के माध्यम से दलित-साहित्य का प्रसंग और प्रयोजन स्पष्ट दिख रहा है। यदि स्त्री-विमर्श की बात करें तो बुधिया के समक्ष रामटहल की पत्नी महादेई का चरित्र खड़ा करके एक तरफ स्त्री की सुरक्षा और अधिकार और दूसरी तरफ स्त्री के स्वाभिमान का बिगुल भी उन्होंने 1926 में ही बजा दिया था। सुगिया का रामटहल सिंह के घर पर आकर विरोध जताना एक सशक्त नारी का उदाहरण प्रस्तुत करता है, किन्तु महादेई का रामटहल सिंह से बुधिया के विरूद्ध सहयोग न मिलने पर महादेई की प्रतिक्रिया स्त्री-अस्मिमा व अस्तित्व का बोध कराती है। हम जानते हैं कि उपन्यास में इस घटना की प्रतिक्रिया करती हुई महादेई रामटहल सिंह से बीमारी में घातक दौर में भी मिलने तक नहीं जाती है।

इन सब चर्चाओं की चपलता को यदि महससू करना है, तो हमें 'देहाती दुनिया' के निम्नांकित भाषा-शैली को जरा हल्के से महसूसना चाहिए :-

क. ''चोखा तो था, चटनी आला दरजे की बनी है। जीभरूपी घोड़ी के लिए भगवान ने यह कोड़ा बनाया है।'' (पृ0 156)।

ख. ''मइयाँ चावल अमनिया कर रही थी।'' (पृष्ठ 8)

ग. ''फिर तो लड़कों ने चिड़िया को बंदर के घाव की तरह गींज डाला।'' (पृष्ठ 8)

घ. ''खाइए वहाँ, अँचइए यहाँ। अपने आने का संदेसा देकर हजाम को धुरियाये पांव लौटाइये।'' (पृष्ठ 54)

ड़. ''हमलोग पेड़ों की धड़ में जड़ से सट गयें, जैसे कुत्ते के कान में अँठई चिपक जाती है।'' (पृष्ठ 6)

अब यदि इन भाषाओं की शब्दावली और मुहावरों के नखरे आचंलिकता का आईना नहीं बन पाते हैं, तो देखनेवाले का नजर दोष मानना अतिश्योक्ति नहीं होगी। 'गींज डाला', 'अमनिया', 'धुरियाये पांव लौटाइये' जैसी शब्दावली खड़ी बोली के बोल तो नहीं ही है। नि:संदेह यह उपन्यास आंचलिक परंपरा का अग्रदूत हैं।

सहाय जी एक जीवित रेखाचित्र लेखन शैली के लिए भी याद किये जाते हैं। कला में रेखाचित्र की सत्ता के संबंध में 'प्रगतिवाद' नामक ग्रंथ (पृ.110) में श्री शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है -''कला के अन्दर रेखाचित्र की एक स्वतंत्र सत्ता है। उसे पढ़ने के बाद पाठक को समाज या व्यक्ति की जीवनधारा के अगले मोड़-प्रवाहों को जानने की आवश्यकता नहीं रह जाती। वह उस पूरी तस्वीर को पढ़कर संतुष्ट हो जाता है। और चूकि रेखाचित्र एक चित्र है, इस कारण उसका वणर्य विषय कल्पना प्रधान भी हो सकता है और वास्तविक भी। इतना अवश्य है कि रेखाचित्र वस्तु अथवा व्यक्ति का वास्तविक चित्र होने के अतिरिक्त शब्दशिल्पी के अध्ययन का निजी दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार आलोक-चित्रकला (फोटोग्राफी) की सफलता पात्र, समय, स्थान, चित्रक (कैमरा) आदि पर निर्भर है, उसी प्रकार रेखाचित्र की सफलता शब्दशिल्पी के हृदय-दर्पण पर आधृत है।''

''मस्त भैंसे को पस्त किया'' शीर्षक रेखाचित्र में अपने गाँव के उदित पाँड़े का उन्होंने सजीव चित्रांकन किया है। सहाय जी की रेखाचित्र का एक उदाहरण देखें-''उदित पाँड़े भी साठ साल के जवान थे। मंझोले कद का छरहरा शरीर था उनका। मालूम होता था कि उनकी हड्डियाँ फौलाद की तरह ठोस हैं। धोती का कच्छा बाँधे, कंधे पर अँगोछा रखे, हाथ में मोटा सोटा लिये घूमते रहते थे। गाँव में, खेत-खलिहान में, जंगल-मैदान में चक्कर काटते रहना उन्हें बहुत भाता था। बैठने पर रस्सी बाँटते, सोने पर भजन गाते और थोड़ी देर की नींद में भी सजग रहते थे। दोनों जून एक अच्छी गाय का कच्चा दूध अकेले ही पी जाते थे। उबाला हुआ दूध और घी उन्हें पचता ही न था। भोजन के बाद सूखे चने फाँकने पर ही उनका पेट भरता था। बैसाख-जेठ में भी भोजन के समय के सिवा कभी पानी नहीं पीते थे। जाड़े में दिनभर अंगोछा ही ओढ़े रहते और रात में भी नंगे बदन कम्बल में सोते। उनकी गंजी खोपड़ी दमकती रहती थी।''

संदर्भ-ग्रन्थ :

1. मेरा बचपन, द्वितीय संस्करण।, 2. देहाती दुनिया।

डॉ. मंजुला, नालंदा ओपन युनिवर्सिटी, पटना/इग्नु (शिक्षा विभाग)
मो. : 9334445317, ई–मेल : write2dr.manjula@gmail.com

शिवपूजन सहाय

भवानी शंकर पटेल

शिवपूजन सहाय की लिखी हुई पुस्तकें विभिन्न विषयों से सम्बद्ध हैं तथा उनकी विधाएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। 'बिहार का बिहार' बिहार प्रान्त का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत करती है। 'विभूति' में कहानियाँ संकलित हैं। 'देहाती दुनियाँ' (1926 ई.) प्रयोगात्मक चरित्र प्रधान औपन्यासिक कृति है। इसकी पहली पाण्डुलिपि लखनऊ के हिन्दू-मुस्लिम दंगे में नष्ट हो गयी थी। इसका शिवपूजन सहाय जी को बहुत दुःख था। उन्होंने दुबारा वही पुस्तक फिर लिखकर प्रकाशित करायी, किन्तु उससे शिवपूजन सहाय को पूरा संतोष नहीं हुआ।

शिवपूजन जी हिंदी साहित्य के जाने-माने दिग्गजों में से एक बड़े साहित्यकार माने जाते हैं। उनके उपस्थिति के बिना हिंदी साहित्य अधूरा है। हिंदी साहित्य को एक मजबूत रूप देने में उनका देन अतुलनीय है। उनका जन्म 9 अगस्त 1893 ई. में शाहाबाद बिहार मैं हुआ था तथा उनका मृत्यु 21 जनवरी 1963 ई. को पटना मैं हुआ था। वे एकाधार में हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानीकार, सम्पादक और पत्रकार थे। उन्हें साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में सन 1960 में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया था।

उनके बचपन का नाम भोलानाथ था। दसवीं की परीक्षा पास करने के बाद उन्होंने बनारस की अदालत में नकलनवीस की नौकरी की। बाद में वे हिंदी के अध्यापक बन गए। असहयोग आंदोलन के प्रभाव से उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। शिवपूजन सहाय अपने समय के लेखकों में बहुत लोकप्रिय और सम्मानित व्यक्ति थे। उन्होंने जागरण, हिमालय, माधुरी, बालक आदि कई प्रतिष्ठित पत्रिकाओं का संपादन किया। इसके साथ ही वे हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिका मतवाला के संपादक-मंडल में थे। सन् 1963 में उनका देहांत हो गया।

इनके लिखे हुए प्रारम्भिक लेख 'लक्ष्मी', 'मनोरंजन' तथा 'पाटलीपुत्र' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे। शिवपूजन सहाय ने 1934 ई. में 'लहेरियासराय' (दरभंगा) जाकर मासिक पत्र 'बालक' का

सम्पादन किया। स्वतंत्रता के बाद शिवपूजन सहाय बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के संचालक तथा बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से प्रकाशित 'साहित्य' नामक शोध-समीक्षाप्रधान त्रैमासिक पत्र के सम्पादक थे।

वे मुख्यत: गद्य के लेखक थे। देहाती दुनिया, ग्राम सुधार, वे दिन वे लोग, स्मृतिशेष आदि उनकी दर्जन भर गद्य-कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। शिवपूजन रचनावली के चार खंड हैं। उनकी रचनाओं में लोकजीवन और लोकसंस्कृति के प्रसंग मिल जाते हैं। 1925 में, वह कलकत्ता लौटे और अल्पकालीन पत्रिकाओं जैसे समन्वय, मौजी, गोलमाल, उपन्यास तरंग को संपादित करने में कामयाब रहे। अंत में, सहायक ने फ्रीलांस एडिटर के रूप में काम करने के लिए वाराणसी (के-प) में स्थानांतरित किया। 1931 में एक छोटी अवधि के लिए, वह गंगा को संपादित करने के लिए भागलपुर के पास सुल्तानगंज गए। हालांकि, वे 1932 में वाराणसी लौटे, जहां उन्हें जागरण को संपादित करने के लिए कमीशन किया गया, जो जयशंकर प्रसाद और दोस्तों के उनके सर्किल द्वारा पखवाड़े एक साहित्यिक पखवाड़े। सहाय ने एक बार फिर प्रेमचंद के साथ काम किया। वह भी नागरी Pracharini सभा के एक प्रमुख सदस्य और वाराणसी में इसी तरह के साहित्यिक हलकों में बन गए। 1935 में, वह लाहारीया सराय (दरभंगा) के लिए बालक और आचार्य राममोचन सरन के स्वामित्व वाले पुस्टक भंडार के अन्य प्रकाशनों के संपादक के रूप में काम करने गए। 1939 में, उन्होंने हिंदी भाषा के प्रोफेसर के रूप में राजेंद्र कॉलेज, छपरा में शामिल हो गए।

शिवपूजन सहाय की लिखी हुई पुस्तकें विभिन्न विषयों से सम्बद्ध हैं तथा उनकी विधाएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। 'बिहार का विहार' बिहार प्रान्त का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत करती है। 'विभूति' में कहानियाँ संकलित हैं। 'देहाती दुनियाँ' (1926 ई.) प्रयोगात्मक चरित्र प्रधान औपन्यासिक कृति है। इसकी पहली पाण्डुलिपि लखनऊ के हिन्दू-मुस्लिम दंगे में नष्ट हो गयी थी। इसका शिवपूजन सहाय जी को बहुत दु:ख था। उन्होंने दुबारा वही पुस्तक फिर लिखकर प्रकाशित करायी, किन्तु उससे शिवपूजन सहाय को पूरा संतोष नहीं हुआ। शिवपूजन सहाय कहा करते थे कि- ''पहले की लिखी हुई चीज कुछ और ही थी।'' 'ग्राम सुधार' तथा 'अन्नपूर्णा के मन्दिर में' नामक दो पुस्तकें ग्रामोद्धार सम्बन्धी लेखों के संग्रह हैं। इनके अतिरिक्त 'दो घड़ी' एक हास्यरसात्मक कृति है, 'माँ के सपूत' बालोपयोगी तथा 'अर्जुन' और 'भीष्म' नामक दो पुस्तकें महाभारत के दो पात्रों की जीवनी के रूप में लिखी गयी हैं। शिवपूजन सहाय ने अनेक पुस्तकों का सम्पादन भी किया, जिनमें 'राजेन्द्र अभिनन्दन ग्रन्थ' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद', (पटना) ने इनकी विभिन्न रचनाओं को अब तक चार खण्डों में 'शिवपूजन रचनावली' के नाम से प्रकाशित किया है।

शिवपूजन सहाय का हिन्दी के गद्य साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। उनकी भाषा बड़ी सहज थी। वास्तव में शिवपूजन जी हिंदी साहित्य के एक महत्वपूर्ण अंग माने जाते हैं।

भवानी शंकर पटेल, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग छात्र, राजेन्द्र विश्वविद्यालय, बलांगीर, उड़ीसा–767001

✧ ✧ ✧

आचार्य शिवपूजन सहाय : भाषा और साहित्य संबधी चिंतन

सीमा कुमारी

हिंदी भाषा ने अपने भीतर अनेक भाषाओं के शब्दों को आत्मसात कर लिया है। इससे हिंदी की ग्राह्यता शक्ति का परिचय तो मिलता ही है, उसका स्वरूप भी अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में विकसित हो चुका है। आचार्य शिवपूजन सहाय ने वर्षों पहले हिंदी की इस ग्राह्यता शक्ति की ओर इशारा कर दिया था।

'आचार्य शिवपूजन सहाय' आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माताओं में गिने जाते हैं। उन्होंने खड़ी बोली हिंदी को जो मधुर रुप दिया वह आगे आने वाले साहित्यकारों के लिए अनुकरणीय बन गया। आचार्य शिवपूजन सहाय ने हिंदी गद्य के विभिन्न विधाओं - कहानी, उपन्यास, निबंध आदि में लेखन कार्य कर अपनी एक महत्वपूर्ण पहचान स्थापित की। उन्होंने अनेक पुस्तकों का संशोधन तथा संपादन किया। उनकी भाषा-शैली और भाषागत शुद्धता ने हिंदी साहित्य के स्वरूप निर्माण में अद्वितीय कार्य किया। उन्होंने अपने समय की अनेक उत्कृष्ट पत्रिकाओं का संपादन कार्य भी किया। पत्रिकाओं के संपादकीय में लिखे गये उनके विचार निबंध के रूप में आज भी चर्चा के केंद्र में बने हुए हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उन्होंने विविध विधाओं से संदर्भित निबंध लेखन भी किया। उनके निबंधों एवं पत्र-पत्रिकाओं के संपादकीय में हिंदी भाषा और साहित्य विषयक उनके चिंतन उपलब्ध हैं जो आज भी हिंदी भाषा और साहित्य के विकास की दिशा में प्रासंगिक हैं। अपने इन निबंधों का अलग-अलग जगहों से एकत्रित कर 'शिवपूजन रचनावली' के तीसरे खंड में स्वयं शिवपूजन सहाय ने संकलित किया है। यह सर्वविदित है कि खड़ी बोली हिंदी के निर्माण कार्य के समय कई गुट आपस में बंट गए थे। उन लोगों ने कहीं संस्कृत के शब्दों को मिलाकर हिंदी के स्वरूप का निर्माण करना

चाहा तो कहीं उर्दू के शब्दों को मिलाकर। इस समय हिंदी और उर्दू को मिलाकर जिस काम चलाओ हिंदुस्तानी भाषा का निर्माण किया गया, जिसके पोषक राजा शिवप्रसाद सितारे 'हिंद' के गुट के लोग थे, उन्होंने हिंदी के स्थान पर 'हिंदुस्तानी' राष्ट्रभाषा को पद पर आसीन करना चाहा। इस पर कटाक्ष करते हुए अपने 'हिन्दी और हिन्दुस्तानी' शीर्षक निबंध में आचार्य शिवपूजन सहाय ने 1941 ई. में लिखा था –

''जो महाशय हिन्दी को राष्ट्रभाषा के गौरव-मंडित सिंहासन पर आसीन देखकर भीतर ही भीतर कट रहे हैं, वे ही चाहते हैं कि हिन्दी का मुकुट उतार कर हिन्दुस्तानी के सिर पर सजा दें।'' (1)

हिंदुस्तान में हिंदी भाषा की व्यापकता पर विचार करते हुए उन्होंने यह भी कहा था कि हिंदी भाषा भारत के सभी प्रांतों में सुगमता से बोली और समझी जाती है। यह स्पष्ट है कि हिंदी का विरोध राजनैतिक कारणों से किया जा रहा था, जिसका दंश हिंदी आज भी झेल रही है। आज भी हिंदी का विकास अवरूद्ध है। शिवपूजन सहाय के शब्दों में –

''हिन्दी स्वयं इतना समर्थ है कि सभी प्रांतों के निवासियों के विचार-विनिमय का माध्यम बन सके। बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रांतों की तो बात ही नहीं, हमारे मुसलमान भाइयों के पढ़ने-समझने योग्य हिन्दी भी लिखी जा सकती है और पहले भी लिखी जा चुकी है।'' (2)

हिंदी भाषा ने अपने भीतर अनेक भाषाओं के शब्दों को आत्मसात कर लिया है। इससे हिंदी की ग्राह्यता शक्ति का परिचय तो मिलता हीं है, उसका स्वरूप भी अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में विकसित हो चुका है। आचार्य शिवपूजन सहाय ने वर्षों पहले हिंदी की इस ग्राह्यता शक्ति की ओर इशारा कर दिया था –

''अब तक हिन्दी भाषा, अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी, पोर्चुगीज आदि विदेशी भाषाओं के हजारों शब्दों को पचाकर पर्याप्त शक्ति अर्जित कर चुके है।'' (3)

[28/7, 4:54 PM, पारो: स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हिंदी ने अपनी जो भूमिका निभाई एवं जनसरोकार्यता दिखलाई थी, उस पर आज भी विचार-विमर्श किया जा रहा है और यह आधुनिक भारत के इतिहास में सदैव जीवित रहेगा। इस बिंदु पर शिवपूजन सहाय ने लिखा था –

''स्वतंत्रता की भावना को उन्नत और जागृत करने में उसने सब भाषाओं से अधिक काम किया है और आगे भी करेगी।'' (4)

आचार्य शिवपूजन सहाय की दृष्टि में साहित्य का फलक अत्यंत विस्तृत है। उनके मतानुसार दर्शन, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, गणित सबकुछ साहित्य के भीतर समाहित है। आज जब इतने वर्षों बाद साहित्य का समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक आदि पक्षों का अध्ययन-विश्लेषण किया जा रहा है, ऐसे में आचार्य शिवपूजन सहाय के विचार अपनी सार्थकता

स्वयं सिद्ध कर रहे हैं। उन्होंने साहित्य के विस्तृत फलक की चर्चा करते हुए लिखा है -

''जब मानव जाति के आदिम ज्ञानकोश वेद भी साहित्य की सीमा में सन्निविष्ट हैं, तब दर्शन, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, खगोल, गणित आदि का उसकी सीमा के अंतर्गत होना स्वाभाविक है। आधुनिक युग में साहित्य की व्यापकता असंदिग्ध एवं निर्विवाद रूप से सिद्ध है। साहित्य में सहित का भाव निहित है। अखिल विश्व की ज्ञान-संपदा उसमें सन्निहित है। चौंसठ कलाएं भी उसकी परिधि में परिवेष्टित प्रतीत होती हैं।'' (5)

प्राचीन भारत के गौरवशाली अतीत का वर्णन करते हुए आचार्य शिवपूजन सहाय ने यह बतलाया है कि प्राचीन काल में भारत, दर्शन, विज्ञान, किसी भी क्षेत्र में पिछड़ा हुआ नहीं था।

''आजकल के भारतीय वैज्ञानिक भी इस भ्रम में हैं कि प्राचीन भारतवर्ष में विज्ञान की उन्नति उस पराकाष्ठा को कभी नहीं पहुंची थी, जिस चरम सीमा तक पाश्चात्य जगत में आधुनिक काल में पहुंची हुई है। इस भ्रम के कारण लोगों में स्वाभिमान-शून्यता और अपनी हीनता के धारणा बद्धमूल हो गई है। उसे दूर करना साहित्य-सेवियों का कर्तव्य है।'' (6)

यहाँ न सिर्फ भारत के गौरवपूर्ण अतीत की चर्चा की गई है अपितु इस ओर भी इशारा किया गया है कि भारत के गौरवशाली अतीत का दिग्दर्शन कराना इतिहास के बूते की बात नहीं है। इसके लिए साहित्यकारों को ही सामने आना होगा। आचार्य शिवपूजन सहाय हिंदी भाषा के उन सेवकों में हैं जिनका संपूर्ण जीवन ही हिंदी के उत्थान, उसकी महिमा का बखान और उसके अधिकार के लिए संघर्ष करने में बीता है। उन्होंने भारतीय साहित्य के आदि रूप का वर्णन करते हुए कहा है कि हिंदी का प्राचीन साहित्य विश्व के किसी भी उन्नत भाषा के साहित्य से कमतर नहीं है -

''यह माना जा चुका है कि हिन्दी का प्राचीन साहित्य सभ्य संसार के किसी भी साहित्य से टक्कर ले सकता है, हिन्दी का अर्वाचीन साहित्य द्रुतगति से उज्ज्वल भविष्य के निष्कंटक पथ पर अग्रसर होता चला जा रहा है।'' (7)

आचार्य शिवपूजन सहाय ने एक ऐसे पुस्तकालय की परिकल्पना की थी जिसमें छोटी-बड़ी हर तरह की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएं कम से कम एक प्रति में निश्चित रूप से सुरक्षित रहे।

''कहने का मुख्य तात्पर्य यह है कि आज तक जितनी छोटी-बड़ी पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हो चुकी हैं या आजकल प्रकाशित हो रही हैं तथा आगे होंगी, उन सब का सिलसिलेवार संग्रह किसी एक उपयुक्त स्थान में सुरक्षित रहना चाहिए।'' (8)

आज जबकि अनेक पत्र-पत्रिकाएं, पुस्तकें, काल के गाल में समा चुकी हैं और उन्हें देखने मात्र के लिए तलाशना भी असंभव है, ऐसे में आचार्य शिवपूजन सहाय की उक्त बातें कितनी

सार्थक सिद्ध हो रहीं है, यह अनुमान किया जा सकता है। उन्होंने पहले ही इशारा कर दिया था कि–

''यदि हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने वाले हमलोग यत्नवान् न होंगे, तो किसी समय ऐसे संग्रहालय का अभाव बहुत खलेगा।''(9)

ऐसा नहीं है कि आचार्य शिवपूजन सहाय ने राष्ट्रभाषा तथा हिंदी भाषा और साहित्य का गुणगान मात्र किया हो। उन्होंने इनकी खामियों की ओर भी इशारा किया और हिंदी के उत्तराधिकारियों को सचेत भी किया। उन्हें भली प्रकार ज्ञात था कि जब तक धरोहर को संभालने वाला और उसे विकास के पथ पर बढ़ाने वाला कंधा मजबूत नहीं होगा, तब तक बड़े से बड़े धरोहर को भी संभाले रखना असंभव है। उन्होंने यह महसूस कर लिया था कि राष्ट्रभाषा के लिए नारा लगाने वाले तो बहुत हैं लेकिन उस विरासत को समृद्ध करने वालों का सर्वथा अभाव है –

''हमलोग हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानते और कहते तो हैं, पर राष्ट्रभाषा के साहित्य भंडार को सब तरह से संपन्न एवं समर्थ बनाने की चिंता या चेष्टा नहीं करते।'' (10)

आज भी जब पत्र–पत्रिकाओं के इतिहास को टटोला जाता है निराशा के सिवा कुछ हाथ नहीं आता। अधिकांश पत्रिकाओं के इतिहास पर लिखे गये ग्रंथ ऐसे ही हैं जिनमें कुछ प्रमुख नाम तो गिनवा दिए जाते हैं लेकिन सुदूर कस्बों से निकलने वाली पत्र–पत्रिकाओं तक पहुंचने की जहमत नहीं उठाई जाती है। इतिहास लिखने वाले आधे–अधूरे तथ्यों के आधार पर इतिहास लिख डालते हैं और उस श्रम से खुद को बचा लेते हैं जिसकी यहां नितांत आवश्यकता रहती है। पत्र–पत्रिकाओं के इतिहास की आवश्यकता पर बल देते हुए आचार्य सहाय ने लिखा था –

''हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं का इतिहास भी यदि शीघ्र ही न लिखा गया तो थोड़े ही समय के पश्चात हमें उसके लिए असीम सागर में अनंत फल टटोलना पड़ेगा।'' (11)

आचार्य शिवपूजन सहाय जैसे साहित्य–सेवी की दृष्टि में साहित्य का स्थान मानव–जीवन में सर्वोपरि है। साहित्य ही है जो मानव की संस्कृति, सभ्यता और विचारों का संवहन करता है। किसी भी सभ्य समाज के लिए उसके समृद्ध साहित्य का होना नितांत आवश्यक समझा जाता है। साहित्य समाज के क्रमिक विकास का साक्षी होता है। इतिहास किसी भी समाज के स्थूल उन्नति का दिग्दर्शन मात्र करवाता है जबकि साहित्य उसके सूक्ष्म स्पंदनों को भी अपने कलेवर में समेटे रहता है। साहित्य में जनता की चित्तवृत्ति रेखांकित होती है। साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा है –

''साहित्य बड़ा ही व्यापक अर्थ रखने वाला एक महान गौरवपूर्ण शब्द है। यह विश्वजनीन भाव का द्योतक है, विश्व–बंधुत्व का संदेशवाहक है, देश और जाति के जीवन का रस है, समाज की आंतरिक दशा का दिव्य–दर्पण है, सभ्यता और संस्कृति का संरक्षण है। किसी राष्ट्र

या जाति में संजीवनी शक्ति भरने वाला साहित्य ही है। इसीलिए यह सर्वतोभावेन संरक्षणीय है। सब कुछ खोकर भी यदि हम इसे बचाए रहेंगे, तो फिर इसी के द्वारा हम सब कुछ पा भी सकते हैं। इसे खोकर यदि बहुत कुछ पा भी लेंगे, तो फिर इसे कभी ना पा सकेंगे। कारण, यह हमारे पूर्वजों की कमाई है। किसी जाति के पूर्वजों का चिर-संचित ज्ञान-वैभव ही है।''(12)

संदर्भ सूची :

1. सहाय, शिवपूजन- हिन्दी और हिन्दुस्तानी, शिवपूजन रचनावली - तीसरा खंड, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद (पटना), नवीन संस्करण, 2014 विक्रमाब्द, पृ.- 151.
2. वही
3. वही, पृ.-152
4. वही, पृ.- 154
5. सहाय, शिवपूजन - साहित्य और विज्ञान, शिवपूजन रचनावली - तीसरा खंड, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद (पटना), नवीन संस्करण, 2014 विक्रमाब्द, पृ.- 209.
6. वही, पृ.- 212
7. सहाय, शिवपूजन - राष्ट्रभाषा का विराट संग्रहालय, शिवपूजन रचनावली - तीसरा खंड, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद (पटना), नवीन संस्करण, 2014 विक्रमाब्द, पृ.- 233.
8. वही
9. वही, पृ.- 235
10. सहाय, शिवपूजन - राष्ट्रभाषा की एक योजना, शिवपूजन रचनावली - तीसरा खंड, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद (पटना), नवीन संस्करण, 2014 विक्रमाब्द, पृ.- 245.
11. सहाय, शिवपूजन - हिन्दी साहित्य के कुछ चिन्त्य अभाव, शिवपूजन रचनावली - तीसरा खंड, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद (पटना), नवीन संस्करण, 2014 विक्रमाब्द, पृ.- 250.
12. सहाय, शिवपूजन - साहित्य, शिवपूजन रचनावली - तीसरा खंड, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद (पटना), नवीन संस्करण, 2014 विक्रमाब्द, पृ.- 251.

सीमा कुमारी, व्याख्याता, हिन्दी विभाग, बी.एस.एस., कॉलेज, सुपौल।
ई-मेल : sss2seema@gmail.com

शिवपूजन सहाय : साहित्य और पत्रकारिता के सेतु

दीपक कुमार

साहित्य और पत्रकारिता एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्यिक पत्रकारिता भी पत्रकारिता के विविध रूपों में से एक है। विभिन्न साहित्यिक विधाओं का प्रकाशन, नवीन पुस्तकों का सृजन, आलोचना, संगोष्ठियां, पुस्तक मेले, लोकार्पण समारोह आदि से जुड़े समाचार साहित्यिक पत्रकारिता के अंतर्गत आते हैं।

भारतवर्ष में हिंदी पत्रकारिता का आरंभ उदंड मार्तंड (सन् 1826) के प्रकाशन से माना जाता है। लेकिन साहित्यिक पत्रकारिता का आरंभ भारतेंदु के 'कवि वचन सुधा (1868)' से माना जाना चाहिए।

भारतेंदु युग के बाद से अबतक अनेक साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएं आ चुकी हैं। उनमें से कुछ ओझल हो चुकी हैं तो कुछ पाठकों की बदलती रूचि के अनुसार अपने आप को बदल कर आज भी उत्कृष्ट स्थान पर हैं।

आज के हाईटेक युग में पारंपरिक पत्र-पत्रिकाओं की जगह डिजिटल पत्रिकाओं ने ले ली है पर इससे पत्रकारिता का महत्व कम नहीं हुआ है बल्कि और बढ़ा है। सोशल साइट्स ने भी ज्ञानवर्धन के अनेक द्वार खोले हैं। इन्टरनेट ने पत्रकारिता को व्यापक प्लेटफॉर्म उपलब्ध कराया है। कुल मिलाकर इस डिजिटल युग ने पत्रकारिता को और प्रोत्साहन दिया है।

पत्रकारिता के अतिरिक्त सहाय जी ने अनेक कृतियों की रचना की- देहाती दुनिया, विभूति, कहानी का प्लाट, मेरा जीवन, स्मृति शेष, हिंदी भाषा और साहित्य, माता का आँचल, ग्राम सुधार वे दिन वे लोग आदि। 'कहानी का प्लाट' में भगजोगनी का किरदार बहुत समय तक पाठकों के मष्तिष्क में चक्कर लगाता रहता है। 'मुंडमाल' में कर्तव्य के सर्वोच्च बलिदान आदमी को झकझोर देता है। आचार्य शिवपूजन सहाय की कहानियों में आडंबर या बनावटीपन नहीं आता है। मिट्टी से पटकथा उठाते हैं और मिट्टी में डूबोकर ऐसा चित्र उपस्थित करते हैं कि पाठक आश्चर्यचकित हो उठता है। बहुत से कारणों से 'देहाती दुनिया' को हिंदी का प्रथम आंचलिक उपन्यास भी माना जाता है।

साहित्यिक पत्रकारिता ने भारत के इतिहास को भी समृद्ध बनाने में विशेष योगदान दिया है। स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर हिंदी भाषा के मानकीकरण और प्रचार-प्रसार, साहित्यिक विधाओं का संरक्षण, स्वाधीन चेतना का संचार आदि कार्यों में भी साहित्यिक पत्रकारिता की अहम भूमिका रही है।

आज भी साहित्यिक पत्रकारिता की प्रासंगिकता कई मायनों में बरकरार है। विश्वविद्यालयों में पत्रकारिता का पाठ्यक्रम चलाया जाना, अध्यापन कार्य के लिए प्रकाशन अंकों की अनिवार्यता आदि इसकी प्रासंगिकता के सबूत हैं। वेब पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या भी दिन प्रतिदिन बढती जा रही है और प्रकाशन संस्थाओं में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई है, भले ही माध्यम का स्वरूप (प्रिंट से डिजिटल) बदल गया हो।

परिणाम की दृष्टि से तो हमारी साहित्यिक पत्रकारिता ने प्रगति की है किंतु गुणात्मक दृष्टिकोण से उसका ह्रास हुआ है। संपादकों का दृष्टिकोण व्यावसायिक अधिक हो गया है और लगन तथा सेवाभाव कम ही दृष्टिगोचर होता है।

मतवाला के अतिरिक्त उन्होंने 'मौजी', 'आदर्श', 'गोलमाल', 'उपन्यास तरंग', और 'समन्वय' जैसे पत्रों के संपादन में सहयोग किया। कुछ समय के लिए सहाय जी ने 'माधुरी' का भी संपादन किया। इसके पश्चात 1926 में वे पुनः 'मतवाला' से जुड़ गए। सुल्तानगंज से निकलने वाले पत्र 'गंगा' के अतिरिक्त उन्होंने 'हिमालय' का भी संपादन किया।

सन 1950 में गठित बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का पहला निदेशक सहाय जी को बनाया गया और उसी वर्ष बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन की त्रैमासिक शोध पत्रिका 'साहित्य' के संपादन की जिम्मेदारी उन्हें सौंपी गई। सहाय जी उम्र भर हिंदी की प्रगति के लिए कार्य करते रहे।

आचार्य शिवपूजन सहाय पत्रकारिता के क्षेत्र में साहित्यिक सरोकारों के लिए जाने जाते हैं। पत्रकारिता जब साहित्य से जुड़ती है तो वह भाषा के स्तर पर समृद्ध होती है और सामाजिक सरोकारों से भी सहज रूप से जुड़ जाती है।

9 अगस्त 1893 को बिहार के शाहाबाद जिले में जन्मे शिवपूजन सहाय ने साहित्यिक पत्रकारिता को एक दिशा प्रदान की। उन्होंने 1921 में आरा से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'मारवाड़ी सुधार' का संपादन आरंभ किया। इसके बाद वे 20 अगस्त 1923 में कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'मतवाला' से जुड़ गए। इसी दौरान उन्हें महाकवि 'निराला' का सहयोग प्राप्त हुआ।

मतवाला के अतिरिक्त उन्होंने 'मौजी', 'आदर्श', 'गोलमाल', 'उपन्यास तरंग', और 'समन्वय' जैसे पत्रों के संपादन में सहयोग किया। कुछ समय के लिए सहाय जी ने 'माधुरी' का भी संपादन किया। इसके पश्चात 1926 में वे पुनः 'मतवाला' से जुड़ गए। सुल्तानगंज से निकलने वाले पत्र 'गंगा' के अतिरिक्त उन्होंने 'हिमालय' का भी संपादन किया।

सन 1950 में गठित बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का पहला निदेशक सहाय जी को बनाया गया और उसी वर्ष बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन की त्रैमासिक शोध पत्रिका 'साहित्य' के संपादन की जिम्मेदारी उन्हें सौंपी गई। सहाय जी उम्र भर हिंदी की प्रगति के लिए कार्य करते रहे। उन्हीं के शब्दों में - ''हम सब हिंदी भक्तों को मिलकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि साहित्य के अविकसित अंगों की भली-भांति पुष्टि हो और अहिंदी भाषियों की मनोवृत्ति हिंदी के अनुकूल हो जाए।''

हिंदी भाषा और पत्रकारिता में उनका योगदान मील का पत्थर सिद्ध हुआ। उन्होंने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के निदेशक के पद पर रहते हुए 'साहित्यिक इतिहास' को चार खंडों में समेटा।

पत्रकारिता के अतिरिक्त सहाय जी ने अनेक कृतियों की रचना की- देहाती दुनिया, विभूति, कहानी का प्लाट, मेरा जीवन, स्मृति शेष, हिंदी भाषा और साहित्य, माता का आँचल, ग्राम सुधार वे दिन वे लोग आदि। 'कहानी का प्लाट' में भगजोगनी का किरदार बहुत समय तक पाठकों के मष्तिष्क में चक्कर लगाता रहता है। 'मुंडमाल' में कर्तव्य के सर्वोच्च बलिदान आदमी को झकझोर देता है। आचार्य शिवपूजन सहाय की कहानियों में आडंबर या बनावटीपन नहीं आता है। मिट्टी से पटकथा उठाते हैं और मिट्टी में डूबोकर ऐसा चित्र उपस्थित करते हैं कि पाठक आश्चर्यचकित हो उठता है। बहुत से कारणों से 'देहाती दुनिया' को हिंदी का प्रथम आंचलिक उपन्यास भी माना जाता है।

आज आचार्य की जयंती है। आचार्य को कोटि-कोटि नमन। एक पत्रकार और साहित्यकार के रूप में शिवपूजन सहाय ने हिंदी भाषा की जीवन भर सेवा की। 21 जनवरी 1963 को वे चिरनिद्रा में विलीन हो गए।

आज जब पत्रकारिता और साहित्य की दूरी बढती जा रही है, हिंदी के दधीचि सहाय जी की स्मृतियां साहित्यिक पत्रकारिता का मार्ग प्रशस्त करने का कार्य करती हैं। पत्रकारिता और साहित्य की इसी बढती दूरी को पाटने के लिए आचार्य शिवपूजन सहाय के उद्योगों की पड़ताल समय की मांग है।

दीपक कुमार, ग्राम + पो. : चेंफूल, जिला : सारण (बिहार) – 841209
एम. ए. यूजीसी नेट, स्वतंत्र लेखन

शिवपूजन सहाय का साहित्य : परंपरा की नींव पर प्रगतिशीलता की इमारत

धनन्जय

रामचरितमानस पर उनकी अटूट श्रद्धा थी। गीता के कर्म योग और गांधी के राजनीतिक दर्शन जैसे पारम्परिक ढाचे में उन्होंने आधुनिकता की कलई चढ़ाई। शिव पूजन का समाज दर्शन उदारवादी था वह शिक्षा के समर्थक थे, कारण? मनुष्यों को बिना सींग और पूछ वाला बना नही देखना चाहते थे। सहाय स्त्री शिक्षा के समर्थक थे परंतु पश्चिमी शिक्षा और पश्चिमी सभ्यता के पोषक नहीं थे। यही कारण है कि सहाय स्त्री शिक्षा का परंपरागत रूप अपनाने को कहते हैं।

"परम्परा को अंधी लाठी से मत पीटो

उसमे बहुत कुछ है
जो जीवित है
जीवन दायक है
जैसे भी हो धवंस से बचाने लायक है"1

शिवपूजन सहाय को समझने के लिए रामधारी सिंह दिनकर की 'परंपरा' कविता की पक्तियों से शुरुआत सार्थक और वाजिब हो सकती है। सहाय जिस समय लेखन का प्रारंभ करते हैं उस समय भारत गुलामी का बोझ ढो रहा था। संपूर्ण भारतीय जनमानस आंतरिक और बाह्यपरतंत्रता की नकेल से कसा था। प्रत्येक जाति, धर्म, और संप्रदाय को आश्रय देने वाले विशाल वटवृक्ष भारत पर अंग्रेजी-परपोषी बेल लसकर उसके प्राण सोख रही थी। जिसका असर ऑक्सीजन प्रदात्री आंगन की तुलसी पर भी पूरी तरह दिखाई देने लगा था। लोग-बाग यह समझने लगे थे कि भारत की उदारवादी नीति, अहिंसा का मूल स्वर, 'सर्वेभवंतु सुखिनः' की उक्ति इत्यादि पारंपरिक मान्यताओं के कारण अंग्रेजी दानव आज उनके देशपर अट्हास कर रहा है । विश्व के सिरमौर वटवृक्ष भारत के रक्त को अंग्रेजी बेल चूस रही थी और आंगन की पारंपरिक तुलसी पर असफलता, निरंकुश प्रगतिशीलता वर्गविचार, सांप्रदायिकता, मतभिन्नता का तुषाराघात हो रहा था। परिणामतः समस्त भारत बाहर और भीतर से एक साथ जर्जर हो रहा था।

सहाय ने इस समय को अपनी बाह्य आंखों से देखा और अंतर्मन से समझा तथा विशाल वटवृक्ष भारत की पारंपरिक जड़ों में आधुनिकता की उर्वरा घोलने का निश्चय कर साहित्य लेखन प्रारंभ किया।

बाल्यकाल की पृष्टभूमि उनके साहित्य की ताकत थी। उनवांस ग्राम इटहरी थाना शाहबाद जिला बिहार में 9 अगस्त 1893 को रत्नगर्भा भारत भूमि ने सहाय जैसे एक रत्न को जन्म दिया। सहाय के पिता ईश्वरी दयाल धार्मिक व्यक्ति थे और माता सात्विक महिला। सहाय पर माता पिता के सनातनी संस्कार का पूरा असर पड़ा। धार्मिक ग्रंथों में एक ओर रामायण पर उनकी अटूट श्रद्धा थी, सत्य-अहिंसा और न्याय पर गहरा विश्वास था, तो दूसरी ओर परंपरा के नाम पर मनुष्यता का गला घोटने वाली विषतंतुओ की जकड़न को तोड़ने की अकूत छटपटाहट।

शिवपूजन जी गुण ग्राही व्यक्ति थे उन्होंने पुरातन और नूतन दोनों परंपराओं के गुणों को ग्रहण किया। उनकी इसी गुण ग्राहिता को देख कर ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने उनको लेखन के साथ-साथ पत्रकारिता से जुड़ने की प्रेरणा दी तथा जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने प्रोत्साहन का हव्य डाला। रामायण अधिकारी कामिल बुल्के उनके अभिन्न मित्र थे।

रामचरितमानस पर उनकी अटूट श्रद्धा थी। गीता के कर्म योग और गांधी के राजनीतिक दर्शन जैसे पारम्परिक ढाचे में उन्होंने आधुनिकता की कलई चढ़ाई। शिव पूजन का समाज दर्शन उदारवादी था वह शिक्षा के समर्थक थे, कारण? मनुष्यों को बिना सींग और पूछ वाला बना नही देखना चाहते थे। सहाय स्त्री शिक्षा के समर्थक थे परंतु पश्चिमी शिक्षा और पश्चिमी सभ्यता के पोषक नहीं थे। यही कारण है कि सहाय स्त्री शिक्षा का परंपरागत रूप अपनाने को कहते हैं। वे अपने निबंध 'विद्या पढ़ना सीखो' में लिखते हैं, ''यदि तुम सच्ची विद्या पढ़ना चाहती हो तो सीता के प्रति अनुसूया देवी के उपदेशों को पढ़ो, सीता और सावित्री के निष्कलंक चरित्र से शिक्षा ग्रहण करो, उर्मिला, शकुंतला, दमयंती, पार्वती और रुक्मणी के पति भक्ति की ओर ध्यान दो, विदाई के समय कण्व ऋषि के कर्तव्योपदेश पर विचार करो।''2

सहाय का मानना है कि स्त्री का मातृत्व प्रेम, उदारता, क्षमाशीलता, दयाभाव इत्यादि उसके स्त्री होने के गुण हैं, इनके अभाव में वह स्त्री नही रह जाएगी। यही कारण है कि सहाय अपने निबंधों में स्त्रियों के लिए पारंपरिक शिक्षा ग्रहण करने की बात लिखते हैं, जिससे उनका स्त्री होना बना रहे। सहाय स्त्रियों में स्त्रीत्व गुणों का होना अनिवार्य मानते हैं, परंतु प्रेमचंद की भांति पुरुष गुणों को ग्रहण कर लेने पर उन्हें कुलटा घोषित नहीं करते हैं और न ही रघुवीर सहाय के भांति गीता को आत्मसात करके सीता जैसे गुणवान बनकर इन सभी गुणों में पलीता लगाकर किसी मूर्ख की परिणीता बनने के पक्षधर नही हैं।

''पढ़िए गीता बनिए सीता
बनिए सीता
फिर इन सब में लगा पलीता

किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घर बार बसाइए।''3

सहाय स्त्रियों को स्त्रित्वगुणों से संपन्न देखना चाहते हैं किंतु पुरुष निर्मित सामाजिक बेड़ियों में बँधकर जीवन नष्ट करना उन्हें कतई गवांरा नहीं। उनकी यही सोच उन्हें परंपरा की जमीन पर प्रगतिशीलता का बीजारोपण कराती है। वह अपनी कहानी 'कहानी का प्लॉट' में भगजोगनी के पहले पति के मरने के बाद उसे वैधव्य जीवन जीने की बात कह कर उसके भाग्य पर नहीं छोड़ते हैं। लिखते हैं: ''भगजोगनी जीती है आज वह पूर्ण युवती है उसका शरीर भरा-पूरा और फूला-फला है। उसका सौंदर्य उसके वर्तमान नवयुवक पति का स्वर्गीय धन है। उसका पहला पति इस संसार में नहीं है। दूसरा पति है।''4

सहाय आर्य महिला पत्रिका में अपने लेख 'ग्रामीण स्त्रियों की दशा' में लिखते हैं: ''ग्राम प्रधान देश भारत के गांव की दशा सोचनीय होने से देश की दशा दयनीय हो गई है।'' 5

शिवपूजन सहाय प्रगतिशीलता को जीवन का लक्षण मानते हैं, जो मानव को नवजीवन प्रदान करती हैं। संसार में जो कुछ प्रगतिशील नहीं है वह जड़ है और जड़ता मृत्यु बोधक होती है। यही कारण है कि सहाय मनुष्य को प्रगतिशीलता का अनुगामी होते देखना चाहते हैं किंतु उन्हें आधुनिकता के नाम पर आदर्शवाद छोड़कर भोगवाद, सरलता, सौम्यता को त्यागकर प्रदर्शनवाद जैसी प्रवृत्तियों को अपनाना कदापि गवारा नहीं है।

वो परदा प्रथा का विरोध करते हुए भी विदेशी नीतियों का उदाहरण प्रस्तुत नहीं करते, अपितु भारतीय पारंपरिक ग्रंथों का उल्लेख करते हुए कहते हैं: ''रामायण काल में आज जैसी पर्दा प्रथा नहीं थी। महाभारत काल में भी नहीं थी। पुराणों में भी अनेक प्रमाण ऐसे हैं जिनमें परदा प्रथा का खंडन होता है।'' 6

इस भांति सहाय भारतीय समाज को नवजागरण की उत्तुंग लहरों पर उन्मुख हो लहराते देखना चाहते हैं। वो चाहते हैं की हिंदी साहित्य क्षेत्र में चल रहा यह नवजागरण भारत के प्रत्येक व्यक्ति में नवीन चेतना भर दे। उसमें नई ऊर्जा का संचार कर दे। हर भारतीय प्रगतिशील हो जाए। उन्हे पता है कि साहित्य का यह नवजागरण मानव हृदय को तभी जगा सकता है, जब वह उन तक पहुंचेगा। इसके लिए सहाय पुस्तक संस्कृति को बढ़ावा देने की बात करते हैं और 1922 ई. में, '1880 में हिंदी पुस्तकालयों का संगठन' शीर्षक से लेख में लिखते हैं- ''पुस्तकालय सरस्वती के मंदिर, ज्ञान के भंडार, साहित्य के यश:स्तंभ, विद्या के कल्पद्रुम, आनंद के उद्यान और शांति के आधार हैं। किसी देश की सभ्यता को देखने की इच्छा हो तो उस देश के पुस्तकालय को देखने

जाइए।'' 7

पुस्तकालय के महत्व का प्रतिपादन करते हुए सहाय जी पुस्तक संस्कृति में जहां नवजागरण की बात करते हैं वहीं उन्हें यह भी पता है कि यह कार्य तभी संभव हो सकता है जब भारत में एक विशाल पुस्तक भंडार संग्रहालय हो। जिसमें देश में प्रकाशित होने वाली समस्त छोटी-बड़ी पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएं और समाचार पत्र सुगमता से प्राप्त हो सकें। इस बात को सहाय माधुरी के वर्ष एक फाल्गुन संवत 1979 कें अंक में 'राष्ट्रभाषा का विराट संग्रहालय' नामक लेख लिखकर प्रकट करते हैं। वो चाहते हैं कि देश में एक ऐसा विराट संग्रहालय हो जिसमें अब तक की प्रकाशित छोटी-बड़ी पुस्तक, पत्र पत्रिकाएँ या जो आगे प्रकाशित होंगी उन सभी की सिलसिलेवार जानकारी एक स्थान पर सुरक्षित हो तो अच्छा होगा।

सहाय व्यक्ति को अपनी परंपरा में बँधकर प्रगतिशील बनते देखना चाहते थे। संस्कृति परंपरा का संवहन करती है यह बात उन्हें भली भांति मालूम थी, इसीलिए वह चाहते थे कि व्यक्ति सांस्कृतिक रूप से चैतन्य हो। उसके अंदर भारतीय पारंपरिक गुणों उदारता, सेवा भाव, आदि का समागम हों। यह तभी संभव है जब मनुष्य में उदारता हो। 'समन्वय' के वर्ष दो अंक तीन में आप लिखते हैं कि ''औदार्य मानव हृदय का वह सर्वश्रेष्ठ गुण है जो मनुष्य को देवत्व में परिणत कर देता है।'' 8

शिवपूजन सहाय प्रगतिशीलता को जीवन का लक्षण मानते हैं, जो मानव को नवजीवन प्रदान करती हैं। संसार में जो कुछ प्रगतिशील नहीं है वह जड़ है और जड़ता मृत्यु बोधक होती है। यही कारण है कि सहाय मनुष्य को प्रगतिशीलता का अनुगामी होते देखना चाहते हैं, किंतु उन्हें आधुनिकता के नाम पर आदर्शवाद छोड़कर भोगवाद, सरलता, सौम्यता को त्यागकर प्रदर्शनवाद जैसी प्रवृत्तियों को अपनाना कदापि गवारा नहीं है।

सहाय जी का मानना है की मनुष्य और समाज की असली आधुनिकता उसकी क्रियान्वित विवेकी बुद्धि को कहते हैं, जो मनुष्य को अच्छे बुरे का भान कराते हुए उसे उद्देश्य पूर्ण मार्ग पर अनवरत आगे बढ़ने की शक्ति-सामर्थ्य प्रदान कर उसका मार्ग प्रशस्त करे। मनमाने ढंग से सामाजिक सांस्कृतिक और पारंपरिक अनुशासनों को न मानना आधुनिक प्रगतिशीलता नहीं है यह उच्छृंखलता है।

सहाय भारतीय जनमानस में आदर्श नागरिक की कल्पना करते हैं। उनका मानना है कि आदर्श से पली परंपरा की नींव पर उठी आधुनिक इमारत भारत की अपनी संस्कृति होगी। उसका अपना विस्तार होगा। विदेशियों का अंधानुकरण नहीं। इस् हेतु वह 1922 में कोलकाता से प्रकाशित मासिक पत्रिका आदर्श में 'आदर्श पुरुष, 'आदर्श देश,' 'आदर्श बंधु,' 'आदर्श साहित्य' इत्यादि शीर्षक से टिप्पणी करते हैं और 'मर्यादा पुरुषोत्तम' नामक लंबा लेख भी लिखते हैं जिसमें राम का चरित्र आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श भाई, आदर्श शिष्य, आदर्श लोक सेवक, आदर्श

मित्र आदि आदर्श रूपों में स्थापित करते हैं। सहाय के रामराज्य की अवधारणा भी आदर्श है। वीरता भी आदर्श हैं। जीवन के समस्त पहलू आदर्श है। निरंकुश उच्छृंखल नहीं।

सहाय का राजनैतिक जागरण भी आदर्श और अहिंसा के नींव पर स्थित है, जो भारतीय परंपरा का मूल है। वो मतवाला में एक लेख में लिखते हुए कहते हैं: ''यदि आप स्वतंत्रता के अभिलाषी हैं, अपने देश में स्वराज की प्रतिष्ठा चाहते हैं, तो तन, मन और धन से अपने नेता महात्मा गांधी के आदेशों का पालन करना आरंभ कीजिए।''9

सहाय गांधी को सत्य का पुजारी, अहिंसा के पोषक और आदर्श राही मानते हैं। उनका मानना है कि गांधी की सोच भारतीय मूल परंपरा में आधुनिकता का नवांकुर है। मतवाला (1924) के संपादकीय में वे लिखते हैं: ''हमें बिना विलंब सत्याग्रह का अनुसरण लेकर लीडरों को इसका पिछलगुआ बनने के लिए बाध्य करना चाहिए। क्योंकि गांधी विहीन स्वराज यदि स्वर्ग से भी सुंदर हो तो वह नरक के समान त्याज्य है। इस एक महात्मा पर ही शत-शत स्वराज्य न्योछावर कर देने योग्य है।'' 10

सहाय जी गांधी विहीन स्वराज, अर्थात् निरंकुश असत्यभाषी, अहिंसा और आदर्श से परे उच्छृंखल स्वतंत्रता कितनी भी लुभावनी हो उसे नर्क गामी मानते हैं। बालकों को अच्छी शिक्षा देने के उद्देश्य से 'महाभारत कैसे लिखा गया,' 'बालक प्रहलाद का सिद्धांत,' 'लव कुश की बहादुरी,' 'सद्भाव का प्रभाव,' 'वीर अभिमन्यु' इत्यादि शीर्षक से लेख भी लिखे।

यह अवगत कराया कि हमें सांसारिक चमक-दमक में चौंधियाकर प्रगतिशीलता के नाम पर अंधी दौड़ में पड़कर अपने भारतीय अस्तित्व को समाप्त नही करना चहिए। हमारी परम्पराएँ हमारी पहचान हैं। वें हमारे पुरखों की मृदुल स्मृति हैं, जिनकी गूंज हमारे भूत वर्तमान और भविष्य में बनी रहनी चहिए।

संदर्भ :

1. सिंह रामधारी दिनकर, परम्परा (कविता) स्रोत कविता कोश, 2. शिवपूजन साहाय रचनावली, खंड -2, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण- 1957, पृ. 250, 3. सहाय, रघुवीर, सीढ़ियों पर धूप में, पृ. 149, 4. सहाय, शिवपूजन , 'कहानी का प्लाट', (HINDISAMAY-COM), 5. शिवपूजन साहाय रचनावली, खंड -2, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण- 1957, पृ. 265, 6. वही, पृ. 280, 7. शिवपूजन सहाय रचनावली, खंड -3, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण- 1957, पृ. 214, 8. वही, पृ. 27, 9. मतवाला, वर्ष- 2, अंक- 1, 10. वही, 31 मई 1924

धनंजय, डी. एस. बी., परिसर हिन्दी विभाग, कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल
मो. : 9792157816, 9696764137, ई–मेल : dhananjaydwivedi.91@gmail.com

शिवपूजन सहाय की दृष्टि में बिहार में राष्ट्रभाषा का विकास और साहित्यिक प्रगति

कृष्णा अनुराग

राष्ट्रभाषा के प्रचार- प्रसार एवं उन्नयन से प्रदेश और देश को एकसूत्र में पिरोया जा सकता है यह उन्हें पता था और यही कारण है कि उच्च शिक्षण संस्थानों में हिंदी की पढ़ाई हो इसके लिये वे निरन्तर प्रयासरत रहे। इस प्रक्रिया में उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी से सम्बंधित करीब बीस लेख तैयार किये साथ ही बिहार राष्ट्रभाषा परिषद की स्थापना में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इतना ही नहीं वे बिहार का साहित्यिक इतिहास प्रस्तुत कराने की भी कोशिश में आजीवन लगे रहे।

हिंदी भाषा और साहित्य को पुष्पित, पल्लवित, संपोषित और संवर्द्धित करने में बिहार का योगदान अतुलनीय रहा है। एक प्रदेश विशेष का भाषा और साहित्य के विकास में क्या योगदान रहा है यह जानने का सबसे अच्छा माध्यम है उस प्रदेश की चली आ रही साहित्यिक परम्परा का निरीक्षण किया जाए और वहाँ के रचनाशील साहित्यकारों के सृजनकर्म का सिंहावलोकन किया जाए। सिंहावलोकन की इस प्रक्रिया में शिवपूजन सहाय के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर जब दृष्टि ठहरती है तो यह स्वाभाविक रूप से परिलक्षित होता है कि उनका व्यक्तित्व और उनकी प्रतिभा बहुआयामी थी। उनकी रचनात्मकता का फलक बहुत व्यापक था। उन्होंने निबंध, संस्मरण, कहानी, उपन्यास, व्यंग्य आदि विविध विधाओं में अपनी लेखनी के माध्यम से हिंदी साहित्य की सेवा की। विशेषरूप से उनके निबंध बहुत विचारोत्तेजक और गंभीर चिन्तनदृष्टि के प्रतिफल ज्ञात होते हैं। यह सर्वज्ञात है कि एक लेखक की चिंतनदृष्टि और प्रतिभा का पूर्ण विकास उसके निबंधों में ही देखने को मिलता है क्योंकि निबंधों में ही अपने भावों को व्यक्त करने की पूरी जगह और पूरा अवकाश उन्हें प्राप्त होता है। महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि आचार्य शिवपूजन सहाय राष्ट्रभाषा के विकास के प्रति हमेशा सजग और सचेत रहे। यही कारण है कि उनके निबंधों में तत्कालीन हिंदी साहित्य की रचनात्मक गतिविधियाँ केंद्र में दृष्टिगोचर होती हैं। न केवल हिंदी की साहित्यिक दशा और दिशा पर उनका ध्यान रहा बल्कि वे उच्च

शिक्षण संस्थानों में भी हिंदी की उपेक्षा पर लिखते रहे। 'देहाती दुनिया' के इस रचनाकार ने हिंदी के सच्चे सिपाही की भांति अपना पूरा जीवन साहित्यसेवा को समर्पित कर दिया। यह बात दीगर है कि अपनी महानता का परिचय देते हुए वे कहते हैं कि ''इन रचनाओं से कोई और लाभ हो या न हो, यह तो पता लग ही जायेगा कि हमारी मनोवृत्ति और प्रवृत्ति कब कैसी रही।''(1)

ध्यातव्य है कि शिवपूजन सहाय का लेखन काल भारत की परतंत्रता का काल था साथ ही यह भी स्मरणीय है कि उसी कालखंड में दो विश्व-युद्ध भी हुए थे। ऐसे संकटग्रस्त समय में भी वे अपनी लेखनी से राष्ट्रभाषा की अभिवृद्धि हेतु निरन्तर क्रियाशील रहे। हिंदी की पढ़ाई बिहार के सभी स्तरीय उच्च शिक्षण संस्थानों में हो इस विषय पर वे स्वयं भी लिखते रहे साथ ही तमाम हिंदी साहित्य प्रेमियों को इस विषय पर लिखने को प्रेरित करते रहे। वे लिखते हैं- ''अगर कहीं वर्ण्याकुलर की पढ़ाई बिल्कुल उठा दी गई, जैसी किंवदंती कभी- कभी सुन पड़ती है, तो हिंदी से असंख्य छात्रों का सम्बंध- विच्छेद हो जाएगा। आशंकाएँ सर्वथा निराधार नहीं हैं। बिहार के हिंदी हितैषी पत्रकारों को इस विषय पर विचार करना चाहिए और हिंदी की हितरक्षा में तत्परता से सजग रहना होगा।''(2)

विचारशील साहित्यकार होने के नाते उन्हें यह पता था कि राष्ट्रभाषा के उत्थान से ही देश का भी विकास होगा और देश की परतंत्रता की बेड़ियां टूटेंगी। अंग्रेज सरकार भी इस बात को जानती थी तभी तो इतने बड़े प्रदेश बिहार में सिर्फ पटना कॉलेज ही एकमात्र संस्थान था जहाँ हिंदी विषय की मुक्कमल पढ़ाई बी०ए० और एम०ए० स्तर की होती थी। वे कॉलेजों के नाम गिना कर कहते हैं- ''जबतक इन तीन बड़े कॉलेजों में ऑनर्स और एम०ए० की पढ़ाई (हिंदी में) न होने लगेगी, तब तक बिहार के कॉलेजों में होने वाली हिंदी की पढ़ाई से इस प्रान्त का विशेष उपकार न हो सकेगा। हिंदी की उच्चतम शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार और विकास होने से ही बिहार आगे बढ़ सकेगा।''(3)

यह विचारणीय बिंदु है कि शोषक सरकार आमलोगों के बीच इस धारणा का प्रसार करने की कोशिश करती है कि हिंदी पढ़ कर अर्थोपार्जन करने के विकल्प कम रह जाते हैं। जबकि सच्चाई यह है कि शोषक सरकारें बोलने, विचार करने और सोचने की भाषा की शक्ति को कुंद करने के लिए ऐसे हथकंडे अपनाती हैं। आचार्य शिवपूजन सहाय इस बात को बखूबी समझते थे और हिंदी समाज के बच्चों को हिंदी से दूर जाते देख वे लिखते हैं- ''वर्न्याकुलर के रूप में हिंदी पढ़नेवाले तो सिर्फ परीक्षोतीर्ण होने भर हिंदी से लगाव रखते हैं- बस, पास होते ही या किसी काम-काज में लगते ही हिंदी से पीछा छुड़ा लेते हैं। देश के भविष्य के कर्णधार नवयुवकों का राष्ट्रभाषा के प्रति ऐसा भाव होना चिंता का विषय है।''(4)

राष्ट्रभाषा के प्रचार- प्रसार एवं उन्नयन से प्रदेश और देश को एकसूत्र में पिरोया जा सकता है यह उन्हें पता था और यही कारण है कि उच्च शिक्षण संस्थानों में हिंदी की पढ़ाई हो इसके लिये वे निरन्तर प्रयासरत रहे। इस प्रक्रिया में उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी से सम्बंधित करीब बीस लेख तैयार किये साथ ही बिहार राष्ट्रभाषा परिषद की स्थापना में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इतना ही नहीं वे बिहार का साहित्यिक इतिहास प्रस्तुत कराने की भी कोशिश में आजीवन लगे रहे। एक सिद्धहस्त समीक्षक, आलोचक और सम्पादक के दृष्टिकोण से शिवपूजन सहाय ने बिहार की

तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियों का सूक्ष्मता से अपने निबंधों- आलेखों में अंकन किया है। वे कहते हैं - ''नाना प्रकार के अभावों और असुविधाओं से आक्रांत इस युद्ध युग में देश तथा समाज की जो भीषण परिस्थिति है, उसपर ध्यान देते हुए यह कहना असंगत न होगा कि बिहार की साहित्यिक प्रगति बहुत कुछ संतोषजनक है।''(5)

हिंदी कविता में जब छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि वादों का दौर चल रहा था तब बिहार के कवियों ने लीक पर न चलते हुए अपनी स्वतंत्र राह पकड़ी। रामधारी सिंह 'दिनकर' गोपाल सिंह 'नेपाली' केसरी कुमार, जानकी वल्लभ शास्त्री आदि कवियों ने बिना किसी 'वाद' की परिधि में पड़े अपनी स्वतंत्र पहचान बनाई। शिवपूजन सहाय की बिहारी कवियों पर की गई यह टिप्पणी सटीक जान पड़ती है - ''बिहार के काव्य- कानन में यदि हम 'दिनकर' को गर्जनशील केसरी के रूप में पाते हैं, तो 'केसरी' को पीयूषवर्षिणी कलकंठि के रूप में देखते हैं। संवेदनशील 'द्विज' की अनुभूतिमयी वेदना जैसी मर्मतलस्पर्शिनी और करुणरस- प्रवाहिनी है, प्रतिभासंपन्न 'प्रभात' की हाहाकारमयी क्रांति- ज्वाला वैसी ही गगनारोहिणी है। वियोगी जी की बहुमुखी प्रतिभा और सुधामुखी लेखनी ने साहित्य- जगत की विविध दिशाओं में उनके यश का प्रसार किया है।''(6)

बिहार की उर्वर भूमि में आदिकाल से ही गद्य रचना निरन्तर हो रही थी। ज्योतिरीश्वर ठाकुर का 'वर्ण रत्नाकर' इसका जीता- जागता उदाहरण है। शिवपूजन सहाय का मानना है कि पुस्तकालयों और संग्रहालयों के अभाव में आज भी पुरानी पुस्तकें प्रकाश में नहीं आ पाई हैं। उनकी यह मान्यता थी कि अगर बिहार के साहित्यानुरागी शोधार्थी इस दिशा में प्रयास करें तो निश्चितरूप से बिहार का गद्य साहित्य जो विश्व की नजरों से छिपा है वह प्रकाश में आएगा और हिंदी साहित्य को समृद्ध करेगा। वे लिखते हैं - ''हिंदी गद्य- साहित्य के विकास और उत्थान में बिहार के लेखकों ने उल्लेखनीय योगदान किया है। किंतु, उन लेखकों के सत्प्रयास का विवरणात्मक और विश्लेषणात्मक इतिहास आज तक नहीं लिखा गया।''(7)

अपनी इतिहास दृष्टि और अनुसन्धापरक बुद्धि से उन्हें यह ज्ञात था कि बिहार का साहित्य बहुत समृद्ध और व्यापक रहा है लेकिन वे यह मानते थे कि संसाधन की कमी की वजह से ''बिहार के साहित्यिक इतिहास का जो प्रारम्भिक युग है उस को घोर अंधकार के भीतर से टटोल निकालना बहुत कठिन काम है।''(8)

गद्य के रूप में सदल मिश्र के नासि के तोपख्यान के पचास- साठ वर्ष बाद भारतेंदु सखा महाराज कुमार बाबू रामदीन सिंह ने 'बिहारदर्पण' लिखी थी जिसकी प्रशंसा स्वयं भारतेंदु ने भी की थी। यह उल्लेखनीय है कि नासि के तोपख्यान के बाद गद्य लेखन की जो अविरल धारा बही उसका बिहार में निरन्तर विकास ही हुआ। भारतेंदु युग के बाद द्विवेदी युग में भी बिहार के गद्य लेखकों ने उत्कृष्ट रचनाओं से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। तब पटना एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक केंद्र था, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि पंडित प्रताप नारायण मिश्र अपना अधिकतर समय पटना में ही बिताते थे क्योंकि तब 'ब्राह्मण' पत्रिका पटना के ही खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित होती थी। इतना ही नहीं उनकी अधिकांश रचनाएं यहीं से प्रकाशित होती थीं, सम्भवत: इसीलिए बिहार उनका कार्यक्षेत्र ही बन गया था। द्विवेदी युग में बिहार के गद्य

साहित्य पर प्रकाश डालते हुए शिवपूजन सहाय जी ने लिखा – ''द्विवेदी युग में बिहार के गद्यकारों की सेवाएँ अत्यंत गौरवपूर्ण हैं। पं० रामवतार शर्मा, पं० सकलनारायन शर्मा, डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल, पं० भुवनेश्वर मिश्र, पं० विजयानन्द त्रिपाठी, पं० चन्द्रशेखर शास्त्री आदि विद्वान गद्यकारों ने बिहार का बहुत गौरव बढ़ाया।''(9)

हिंदी में जब उपन्यासों की शुरुआत हुई तब से एक गंभीर प्रश्न पर तमाम विद्वानों के बीच गतिरोध लगातार बना रहा कि हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास किसे माना जाए। इस विवाद में बाबू ब्रजनन्दनसहाय का उपन्यास 'सौन्दर्योपासक' ने भी विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। 'सरस्वती' में मैथिलीशरण गुप्तजी ने 'सौन्दर्योपासक' को हिंदी का सबसे पहला मौलिक साहित्यिक उपन्यास माना था। स्वयं शिवपूजन सहाय ने 'देहाती दुनिया' नामक प्रथम मौलिक आंचलिक उपन्यास लिख कर खूब ख्याति अर्जित की थी। कुल मिलाकर देखा जाए तो हिंदी कथा साहित्य में बिहार की भूमिका शिवपूजन सहाय की दृष्टि में प्रशंसनीय ही दिखती है।

तत्कालीन युग के निबंध, आलोचना, कथेतर गद्य और पत्र-पत्रिकाओं के विकास से भी सहायजी प्रभावित थे। निबंध-आलोचना के क्षेत्र में लक्ष्मी नारायण सुधांशु और प्रोफेसर नलिन विलचन शर्मा से उनकी बहुत उम्मीदें थीं। अपने निबंधों में वे निरन्तर इन दोनों विद्वानों का जिक्र करते थे। हिंदी के अद्‌भुत शिल्पी रामवृक्ष बेनीपुरी भी तब तक 'माटी की मूरतें' नामक प्रसिद्ध रेखाचित्र लिख कर ख्याति प्राप्त कर चुके थे और निरन्तर रचनाशील थे। राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह और डॉ० राजेन्द्र प्रसाद भी अपनी अलग शैली में हिंदी साहित्य की सेवा में लगे थे। शिवपूजन सहाय लिखते हैं – पूज्य राजेन्द्र बाबू की 'आत्मकथा' और 'बापू के कदमों में' नामक पुस्तकों ने हिंदी- गद्य को एक नई दिशा सुझाई है। राजा साहब की गद्य शैली ने अपना एक नया ही मार्ग निकाला है, जो बड़ा हृदयग्राही और चित्ताकर्षक है। इन दोनों गद्यकारों की भाषा शैली ने बिहार की ओर से हिंदी संसार को एक अनूठी गद्य- रचना पद्धति प्रदान की है।''(10)

साहित्य की इतनी समृद्ध परंपरा होते हुए भी बिहार के नामी- गिरामी साहित्यकारों को राष्ट्रीय स्तर पर वह पहचान नहीं मिल सकी जिसके वे हकदार थे। शिवपूजन सहायजी ने इसे बहुत करीब से महसूस किया। स्वयं शिवपूजन सहाय के साहित्यिक अवदानों को वैसी प्रसिद्धि नहीं प्राप्त हुई जिसके वे काबिल थे। उनकी दृष्टि में इसका प्रमुख कारण था बिहार की पत्रिकाओं का स्तरहीन होना। उन्होंने यह पाया कि दूसरे राज्यों की पत्रिकाएं तो बिहार में खूब पढ़ी जाती हैं जबकि अपने ही प्रदेश की पत्रिकाओं को यहाँ तवज्जो नहीं दी जाती। जबकि वे मानते थे कि बिहार में पहले स्तरीय पत्रिकाएं प्रकाशित हुआ करती थीं परन्तु कई कारणों से वे जमी न रह सकीं। तत्कालीन बिहारी पत्रिकाओं पर टिप्पणी करते हुए वे कहते हैं – ''बिहार के हिंदी- पत्रों की दशा देखकर बड़ा क्षोभ, बड़ी ग्लानि और लज्जा होती है।''(11)

यह सर्वविदित है कि किसी भी साहित्यकार को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने का काम पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा ही होता है परंतु बिहार की पत्रिकाओं ने इसे गंभीरता से नहीं लिया फलस्वरूप कितने ही बिहार के साहित्यकार बिहार में ही सिमटकर रह गए। जिनकी रचनाओं की प्रसिद्धि किन्हीं और मध्यम से हुई वे ही साहित्यिक जगत में चमक सके। बिहारी पत्रिकाओं पर एक निबंध में टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं – ''बिहार के पत्र तो दूसरों को सरपट दौड़ते देख

दुलकी भी नहीं दौड़ते। न टाइप साफ, न छपाई शुद्ध, न भाषा आकर्षक, न विराम चिह्नों का ठिकाना, न विषयों का चुनाव ठीक, न सामग्री- संकलन सुंदर यों ही यत्र- तत्र लेख और संवाद बिखरे पड़े हैं, मानो इधर का कूड़ा बटोरकर एक जगह रख दिया हो।''(12)

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि समग्रता से अगर शिवपूजन सहाय के कृतित्व का मूल्यांकन किया जाए तो स्पष्ट रूप से पता चलेगा कि वे राष्ट्रभाषा और बिहार के साहित्यिक विकास के लिए कितने प्रयत्नशील और गंभीर थे। सत्तर वर्ष की आयु तक उन्होने साहित्य, संस्कृति, भाषा, समाज- सुधार, धर्म और राष्ट्रीय समस्याओं पर शताधिक लेख लिखे तथा पचास से अधिक भाषण दिए। वे अनेक साहित्यकारों से इस मामले में अलग थे कि वे किसी की आलोचना करते वक्त भी शब्दों और भाषा की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते थे। सम्भव है कि बुद्ध की इस धरती पर उन्होंने बुद्ध के 'शांति' के संदेश को अपने व्यक्तित्व के साथ हमेशा- हमेशा के लिए समाहित कर लिया हो। शिवपूजन सहाय को जीवनकाल में जो सम्मान प्राप्त नहीं हुआ उसकी भरपाई उनके निधन के बाद राष्ट्रकवि 'दिनकर' ने यह कर की कि सहायजी की सोने की प्रतिमा लगाई जाए और उस पर हीरे- मोती जड़े जाएं तब भी हिंदी साहित्य में उनके योगदान की भरपाई नहीं की जा सकती।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. भूमिका, शिवपूजन रचनावली, तृतीय खंड, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 2. 'बिहार के कॉलेजों में हिंदी की पढ़ाई', पृष्ठ- 314, शिवपूजन रचनावली, तृतीय खंड, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 3. 'बिहार के कॉलेजों में हिंदी की पढ़ाई', पृष्ठ- 315, शिवपूजन रचनावली, तृतीय खंड, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 4. 'बिहार के कॉलेजों में हिंदी की पढ़ाई', पृष्ठ- 314, शिवपूजन रचनावली, तृतीय खंड, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 5. 'बिहार की साहित्यिक प्रगति', पृष्ठ- 265, शिवपूजन रचनावली, तृतीय खंड, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 6. 'बिहार की साहित्यिक प्रगति', पृष्ठ- 266, शिवपूजन रचनावली, तृतीय खंड, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 7. 'हिंदी गद्य साहित्य और बिहार' पृष्ठ-495, शिवपूजन रचनावली, तृतीय खंड, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 8. 'हिंदी गद्य साहित्य और बिहार' पृष्ठ-495, शिवपूजन रचनावली, तृतीय खंड, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 9. 'बिहार की साहित्य साधना'- गद्य के क्षेत्र में, पृष्ठ- 491, शिवपूजन रचनावली, तृतीय खंड, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 10. 'बिहार की साहित्य साधना'- गद्य के क्षेत्र में, पृष्ठ- 492, शिवपूजन रचनावली, तृतीय खंड, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 11. 'बिहार के हिंदी पत्र', पृष्ठ- 315, शिवपूजन रचनावली, तृतीय खंड, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 12. 'बिहार के हिंदी पत्र', पृष्ठ- 315, शिवपूजन रचनावली, तृतीय खंड, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद।

कृष्णा अनुराग, शोधार्थी– हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।
मो. : 8539028740, ई–मेल : krishnaanurag1993@gmail.com

पिता

–मंगलमूर्ति

मुझे नहीं लगता मैं बूढ़ा होने पर
बिलकुल वैसा हो गया हूँ जैसे मेरे पिता
अपने आख़िरी बुढ़ापे में लगने लगे थे
जाने से ठीक कुछ दिन पहले।

नहीं, मेरी उम्र तो अभी उनसे
दस साल ज्यादा हो गई लेकिन
मेरे चेहरे पर वैसा पुरानापन
अब भी कहां दिखाई देता है
वैसी झुर्रियां भी कहां है?

लेकिन उनके झुर्रियों से भरे
बूढ़े, पोपले मुंह वाले चेहरे पर भी
जो बराबर एक मोहक मुस्कान दीखती थी
वह कहां है मेरे चेहरे पर?
सरलता और विनम्रता की उसमें
जो एक स्वर्णिम आभा रहती थी
वह क्यों नहीं दिखती मेरे चेहरे पर?

सरल हृदय की जो एक रोशनी
फूटती थी उस चेहरे से वह रोशनी
क्यों नहीं है मेरे चेहरे पर
जब कि मैं उनके मुकाबले
दस साल ज्यादा बूढ़ा हो चुका हूँ?

मेरे चेहरे पर तो एक सियाह
सूनापन हमेशा फैला लगता है?
दोनों आंखों के नीचे स्याह धब्बों ने जैसे
बराबर के लिए अपनी जगह बना ली है?

झुर्रियों वाले उनके होठों के छोर भी
पान से लाल ही रहते थे हरदम
भीने-भीने जाफरानी ज़र्दे की
खुशबू से गम-गम हर दम
जब कि मेरे होंठ तो न जाने कब से
सूखे-से ही रहते हैं फटे-फटे और खुश्क

कम-से-कम दर्जन-भर जोड़े जूते
सजे रहते थे उनके छोटे-से कमरे के बाहर
जिनमें हिरन की छाल वाला भी एक जूता था
और खादी वाले कुर्तों-बंडियों से
धुलकर आने पर भी मजमुए इत्र की
सुगंध कभी जाती नहीं थी, बसी रहती थी उनमें
जबकि मेरे जूते पर तो अक्सर धूल जमी होती है
और न मेरे ऐसे-वैसे तुड़े-मुड़े कपड़ों पर
कभी कोई कलफ होता है और न उनमें
वो सफेदी और चमक ही होती है बग-बग
जो मेरे पिता के सीधे-सादे खादी के कपड़ों में
बराबर ही झलकती थी जहां भी वे जाते थे

आखिर-आखिर तक झुकी नहीं उनकी पीठ
सीधी रही तनी अंतिम-अंतिम दिनों तक भी
जब कि मेरी कमर दर्द से अब झुक गई है,
घुटने भी अब उस तेजी से चल नहीं पाते

मुझे याद है मेरे पिता लम्बे-लम्बे डग भरते
इतना तेज चलते थे कि अच्छे-भले लोग भी
बुरी तरह पिछड़ जाते थे उनसे और मुझको तो
उनके साथ चलने में लगभग दौड़ना ही पड़ता था

उनका बुढ़ापा जैसे रोशनी की एक मीनार था
जिसकी रोशनी समंदर में दूर-दूर तक जाती थी और
न जाने कितनी भटकती नावों को रास्ता दिखाती थी
जबकि दस साल ज्यादा बूढ़ा होकर तो आज मैं
एक ढही हुई इमारत, एक खंडहर-भर रह गया हूँ
एक बियाबान वीरान मंजर-सा सुनसान श्मशान
जिसमें जहरीली हवाएं चुड़ैलों-सी
खिलखिलाती बहती रहती हैं
जहां अकेलापन खुद अपनी सलीब ढोता हुआ
उस पर टंगने की तैयारी में नजर आता है

डॉ. मंगलमूर्त्ति, एच.एच.–302, सेलेब्रेटी गार्डेन, सुशांत गोल्फ सीटी अनसल,
के.पी. आई. लखनऊ–226030, मो. : 7752922938, ई–मेल : bsmmurty@gmail.com

✧ ✧ ✧

स्मृति के आईने में शिवपूजन सहाय

शिवपूजन जी की वह स्नेह–मूर्त्ति

✍ राधिकारमण प्रसाद सिंह

याद आ रहा है मुझे वह दिन जब बिहार–बंगाल एक था और बिहार नाम का कोई अलग प्रांत न था। कलकत्ता ही भारत की राजधानी रहा, साथ–साथ बंगाल की भी। बड़े लाट और छोटे लाट दोनों ही वहीं थे। मेरे पिता स्वर्गीय राजा राजराजेश्वर प्रसाद सिंह भी कलकत्ते में ही हर साल दो–चार महीने रहते रहे। हम लोगों का मकान श्री रवींद्रनाथ ठाकुर के जोड़ासांको वाले मकान के समीप में ही था। मेरे पिता बराबर उनसे मिलते रहे और श्री रवि ठाकुर की नामीगरामी पुस्तक 'चित्रांगदा' का हिंदी अनुवाद भी करते रहे उसी छंद में। हां, मेरे पिता जमींदारी की देख–रेख में जब घर आते, तो मुझे भी रवि ठाकुर की छत्रछाया में ही रख देते।

श्री रवि ठाकुर के सहवास ने मुझे बंगला की ओर मोड़ दिया। अपनी माता से भोजपुरी में चाहे जैसे जो बातचीत कर लेता, अब तो अपनी जुबान पर बंगला ही खुलकर खेलती रही, और मैं मुड़ते–मुड़ते मुड़ गया बंगला की घनी छांह में। अब बंगला ही लिखता–पढ़ता। अपनी आरंभिक रचनाएं भी बंगला में ही रही। हां, पिताजी की मृत्यु के दो–चार साल बाद जब बिहार कटकर अलग हुआ हम लोग सदा के लिए लौट आए बंगाल से बिहार।

तभी शिवपूजनजी की प्रेरणा से मैं बंगला से हिंदी की गोद में लौट आया। शिवपूजनजी का वरद्हस्त मेरे सिर पर रहा। मैं जी दिये हिंदी की सेवा में रम गया। शिवपूजनजी दो–चार साल पर मेरी प्रत्येक रचना की देखरेख करते रहे। उनसे जो कुछ मैंने पाया, उसे जुबान तो अदा करने से रही, बस 'हमी जानत हैं' जो हम जानते हैं।'

मेरे पिता की 'राजराजेश्वरी–ग्रंथावली' का संपादन भी उन्होंने ही किया। अब तो श्रीशिवपूजनजी की वह स्नेह–मूर्ति अपनी आंखों के सामने आने से रही, मगर पलकों के तले हृदय के अंतराल में तो वह हरी की हरी है, और हरी, की हरी ही रहेगी निरंतर।

(साभार : त्रिपथगा, अप्रैल, 1963)

भाई शिव, अब एक याद भर

✍ जवाहरलाल चतुर्वेदी

अंत में भाई शिव, इस बेहद स्वार्थी संसार में तपस्वी जीवन बिताकर चले ही गये। हास्य –रूदन की कैसी जीती–जागती तस्वीर थे, उसे शब्दों के रंगो में नहीं उतारा जा सकता।

'कहते न बने, सुनते न बने,
मन ही मन पीर पिरैबौ करै।'

बाबू शिवपूजनजी के साथ जुड़ी स्नेहसिक्त अनेक प्राय: स्मरणीय स्मृतियां हैं, जिन्हें चालीस वर्षों तक जीवन में बटोरा है। पत्र भी सौ के लगभग होंगे, जो अपने-अपने समय के सजीव चित्र हैं। कलकत्ता, आरा, छपरा, काशी और पटना निवास की सुन्दर साहित्यिक झाकियां है। मन कहता है, उन्हें आंखों मे बसाये रखो....।

1 सितंबर, 1962 ई. के सुप्रभात में आपका 'नववर्ष प्रवेश' हिंदी-जगत ने मनाया। मैंने भी उन्हें एक पत्र-रूप पुष्प भेंट किया। उत्तर में आपने जो अनुराग के आंसू बहाये, वे दर्शनीय है। रूप-रंग इस प्रकार है।

''परमादरणीय चौबेजी, सादर प्रमाण। आपका आशीर्वाद पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं तो लज्जा-संकोचवश आपको पत्र नहीं लिखता था। सोचता था कि चरण-पूजन के योग्य कुछ भेजकर ही पत्र लिखूं। दस रूपया सालाना देने का लेख आपकी बही में अंकित कर दिया था, पर आशा नहीं थी कि कभी घोर अर्थ-संकट का सामना भी करना पड़ेगा। तब भी मेरे मन में वह संकल्प सुदृढ़ रूप में विद्यमान है, और मुझे विश्वास है कि भगवत्कृपा से मैं अपने उस धार्मिक-संकल्प को विधिवत पूर्ण करने में समर्थ होऊंगा।''

नित्य-स्मरणीय शिवपूजनजी के जीवन में 'मतवाला' कार्यालय, शंकर घोष लेन, कलकत्ता के पतझड़ के बाद यदि फिर कुछ खिलावट आई तो वह स्थान हनुमान-प्रसाद वैद्य, बुलानाला की बगल में 'जागरण' पत्र का उद्यान था। कलकत्ता के 'निराला-उग्र' की भांति इस नई बगिया के भी वर्णनीय सुंदर फूल थे, प्रधान थे राय कृष्णदास, जयशंकर प्रसाद, विनोदशंकर व्यास, 'निगन्धा इव किसुका' रूप होते हुए भी रसीले 'गहमरी' आदि। और अब-जब आकर इस नई बगिया का रस लूटने वाला इन पंक्तियों का लेखक.....। अत: इन कई भट्टों की कथा, परस्पर झड़पों की ऊहापोह। आज कछु बरनि न जाई। और 'जागरण' छोड़ते हुए वह मार्मिक अंतिम टिप्पणी। अब लौं नसानी, अब ना नसैहों तो भूलते नहीं बनती। आपके आगे-पीछे के साहित्यिक जीवन से उलझी कितनी दर्दभरी सूक्ति है। आज भी वह अपना वही दर्द बनाए हुए हैं। मन करता है, बार-बार उस कोमल स्वर-लहरी पर हाथ फेरकर उस दर्द का मधुर मजा लूटा जाए।

(साभार : त्रिपथगा, अप्रैल, 1963)

उनका जीवन आदर्श है और निधन शिक्षा

✍ रामचंद्र वर्मा

आचार्य शिवपूजन सहाय स्वर्गवासी हो गये। इस घोर कलियुग में एक ऐसा साहित्यसेवी उठ गया, जिसने अपना सारा जीवन सतयुगी ऋषियों की भांति तपस्या और त्याग में बिताकर केवल सरस्वती की उपासना और साहित्य की सेवा की थी। शिवपूजनजी के मृत्यु-शैय्यागत होने

का समाचार मुझे हिंदी पुस्तक एजेंसी की पटना शाखा के व्यवस्थापक रामशरणजी से मिल गया था। आचार्य के अंतिम दिनों की जो दशा मैंने उस समय सुनी थी उससे मैं बहुत अधिक दुखी और व्यथित हुआ था। मैं यह तो अच्छी तरह जानता ही था कि शिवपूजन जी न तों कभी अपने शरीर का घ्यान रखते थे और न स्वास्थ्य का उन्हें तो एकमात्र साहित्य-सेवा की लगन थी जो उन्हें दूसरी बातों की ओर देखने ही नहीं देती थी। ऐसे महापुरूष के सुख-सुभीते का घ्यान रखना तो उनके पार्श्ववर्त्तियों और सहजीवियों का कर्त्तव्य था। इधर आठ-दस वर्षों से बराबर रूग्ण रहते आये थे, और उनका स्वास्थ्य दिनपर-दिन गिरता ही जाता था। फिर भी लोगों के कान पर तब तक जूं न रेंगी, जब तक वे बिलकुल संज्ञा-शून्य नहीं हो गये। सबसे अधिक दुख की जो बात थी, वह यही थी। शिवपूजनजी को मैं प्राय: 40 वर्षो से जानता था और बहुत अच्छी तरह जानता था। बहुत दिन पहले जब वे कुछ समय के लिए काशी में आकर रहे थे, तभी हम लोगों में बहुत निकट संबंध स्थापित हो चुका था। उनका निष्कपट व्यवहार और शुद्ध तथा सरल ह्रदय ही ऐसा था जो लोगों को बरबस आकृष्ट करके उनका प्रशंसक तथा मित्र बना देता था। इसलिए काशी में भी बहुत से लोगों के साथ उनकी घनिष्ठ आत्मीयता स्थापित हो गई थी। उसी समय हम लोग देखा करते थे कि वे कितने अधिक परिश्रमी भी हैं, और कितने अधिक विचारशील भी। वे अनेक प्रकार के सद्गुणों के आकर तो थे ही, उनमें निरंतर चार-चार और पांच-पांच पहर काम करते रहने की भी अद्भुत क्षमता थी। पर उनमें साहित्य-सेवा की जो उत्कट लगन थी, उससे उनकी वह क्षमता निरंतर क्षीण होती गई। फिर भी उनकी साहित्य-सेवा वाली लगन में अंत तक कोई कमी नहीं हुई।

आज जब हम शिवपूजनजी के सारे जीवन पर दृष्टिपात करते हैं, तब हमें ऐसा जान पड़ता है कि वे एक ऐसी चक्की के समान थे, जो सारी उम्र चलती और पिसती ही रही। उनमें सज्जनता और सुशीलता इतनी अधिक थी कि वे कभी इस चक्कीपन से अपना छुटकारा न करा सके। उनके जीवन में कई बार ऐसे अवसर आये जिनमें उनकी बहुत बड़ी हनियां हुई। फिर भी उनके विरोध में उन्होंने कभी चूं तक नहीं किया, और चरम सीमा की सहनशीलता से ही काम लिया, और आज जब उस चक्की का चलना बंद हो गया है, तब तक उसके लिए रोने बैठे हैं। इससे पहले भी हम ऐसी ही और कई चक्कियों के बंद होने पर रो चुके हैं। यदि शिवपूजनजी का बलिदान ही हमारी आंख खोल सके और आगे से हम ऐसी चक्कियों की रक्षा की ओर ध्यान दें सकें तो भी उसे बहुत समझना चाहिए।

यह अवसर इस प्रकार की चर्चा छेड़ने का तो नहीं था, पर क्षुब्ध तथा शोकाकुल ह्रदय का उद्गार रोके नहीं रूकता। जो हो शिवपूजनजी वस्तुत: सच्चे साहित्य-सेवी थे और साहित्य-सेवियों के लिए आदर्श थे। अपने समस्त जीवन में न तो उन्होंने कभी धन की ओर ध्यान दिया और न कभी नाम की ओर। कर्त्तव्यपरायण और कर्मठ सत्पुरूषों की तरह उन्होंने सारा जीवन काम करने में ही बिताया, और जो किया वह ठोस किया। संतोष का विषय यही है कि भारत-सरकार ने उनके गुणों का उचित आदर करते हुए कुछ ही दिन पहले उन्हें 'पद्मभूषण' के अलंकरण से अलंकृत किया था। मैं तो उन्हें 'पद्मभूषण' क्या 'पद्मासनाविभूषण' ही समझता हूँ। उनका जीवन हमारे लिए आदर्श है और उनका निधन एक शिक्षा।

(साभार : त्रिपथगा, अप्रैल, 1963)

भाईजी

✍ छबिनाथ पाण्डेय

यों तो स्वर्गीय शिवपूजन सहाय उम्र में मुझसे कुछ महीने छोटे थे लेकिन विद्वता, विनम्रता, त्याग, तपस्या और स्वाभिमान में वे मुझसे कहीं श्रेष्ठ थे। इससे मैं उन्हें आदर से सदा भाईजी कहता था और आदर से उन्हें देखता भी था। पर मैंने जिन गुणों की चर्चा की है उनमें से एक-एक तो अनेक में मिलते हैं। लेकिन इतने गुणों का समन्वय विरलों में देखने को मिलता है। 71 वर्ष के लंबे जीवन में साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में मुझे उंगली पर गिनने लायक व्यक्ति ही मिले जिनमें उपर्युक्त सभी गुण प्रखर रूप में विद्यमान हों। जिन लोगों को स्वर्गीय सहायजी को निकट से देखने का अवसर मिला है वह जानते हैं कि उपर्युक्त गुणों के प्रति उनमें कितनी निष्ठा थी।

सहायजी से मेरा परिचय कलकत्ता प्रवास में 'मतवाला' कार्यालय में हुआ। 'मतवाला' कार्यालय के वे दिन याद आते हैं तो आज भी कलेजे में एक हूक उठती है और उस कवि की ये पंक्तियां सहसा जबान पर आ जाती है।

'एक हूक जिगर में उठती है,
एक दर्द सा पैदा होता है।
मैं चुपके-चुपके रोता हूँ,
जब सारा आलम सोता है।'

स्वर्गीय महादेवप्रसाद सेठ की मस्ती, स्वर्गीय मुंशी नवजादिक लाल का चुटीला व्यंग्य, स्वर्गीय निरालाजी का अक्खड़पन और स्वर्गीय सहायजी का स्मित हास्य आज भी आंखों के सामने प्रत्यक्ष होकर नाच उठता है। शाम को काम से छुट्टी पाकर सेठजी बनारसी चारखाने का गमछा पहनकर, पाल्थी मारकर, सिल-बट्टा लेकर बैठ जाते थे और मिरजापुरी भंग तैयार कर सबको पिलाते थे और पीते थे। भंग की मस्ती में चुटकुलां का जो फौवारा छूटता था और अर्ध-निमीलित नेत्र से भाईजी जिस तरह आनंद लेते थे और बीच-बीच में स्वयं एकाध चुटकुला छोड़ते जाते थे, उन स्मृतियों को क्या भुलाया जा सकता था? उन्हीं चुटकुलों का संग्रह होता था मतवाला की 'चलती-चक्की' में। जब भाईजी कहते थे कि ''पांडेयजी आप ब्राह्मण हैं 'घी का लड्डू टेढ़ा भला' की बानगी आप ही पेश कीजिए।'' और यह कहकर आलोचना के लिए कोई पुस्तक मेरी ओर बढ़ा देते थे तो उनके द्वारा प्रदर्शित इस सम्मान पर मैं फूला नहीं समाता था।

लेकिन आनंद और उल्लास के वे दिन जल्द समाप्त हो गये। मुझे कलकत्ता छोड़ देना पड़ा और मेरे कलकत्ता छोड़ने के थोड़े ही दिनों बाद राहु ने 'मतवाला'-मंडल में प्रवेश किया और अखाड़ा टूट-सा गया। भाईजी भी काशी चले आये और पाक्षिक 'जागरण' के संपादन का भार लेने

के बीच की अवधि में काशी में रहकर पुस्तक-भंडार, लहरियासराय की पुस्तकों के प्रकाशन की देखभाल करते थे। 'जागरण' अल्पायु था। अकाल में ही काल-कवलित हो गया, और भाईजी लहरियासराय आ गये और 'बालक' मासिक का संपादन करने लगे। लहरियासराय का वातावरण उनके अनुकूल न था। वर्तमान युग में हिंदी के प्रकाशकों का जो धर्म हो गया है उसका निर्वाह पुस्तक-भंडार के संचालक पूरी तरह करते थे। इसलिए शिवजी को उस 'हट' से निकालना आवश्यक था। संयोग से इसी समय छपरा के राजेंद्र कॉलेज में हिंदी के लिए प्राध्यापक की आवश्यकता का विज्ञापन निकला। सहायजी केवल मैटिकुलेशन पास थे, लेकिन उनकी साहित्यिक योग्यता के कारण उस पर उनकी ही नियुक्ति हुई, और पटना विश्व विद्यालय की सिंडिकेट ने उनकी नियुक्ति को गौरव के साथ स्वीकार किया। इस नियुक्ति के बाद सहायजी को साहित्य-साधना का सुअवसर मिला। उनसे पहले द्विजजी की नियुक्ति वहाँ हो चुकी थी। बाद को द्विजजी औरंगाबाद कॉलेज के प्राचार्य के पद पर चले गये। उनके चले जाने के बाद भाईजी का मन राजेंद्र कॉलेज से उखड़ गया और साल भर की छुट्टी लेकर वे उनवांस अपने घर आ गये। वहां से उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा कि मैं जीवन के शेष दिन काशी में ही बिताना चाहता हूँ। यदि काशी में मेरी कोई व्यवस्था हो सके तो मैं आ जाऊं।'' उन दिनों मैं 'ज्ञानमंडल' और 'आज' के मैनेजर के पद पर काम करता था। 'ज्ञानमंडल लिमिटेड' के संचालक श्री सत्येंद्र गुप्त से मैंने चर्चा की और साप्ताहिक 'आज' के प्रधान सपादक के रूप में वे सहायजी को बुलाने के लिये राजी हो गये। मैंने सहायजी को पत्र लिखा, लेकिन इसी बीच पुस्तक-भंडार के संचालक ने पटना से मासिक 'हिमालय' का प्रकाशन आरंभ किया, और बेनीपुरी के आग्रह से वे 'हिमालय' का संपादन करने लगे। इसी आशय का पत्र उन्होंने मुझे लिखा। मेरे क्षोभ का ठिकाना न रहा, और आवेश में मैंने उन्हें व्यंग्य कर पत्र लिखा।

जीवन में एक बार-एक ही बार मैंने उनके प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग किया। मैंने उन्हें मात्र इतना लिखा था:

भाई जी, सूरदास ने ठीक ही लिखा है-
ऊधो मन माने की बात,
दाख छोहाड़ा छड़ि अमृत फल
बिस कीरा बिस खात।

मेरे इस पत्र से उन्हें हार्दिक पीड़ा हुई और बाद को मुझे भी संताप हुआ कि मैंने वैसा पत्र उन्हें क्यों लिख दिया, लेकिन पत्र तो लिखा जा चुका था।

'हिमालय' में वे अधिक दिन तक ठहर न सके और साल बीतते-बीतते वे पुनः राजेंद्र कॉलेज लौट गये। वहां से वे तत्कालीन शिक्षा-मंत्री आचार्य बदरीनाथ वर्मा और शिक्षा-सचिव श्रीजगदीशचंद्र माथुर के प्रयास से राष्ट्रभाषा परिषद् के संचालक के पद पर आये और 1959 ईस्वी तक उस पद पर रहे।

राष्ट्रभाषा परिषद् के संचालक के पद पर जिस निष्ठा से उन्होंने काम किया था, हिंदी-संसार के मान्य और हिंदी-साहित्य के वे जितने बड़े शिल्पी थे, उनके लिए उन्हें जो पुरस्कार मिला उसकी चर्चा भी कर देना उचित होगा। उनके अवकाश-ग्रहण करने के समय मैंने राष्ट्रभाषा परिषद् के संचालक-मंडल में प्रस्ताव रखा कि शिव पूजनजी से हिंदी-भाषा का इतिहास लिखवाया जाये और उन्हें इसके लिए 500 रू. महीना दिया जाये। तत्कालीन शिक्षा-मंत्री की उपस्थिति में वे ही संचालक-मंडल के अध्यक्ष थे। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ और उन्हीं शिक्षा मंत्री महोदय ने उस प्रस्ताव को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया।

शिवजी कितने महान् साहित्यशिल्पी थे, इसे हिंदी-संसार को बतलाना नहीं होगा। इसके स्थूल साक्षी उनके द्वारा संपादित अनेक ग्रंथ हैं। यहां तक कि द्विवेदी अभिनंदन-ग्रंथ' के संपादन का सारा भार स्वर्गीय बाबू श्यामसुंदर दास ने इनको सौंप दिया था। आंचलिक उपन्यास के प्रथम लेखक सहायजी ही थे। उनकी 'देहाती दुनिया' का हिंदी संसार में आज भी आदर है। संस्मरण लिखने में वे अपना सानी नहीं रखते थे। नंददास के बारे में कहा जाता है कि 'और सब गढ़िया, नंददास जड़िया।' वर्तमान युग में शिवजी के बारे में साहसपूर्वक मैं यह कह सकता हूँ कि वे भी गढ़ने वाले की अपेक्षा जड़ने वाले कुशल शिल्पी थे। उनकी लेखनी की नोक जिस वाक्य को छू लेती थी वह चमक उठता था।

शिवजी ने लिखा बहुत कम है, क्योंकि बेगार करने में उन्हें फुरसत नहीं मिलती थी। उनमें इतनी नम्रता थी कि वे किसी का नाहीं नहीं कर सकते थे। जो कोई भी उनके यहां अपना पोथा लेकर पहुंचा, उसके हठाग्रह को वे टाल नहीं सके और उसी में अपने को खपाते रहे। उनके इस गुण का चरम सीमा तक दुरूप्रयोग लोगों ने किया। कितने ही लोग अपने ग्रंथ को प्रकाशित करवाकर यशस्वी साहित्यकार बन गये हैं। यदि उनके उन ग्रंथों की हस्तलिपि देखी जाए तो प्रकट होगा कि उनका अपना दस प्रतिशत भी उसमें नहीं है। पूरी की पूरी हस्तलिपि लाल स्याही से रंगी है। साहित्य की सेवा में उन्होंने दधीचि की तरह अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया था। रूग्णावस्था में भी वे किसी को 'नाहीं' नहीं कर सकते थे। उन्हें तपेदिक हो गया था। दोनों फेफड़े खराब हो गये। प्राय: एक साल अस्पताल में रहने के बाद वे स्वस्थ होकर वापस आये थे। क्षीण इतने थे कि सीढ़ी तक चढ़ना मना था। उस समय राष्ट्रभाषा परिषद् का कार्यालय 'बिहार हिंदी साहित्य भवन' में था। संचालक-मंडल की ओर से हम लोगों ने यह व्यवस्था कर दी थी कि वे नीचे कमरे में ही रहें और आवश्यक फाइलों पर हस्ताक्षर मात्र कर दिया करें। मैं एक दिन आठ बजे प्रात: काल उनका हालचाल लेने आया। देखता क्या हूं कि एक साहित्य महारथी अपनी हस्तलिपि लेकर उनके पास बैठे हैं और शिवजी उनका संपादन कर रहे हैं। मैंने उक्त सज्जन को फटकारा कि आपको इनकी हालत पर दया नहीं आती। आप इनकी नम्रता और विनय से अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। आत्मभिमानी वे इतने थे कि अभावों में रहना उन्होंने पसंद किया, लेकिन किसी से दान लेना उन्होंने पसंद नहीं किया। आर्थिक हालात इतनी खराब रहती थी कि पत्रों का उत्तर देने के लिए या कहीं आने-जाने के लिए उनके पास पैसे नहीं रहते थे, लेकिन किसी की अधेले की भी सहायता वे

स्वीकार नहीं करते थे। मैंने उनसे कई बार कहा। ''भाईजी, मैं भी गरीब हूँ, इससे गरीबी का मूल्य समझता हूँ, पर कुछ रूपयों से आपकी सहायता करूं तो हर्ज क्या?'' वे सदा उत्तर देते रहे। आपका आशीर्वाद ही मेरे लिए काफी है। आपके पैसे लेकर मैं नरक में नहीं जाना चाहता। मैंने अपने को भगवान के भरोसे छोड़ दिया है, उसकी मर्जा जो होगी वहीं होगा।'' तपेदिक से पीड़ित होकर जब वे अस्पताल में दाखिल हुए तो उनके कतिपय कृपालु मित्रों ने-मैं उनमें नहीं था-समाचार-पत्रों में आर्थिक-सहायता के लिए अपील निकाली और जगह-जगह से रूपये भी आने लगे। उन्हें अब यह बात मालूम हुई तब उन्होंने बिलख कर कहा- ''चंदे के रूपयों से चिकित्सा कराने की अपेक्षा मैं गलकर मर जाना पसंद करूंगा। मेरे पैसे से मनीआर्डर फीस देकर सब लोगों के रूपरू ज्यों के त्यों लौटा दिए जाएं''-और सभी चंदादाताओं के रूपए सहायजी के पैसे से मनीआर्डर से लौटाये गये।

भगवान के वे अनन्य भक्त थे। उन पर जो कुछ बीतता था, सबको वे ईश्वरीय कृपा ही समझते रहे और संतोषपूर्वक सहते रहे। वे बराबर मुझसे कहा करते थे मेरा ऐसा भाग्य कहां जो एकादशी को मेरी मृत्यु हो। वे एकादशी को व्रत बराबर करते थे। भगवान की ऐसी कृपा कि कम से कम उनकी एक इच्छा तो उसने अवश्य पूरी की। वे एकादशी को ही मरे।

(साभार : त्रिपथगा, अप्रैल, 1963)

शिवजी

✍ जानकीवल्लभ शास्त्री

आचार्य शिवपूजन सहाय आधुनिक बिहार के साहित्यिक पिता थे। उनकी उपलब्धि का माध्यम सेवा थी, राजनीति नहीं। उनकी प्रौढ़ लेखनी 'बिहारी हिंदी' की उपहासास्पदता को एक हद तक दूर कर सकी थी और उसे आदर्श रूप देने में सदा तत्पर रहती थी। उन्होंने आचार्य द्विवेदी की भांति गद्य-पद्य के कितने ख्यातिप्राप्त ग्रंथो का संशोधन किया था। बिहार में कदाचित एकमात्र वही ऐसे लेखक थे जिनकी भाषा में भद्दी भूलें कोई नहीं निकाल सका। वह स्वयं साहित्यकार न थे, न किसी गुट ने उन्हें ठोंक-पीट कर वैद्यराज बना दिया था।

उन्होंने श्रम और निष्ठा से भाषा से साहित्यि तक की सारी सीढ़ियां तय की थीं। वह सौम्यता और सरलता के अवतार थे। उनके आचार-विचार में अदभुत एकता थी। वह अपने आप में एक पीढ़ी थे, द्विवेदी युग से अत्याधुनिक युग तक की सुवर्ण श्रृंखला, प्रेमचंद, प्रसाद की परंपरा के अंतिम मूर्त प्रतीक।

पद्म-भूषणों के बाजार में वह सजते न थे, पर उन पर सरकारी कृपा बरसी तो उन्होंने संकोचवश छतरी को हाथ न लगाया। ऐसे ही अंतिम दिनों में जब वह मर्ज बहुत बढ़ गया तो, उन्हें भी डाक्टर बना दिया गया। पर कुल मिलाकर वह केवल शिवजी थे।

मटमैली खुरदरी खादी की पोशाक में सुदामा की सादगी लिए सन् 39 में जब वह पहले-पहल मिले थे, मुझे सहसा विश्वास नहीं हुआ कि यह वही आचार्य शिवपूजन सहाय हैं

जिनके वयिक्तव और कृतित्व के संबंध में निराला, प्रसाद, विनोदशंकर व्यास, डाक्टर रामविलास शर्मा आदि से मैनें उतने-उतने सुभाषित सुने थे। किंतु दर्शन को परिचय में और परिचय को घनिष्टता में बदलते देर न लगी, यों वह मुझसे प्राय: पच्चीस वर्ष बड़े थे। उन्होंने मुझे पचासों पत्र लिखे थे, किंतु कैसी भी जल्दी में ऐसा कोई पत्र नहीं लिखा था जिनका आरंभ 'पूज्य, परम श्रद्धेय या श्रद्धेय शास्त्रीजी' से न किया गया हो। अंतिम पत्र तो अभी कुछ ही दिन पहले लिखा था जिसमें भूतपूर्व राष्टपति डाक्टर राजेंद्र प्रसाद पर दो-चार संस्कृत के छंद लिख भेजने का आग्रह था।

बिहार के गद्य के दो विशिष्ट शैलीकार थे। अलंकृत और लाक्षणिक शैली का प्रतिनिधित्व आचार्य शिवपूजन सहाय करते थे और अत्याधुनिक अंग्रेजी गद्य की संक्षिप्त व्यंजक और तीक्ष्ण शैली का प्रतिनिधित्व करते थे आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। दोनों चले गये।

कलकत्ता, काशी, लखनऊ, पटना का चक्कर उनकी साहित्यिक पत्रकारिता को सूरज की हैसियत ने दे सका तो शायद इसलिए कि यह सूरज राजनीतिक गगन का न था। इनकमटैक्स बचाने के लिए घाटे पर चलने वाले साहित्यिक पत्रों के खरबपति मालिक तो कितने की चांद-सूरज अपने दरवाजे के पर्दो पर यों ही पेंट कराते रहते हैं। अभी श्रम का सूर्य कहां उगा है? ईमान की रोशनी को कौन मान देता है? जिंदगी की ढलान तक वह एक मामूली जीवन की सुविधाओं से ऊपर नहीं उठे थे। कीमती खाने-कपड़ों की कौन कहे, किसी बड़ी-से-बड़ी सभा की अध्यक्षता के लिए भी उनके पास साहित्यिक बहुरूपिये की पोशाक न थी।

लिखावट जितनी साफ थी हृदय उससे कम न था, यों वह रेवड़ी की तरह सम्मति तथा शुभकामना बांटते थे, और कुछ ऐसे सौभाग्यशाली शब्द उनके कोष में थे जिन्हें वह राजा-रंक, फकीर-सबकी खींसो में जड़ देते थे। किंतु ध्यान से देखने पर लहजे की सर्दी-गर्मी का, शब्दों के नाप-तोल, खुलाव और बांकपन का सही-सही पता लग जाता था।

आतिथ्य की कला कोई उनसे सीखता। बार-बार मुझे उसकी गहराई का विश्वास से विनियम करना पड़ता था। उनका उत्साह कभी ढीला नहीं पड़ता था, बुनियादी स्कूल की तरह वह उनकी रक्त-मज्जा में मिल गया था। एक रात मैं खा-पीकर सो गया था कि खड़ाऊं की खट-खट से आंखे खुल गई। मैं सम्मेलन भवन की ऊपरी मंजिल पर था और सीढ़ियां चढ़ना उनके लिए सेहत का सौदा करना था। वह हाथ में पान लिए हुए थे कि खाने-पीने के बाद गप्पों में उलझ जाने की सबब मुझे पान खिलाना भूल गये थे, मेरे ओंठ संकोच से सिकुड़ गये और फड़क उठे। एक दिन गर्मी की तपती हुई दोपहरी में वह मुझे सम्मेलन के एक अपेक्षाकृत ठंढे कमरे में ठहराना चाह रहे थे। वे उन दिनों वे बिहार राष्ट्र भाषा परिषद के संचालक थे। कमरे की चाबी एक कर्मचारी, तोमरजी के पास थी। तोमरजी ने उनके आदेश का पालन नहीं किया। नौकर ने उनके फर्ज के तकाजे को दुहराया तो वह अपने अस्थिपंजर में दधीचि का बल लिए खुद कमरा खुलवाने पहुंच गये। मैं उनकी हमदर्दी से मजबूर होकर अफसोस से हाथ मलता रह गया। खुराफात की जड़ मैं ही तो था। उनकी ऋजुता का अनुचित लाभ उठाया जाता था। जाने क्यों होम करते हाथ जलता है, और यारों की पांचों घी में रहती हैं?

(साभार : त्रिपथगा, अप्रैल, 1963)

आचार्य शिवजी का विवाह-पूर्व भावी पत्नी को लिखा पत्र

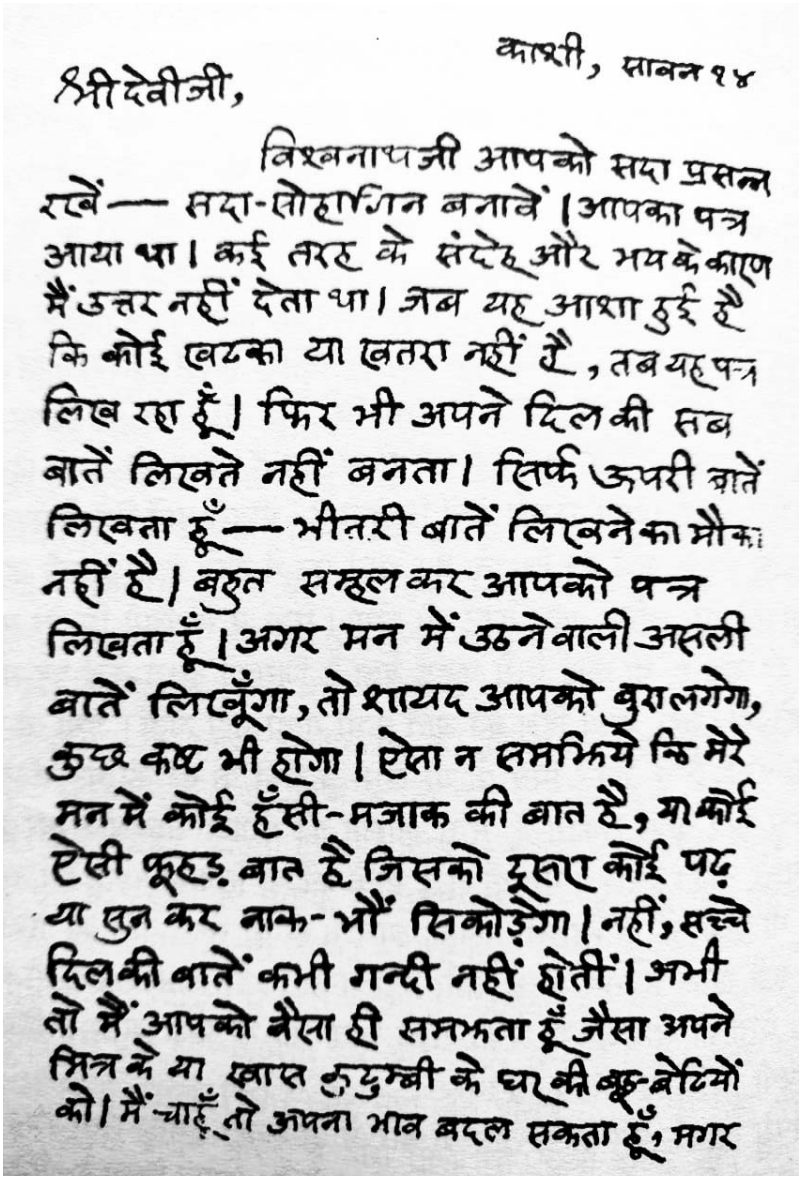

काशी, सावन १४

श्रीदेवीजी,

विश्वनाथजी आपको सदा प्रसन्न रखें — सदा-सोहागिन बनावें। आपका पत्र आया था। कई तरह के संदेह और भय के कारण मैं उत्तर नहीं देता था। जब यह आशा हुई है कि कोई खटका या खतरा नहीं है, तब यह पत्र लिख रहा हूँ। फिर भी अपने दिल की सब बातें लिखते नहीं बनता। सिर्फ ऊपरी बातें लिखता हूँ — भीतरी बातें लिखने का मौका नहीं है। बहुत सम्हल कर आपको पत्र लिखता हूँ। अगर मन में उठने वाली असली बातें लिखूँगा, तो शायद आपको बुरा लगेगा, कुछ कष्ट भी होगा। ऐसा न समझिये कि मेरे मन में कोई हँसी-मजाक की बात है, या कोई ऐसी फूहड़ बात है जिसको सुनकर कोई पढ़ या सुन कर नाक-भौं सिकोड़ेगा। नहीं, सच्चे दिल की बातें कभी गन्दी नहीं होतीं। अभी तो मैं आपको वैसा ही समझता हूँ जैसा अपने मित्र के या खास कुटुम्बी के घर की कुछ बेटियों को। मैं चाहूँ तो अपना भाव बदल सकता हूँ, मगर

शास्त्रों की मर्यादा और लोकाचार का बन्धन तोड़ना मुझे पसंद नहीं। इस लिए मन के शुद्ध भावों को भी छिपाना पड़ता है। उन भावों में से कोई एक भी ऐसा नहीं है जिससे आपको लाभ न हो या सुनने वाले को अच्छा न लगे; मगर दुनिया बड़ी खोटी है, समाज की रीति बड़ी गन्दी है, इस से भली बात भी बुरी समझ ली जाती है। ऐसा ही सोचकर मैं अपने सच्चे भावों को भी प्रगट करने से हिचकता हूँ। खैर, अब अपनी चिट्ठी का जवाब सुनिये——

मैंने आप से आपके मन के सन्तोष के बारे में पूछा था। उसका उत्तर जिन शब्दों में आपने दिया है, वह हिन्दू-परिवार की कन्या के योग्य ही है। आपने लिखा है—मैं ने पूर्व जन्म में बहुत पुण्य किया था, इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं लिख सकती। बस, तो अब और ज्यादा लिखने की जरूरत भी नहीं है। इतने ही में आपने सब कुछ कह दिया—गागर में सागर भर दिया। भगवान रामचन्द्रजी ने श्रीसीताजी के पास अपनी ओर से इतना ही संदेसा भेजा था—

"तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं।
जानु प्रीति-रस इतनहि माहीं॥",

—(तुलसीदास-रामायण)

3

आप ने जो कुछ कहा है, वह मुझे कहना चाहिये था। उल्टा हो गया। खैर, आपका भाग अगर ऊँचा है, तो मेरा भी निबाह हो जायगा। ईश्वर आपके पवित्र भाव की रक्षा करें। आपका विचार सदा ऐसा ही बना रहे।

आप अगर बड़ी दीदी का पत्र पढ़ें, तो मन में कोई शंका न करें, कोई ऐसी चिन्ता न करें कि मन उदास हो जाय। मैं ने इसलिये वैसा लिखा है कि आप सच्ची गृहलक्ष्मी बनने का हौसला रखें। जिस घर में सच्ची गृहदेवी नहीं हैं, उस में धन-दौलत के रहते भी कुछ सुख नहीं है। परन्तु जहाँ गृहदेवी है, वहाँ दरिद्रता भी लक्ष्मी बन जाती है। मैं कितने ही परिवारों में रोज देखता हूँ — खान-पान, रुपया-पैसा, कपड़ा-लत्ता, बेटा-बेटी, सब कुछ है; मगर दिन-रात की कलह के कारण शान्ति नहीं है। फिर उन सारे सुखों को धिक्कार है जहाँ आपस का प्रेम और मन की शुद्धता तथा चित्त की शान्ति नहीं है। गृहस्थों के घरों में तो तभी शान्ति रह सकती है जब कोई सच्ची गृहदेवी उतर आवे। किन्तु बड़े भाग्य से गृहलक्ष्मी मिलती है। मैं जरूर बड़भागी हूँ — विश्वनाथजी की पूरी कृपा है। ऐसी बात मेरे मन में बैठ गई है। स्त्री का जैसा सुख मैं ने भोगा है, वैसा बहुत कम लोगों को नसीब है। कुछ लोग कभी-कभी कहते हैं कि अच्छी के बाद बुरी आती है। किन्तु मैं इसको नहीं मानता। जबतक विश्वनाथजी की दया बनी हुई है — और सदा बनी ही रहेगी — तबतक मेरे मन में कभी आँधा चुभ ही नहीं सकता, यह पक्का विश्वास है। यह विश्वास आपको देखकर सफल हो गया — और भी दृढ़ हो गया। आप के रूप-गुण और सुशीलता की प्रशंसा सुनकर और अपनी आँखों सब-कुछ देखकर मेरे मन में पूर्ण सन्तोष के सिवा अब शंका का चिन्ह भी नहीं है। विश्वनाथजी से यही प्रार्थना है कि हम दोनों का परस्पर सन्तोष सदा एकरस बना रहे। हम दोनों आपस में एक-दूसरे के सन्तोष की रक्षा करते रहें। विश्वनाथजी आपका मनोरथ पूरा करें। बस, फिर दूसरे पत्र में लिखूँगा। आज इतना ही। रात को दो बजे यह पत्र लिखा है, काम की भीड़ से छुट्टी नहीं मिली।

आपका मंगल चाहने वाला —
शिवपूजन